गीता दर्शन–(भाग–7)
अध्याय—16 (प्रवचन—पहला) — दैवी संपदा का अर्जन

सूत्र–
(श्रीमद्भगवद्गीता)

श्रीभगवानवाच:

अभयं सत्त्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थितिः ।
दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम्।।1।।
उसके उपरांत श्रीकृष्ण भगवान फिर बोले कि हे अर्जुन, दैवी संपदा जिन पुरूषों को प्राप्त है तथा जिनको आसुरी संपदा प्राप्त है, उनके लक्षण पृथक—पृथक कहता हूं। दैवी संपदा को प्राप्त हुए पुरूष के लक्षण हैं :

अभय, अंतःकरण की अच्छी प्रकार से शुद्धी, ज्ञान— योग में निरंतर दृढ़ स्थिति और दान तथा इंद्रियों का दमन, यज्ञ, स्वाध्याय तथा तय एवं शरीर और इंद्रियों के सहित अंतःकरण की सरलता।

मनुष्य एक दुविधा है, एक द्वैत। मनुष्य के पास इकहरा व्यक्तित्व नहीं है, जो भी है, बंटा हुआ और द्वंद्व में है। जैसे प्रकाश और अंधेरा साथ—साथ मनुष्य में जुड़े हों। पशु और परमात्मा मनुष्य में साथ—साथ मौजूद हैं। मनुष्य जैसे एक सीढ़ी है, एक छोर नरक में और दूसरा छोर स्वर्ग में है; और यात्रा दोनों ओर हो सकती है। और प्रत्येक के हाथ में है कि यात्रा कहां होगी, कैसे होगी, क्या अंतिम परिणाम होगा।

यात्रा के रुख को किसी भी क्षण बदला भी जा सकता है, क्योंकि सिर्फ रुख बदलने की बात है, दिशा बदलने की बात है। नरक जाने में जो शक्ति लगती है, वही शक्ति स्वर्ग जाने के लिए कारण बन जाती है। बुरे होने में जितना श्रम उठाना पड़ता है, उतने ही श्रम से भलाई भी फलित हो जाती है। शैतान होना जितना आसान या कठिन, उतना ही संत होना भी आसान या कठिन है।

और एक बात ठीक से समझ लें, एक ही ऊर्जा दोनों दिशाओं में यात्रा करती है। ऐसा मत सोचें कि बुरा आदमी तपश्चर्या नहीं करता। बुरे आदमी की भी तपश्चर्या है, उसकी भी बड़ी साधना है; उसे भी बड़ा श्रम उठाना पड़ता है। शायद भले आदमी की साधना से उसकी साधना ज्यादा दुस्तर है, क्योंकि मार्ग में दोनों को कष्ट मिलते हैं। भले आदमी को अंत में आनंद भी मिलता है, जो बुरे आदमी को अंत में नहीं मिलता। मार्ग दोनों बराबर चलते हैं; भला कहीं पहुंचता है, बुरा कहीं पहुंच भी नहीं पाता।

एक अर्थ में बुरे आदमी की साधना और भी कठिन है। जितनी बड़ी बुराई हो, उतना ही ज्यादा दुख है।

ऊर्जा एक, यात्रा की लंबाई एक, समय और जीवन का व्यय एक जैसा; फिर अंतर क्या है? अंतर केवल दिशा का है। इस जगह तक आने के लिए भी आप उसी रास्ते को चुनकर आए हैं, लौटते समय भी उसी रास्ते से लौटेंगे। उतना ही फासला होगा, सिर्फ आपकी दिशा बदली होगी। यहां आते समय मुंह मेरी तरफ था, जाते समय पीठ मेरी तरफ होगी। बस, इतना ही फर्क होगा। यात्रा वही की वही है।

जिसे हम शुभ कहते हैं, वह परमात्मा की तरफ मुंह करके चलने वाली यात्रा है। जिसे हम अशुभ कहते हैं, वह परमात्मा की तरफ पीठ करके चलने वाली यात्रा है। वे ही पैर चलते हैं, वे ही प्राण चलते हैं; जरा भी यात्रा में भेद नहीं है।

और यात्रा के ये जो दो पथ हैं, ये अगर आपके बाहर होते, तो बहुत आसानी हो जाती। ये दोनों पथ आपके भीतर हैं। चलने वाले भी आप हैं, जिस रास्ते से चलेंगे, वह भी आप हैं, और जिस मंजिल पर पहुंचेंगे, वह भी आप हैं।

आपके भीतर मूर्ति को बनाने वाला, मूर्ति बनने वाला पत्थर, मूर्ति को निखारने वाली छेनी, सभी कुछ आप हैं। इसलिए दायित्व भी बहुत गहन है। और दोष किसी और को दिया नहीं जा सकता। जो भी फल होगा, सिवाय आपके अकेले के कोई और उसके लिए जिम्मेवार नहीं है।

इसके पहले कि हम कृष्ण के सूत्र में प्रवेश करें, दो—तीन बातें खयाल में ले लें।

पहली बात, जिन नरकों की चर्चा है शास्त्रों में, जिन स्वर्गों का उल्लेख है, वे दो भौगोलिक स्थितियां नहीं हैं, मानसिक दशाएं हैं। नरक भी प्रतीक है, स्वर्ग भी प्रतीक है।

शास्त्रों में भगवान और शैतान की जो चर्चा है, वे केवल आपके ही दो छोर हैं। न तो शैतान कहीं खोजने से मिलेगा और न भगवान कहीं खोजने से मिलेगा। भगवान आपसे अलग होता, तो खोजने से मिल सकता था। शैतान भी अलग होता, तो खोजने से मिल जाता। वे दोनों ही आपकी संभावनाएं हैं। चाहें तो शैतान हो सकते हैं, कोई भी रुकावट नहीं है; और चाहें तो भगवान हो सकते हैं, कोई भी रुकावट नहीं है। और जिस दिन आप शैतान हो जाएंगे, तो कोई शैतान आपको नहीं मिलेगा, आप ही अपने को मिलेंगे।

जिस दिन आप भगवान हो जाएंगे, तो भी कोई साक्षात्कार नहीं समग्रता से ही डूबना जरूरीहै। जब तक कोई ऐसा न घुल जाए कि गए होंगे।

शैतान और भगवान आपकी संभावनाएं हैं। और जो बुरे से बुरा आदमी है, उसके भीतर परमात्मा की संभावना उतनी ही सतेज है, जितनी भले से भले आदमी के भीतर शैतान होने की संभावना है। परम साधु एक क्षण में परम असाधु हो सकता है। विपरीत भी सही है, परम असाधु के लिए क्षणभर में क्रांति घटित हो सकती है। क्योंकि दोनों बातें दूर नहीं हैं, हमारे भीतर मौजूद हैं।

जैसे हमारे दो हाथ हैं और जैसे हमारी दो आंखें हैं, ऐसे ही हमारे दो यात्रा—पथ हैं। और उन दोनों के बीच हम हैं, हमारा फैलाव है। दूसरी बात, शास्त्र को समझते समय ध्यान रखना जरूरी है कि शास्त्र कोई विज्ञान नहीं है, शास्त्र तो काव्य है। वहां गणित नहीं है, वहा प्रतीक हैं, उपमाएं हैं। और अगर आप गणित की तरह शास्त्र को पकड़ लेंगे, तो आति होगी, भटकेंगे। काव्य की तरह समझने की कोशिश करें।

इसलिए इस ग्रंथ को श्रीमद्भगवद्गीता कहा है। यह एक गीत है भगवान का, यह एक काव्य है। टीकाकारों ने उसे विज्ञान समझकर टीकाएं की हैं।

कविता और विज्ञान में कुछ बुनियादी फर्क है। विज्ञान में तथ्यों की चर्चा होती है, शब्द बहुत महत्वपूर्ण नहीं होते; शब्द के पीछे तथ्य महत्वपूर्ण होता है। काव्य में तथ्यों की चर्चा नहीं होती; काव्य में अनुभूतियों की चर्चा होती है। अनुभूतियां हाथ में पकड़ी नहीं जा सकतीं, तराजू पर तौली नहीं जा सकतीं, कसौटी पर कसी नहीं जा सकतीं।

विज्ञान के तथ्य तो प्रयोगशाला में पकड़े जा सकते हैं। कोई कहे, आग जलाती है, तो हाथ डालकर देखा जा सकता है। लेकिन प्रार्थना परमात्मा तक पहुंचा देती है; क्या करें? इस तथ्य को कैसे पकड़े? प्रार्थना को हाथ में पकड़ने का उपाय नहीं, जांचने का उपाय नहीं, कोई कसौटी नहीं।

लेकिन प्रार्थना है। प्रार्थना काव्य का सत्य है, अनुभूति का सत्य है। अनुभूति के सत्य के संबंध में कुछ बातें समझ लेनी जरूरी हैं।

एक, जब तक आपको अनुभव न हो, तब तक बात हवा में रहेगी; तब तक कोई लाख सिर पटके और समझाए, आपकी समझ में आएगी नहीं। स्वाद मिले, तो ही कुछ बने; और स्वाद अकेली बुद्धि की बात नहीं है। स्वाद के लिए तो हृदय से, वरन अपनी प्रार्थना न हो जाएं, तब तक प्रार्थना समझ में न आएगी।

प्रार्थना कोई कृत्य नहीं है कि आपने कर लिया और मुक्त हुए। प्रार्थना तो एक जीवन की शैली है। एक बार जो प्रार्थना में गया, वह गया; फिर लौटने का कोई मार्ग नहीं है। और गहरे तो जाना हो सकता है, लौटने की कोई सुविधा नहीं है।

और जिस दिन प्रार्थना पूरी होगी, जिस दिन भक्ति परिपूर्ण होगी, उस दिन आप भक्त नहीं होंगे, आप भक्ति होंगे। उस दिन आप प्रार्थी नहीं होंगे, आप प्रार्थना ही होंगे। उस दिन आप ध्यानी नहीं होंगे, आप ध्यान हो गए होंगे। उस दिन आपको योगी कहने का कोई अर्थ नहीं है, क्योंकि योग कोई किया नहीं है, आप योग हो गए होंगे। योग एक अनुभव है। और अनुभव ऐसा, जहां अनुभोक्ता खो जाता है और एक हो जाता है।

गीता काव्य है। इसलिए एक—एक शब्द को, जैसे काव्य को हम समझते हैं वैसे समझना होगा। कठोरता से नहीं, काट—पीट से नहीं, बड़ी श्रद्धा और बड़ी सहानुभूति से। एक दुश्मन की तरह नहीं, एक प्रेमी की तरह। तो ही रहस्य खुलेगा और तो ही आप उस रहस्य के साथ आत्मसात हो पाएंगे।

जो भी कहा है, वे केवल प्रतीक हैं। उन प्रतीकों के पीछे बड़े लंबे अनुभव का रहस्य है। प्रतीक को आप याद कर ले सकते हैं, गीता कंठस्थ हो सकती है। पर जो कंठ में है, उसका कोई भी मूल्य नहीं। क्योंकि कंठ शरीर का ही हिस्सा है। जब तक आत्मस्थ न हो जाए। जब तक ऐसा न हो जाए कि आप गीता के अध्येता न रह जाएं, गीता कृष्ण का वचन न रहे, बल्कि आपका वचन हो जाए। जब तक आपको ऐसा न लगने लगे कि कृष्ण मैं हो गया हूं और जो बोला जा रहा है, वह मेरी अंतर—अनुभूति की ध्वनि है; वह मैं ही हूं वह मेरा ही फैलाव है। तब तक गीता पराई रहेगी, तब तक दूरी रहेगी, द्वैत बना रहेगा। और जो भी समझ होगी गीता की, वह बौद्धिक होगी। उससे आप पंडित तो हो सकते हैं, लेकिन प्रज्ञावान नहीं। अब इस सूत्र को समझने की कोशिश करें।

उसके उपरात श्रीकृष्ण फिर बोले कि हे अर्जुन, दैवी संपदा जिन पुरुषों को प्राप्त है तथा जिनको आसुरी संपदा प्राप्त है, उनके लक्षण पृथक—पृथक कहता हूं।

दैवी संपदा को प्राप्त हुए पुरुष के लक्षण हैं : अभय, अंतःकरण की अच्छे प्रकार से शुद्धि, ज्ञान—योग में निरंतर दृढ़ स्थिति और दान तथा इंद्रियों का दमन, यश, स्वाध्याय तथा तप एवं शरीर और इंद्रियों के सहित अंतःकरण की सरलता।

कृष्ण दो संपदाओं की बात करते हैं, दो तरह के धन मनुष्य के पास हैं। धन का, संपदा का अर्थ होता है, शक्ति। धन का अर्थ होता है, जिसे हम उपयोग में ला सकें, जिससे हम कुछ खरीद सकें, जिससे हम कुछ पा सकें। धन का अर्थ है, विनिमय. का माध्यम, मीडियम आफ एक्सचेंज।

आपके खीसे में एक नोट पडा है। नोट एक प्रतीक है। नोट को न तो आप खा सकते हैं, न पी सकते हैं। लेकिन नोट से विनिमय हो सकता है। नोट से खाने की चीज खरीदी जा सकती है, पीने की चीज खरीदी जा सकती है। नोट भोजन बन सकता है, नोट जहर बन सकता है। नोट से कुछ खरीदा जा सकता है। नोट एक शक्ति है विनिमय की।

कृष्ण कहते हैं, मनुष्य के पास दो तरह की संपदाएं हैं, विनिमय के दो माध्यम हैं। एक से आदमी खरीद सकता है और शैतान हो सकता है। और एक से आदमी खरीद सकता है और परमात्मा हो सकता है।

और जब तक उन दोनों संपदाओं को हम ठीक से न समझ लें, तब तक बड़ी आंति रहेगी। क्योंकि बहुत बार ऐसा होता है, जिस संपदा से केवल शैतान खरीदा जा सकता है, उससे हम परमात्मा को खरीदने निकल पड़ते हैं। तब हम धोखा खाएंगे। तब जो भी हम खरीदकर लाएंगे, वह शैतान ही होगा।

जैसे, जिस धन से हम संसार में सब कुछ खरीदते—बेचते हैं, उसी धन से हम धर्म को भी खरीदने चल पड़ते हैं। तो कोई सोचता है, एक बड़ा मंदिर बनाए, धर्मशाला बनाए, दान कर दे, तो धर्म उपलब्ध हो जाएगा।

लेकिन संसार जिससे खरीदा जाता है, उससे अध्यात्म के खरीदने का कोई उपाय नहीं। उनके मार्ग ही अलग हैं, बाजार अलग हैं। जो धन संसार में चलता है, वह धन अध्यात्म में नहीं चलता; उस जगत से उसका कोई संबंध नहीं है।

कृष्ण कहते हैं, दो संपदाएं हैं। एक को वे कहते हैं, आसुरी संपदा; और एक को वे कहते हैं, दैवी संपदा। दैवी संपदा से अर्थ है, जिससे दिव्यता खरीदी जा सके।

तो ठीक से पहचान लेना जरूरी है कि मैं जिस संपदा का उपयोग कर रहा हूं र उससे दिव्यता खरीदी भी जा सकती है? नहीं तो मैं श्रम भी करूंगा, भटकूंगा भी, समय भी व्यय होगा और कहीं पहुंचूंगा भी नहीं।

इन दोनों का विभाजन बहुत जरूरी है। बहुत बार आप आसुरी संपदा से दिव्यता को खरीदने निकलते हैं। और न केवल आपको भांति हो सकती है, आपको देखने वालों तक को भ्रांति हो सकती है।

इधर मेरा अनुभव है कि अगर कोई क्रोधी व्यक्ति है, तो उसके क्रोध का उपयोग बडी शीघ्रता से साधना में किया जा सकता है। क्रोधी व्यक्ति जल्दी से साधक हो जाता है। क्योंकि क्रोध का लक्षण है, नष्ट करना, तोडना, कब्जा करना, मालकियत जमाना। क्रोध दूसरे पर निकलता है, अपने पर भी निकल सकता है; इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। आप दूसरे का सिर तोड़ सकते हैं, अपना सिर भी दीवार में मार सकते हैं। क्रोधी व्यक्ति खुद को सताने में लग जाता है। उसे वह साधना समझता है।

तो कांटो पर सोए हुए लोग हैं, धूप में खड़े हुए लोग हैं; उपवास करके भूख से मरते हुए लोग हैं। और आपको भी लगेगा कि बड़ी तपश्चर्या हो रही है। तपश्चर्या निश्चित हो रही है, लेकिन जानना जरूरी है कि तपश्चर्या के पीछे संपदा कौन—सी है? नहीं तो हम जानते हैं दुर्वासा और उस तरह के ऋषियों को। उनकी तपश्चर्या बड़ी थी, फिर भी तपश्चर्या की मौलिक संपदा आसुरी रही होगी। तप के पीछे जो अग्नि है, वह आसुरी रही होगी। इसलिए तप अभिशाप बन गया, तप हिंसा बन गया।

अक्सर दिखाई पड़ेगा तपस्वी की आंखों में एक तरह का अहंकार। तपस्वी में एक तरह की अकड़, न झुकने का भाव, स्वयं को कुछ समझने की वृत्ति। तप तो विनम्र करेगा, तप तो मिटा देगा, तप तो सारी अकड़ को जला देगा। लेकिन दिखाई पड़ता है कि तपस्वी की अकड़ बढ़ती है, तो निश्चित ही संपदा आसुरी उपयोग की जा रही है।

एक आदमी धन इकट्ठा करता है, तो पागल की तरह इकट्ठा करता है, जैसे जीवन बस धन इकट्ठा करने को है। फिर यह भी हो सकता है कि धन के इस लोभी को किसी दिन त्याग का खयाल आ जाए। त्याग के खयाल का एक ही अर्थ होगा कि इसको त्याग का लोभ पकड़ जाए। यह कहीं शास्त्र में पढ़ ले, किसी गुरु से सुन ले कि जब तक धन न छोड़ेगा तब तक स्वर्ग न मिलेगा। तो यह सौदा कर सकता है, यह धन छोड़ सकता है। लेकिन छोड़ेगा लोभ के कारण ही।

तो यह सारे धन को लात मारकर सडक पर नग्न भिखारी की तरह खडा हो जाए, लेकिन अगर धन इसने लोभ के लिए छोड़ा है, स्वर्ग पाने को छोड़ा है, तो जिस संपदा का यह उपयोग कर रहा है, वह आसुरी है। आसुरी संपदा से स्वर्ग का कोई संबंध नहीं है। इसे ठीक से समझ लें। क्योंकि आपकी अच्छी से अच्छी चर्या के पीछे भी आसुरी संपदा हो सकती है, तो सब विकृत हो जाएगा। तो आप महल तो बनाएंगे, लेकिन रेत पर उसकी नींव होगी। और वह महल गिरेगा और आपको भी गिराएगा और डुबाएगा।

मेरा निरंतर अनुभव है कि गलत तरह का आदमी बड़ी शीघ्रता से अच्छे काम करने में लग सकता है। जो पागलपन गलत के करने में था, वही अच्छे में लग सकता है। लेकिन उसकी मौलिक संपदा नहीं बदलती। उसका क्रोध, उसका लोभ, उसका मान नहीं बदलता, नया नियोजन हो जाता है। मौलिक स्वर पुराना ही रहता है।

इसलिए इसके पहले कि साधक यात्रा पर निकले, उसे ठीक से पहचान लेना जरूरी है कि क्या आसुरी है, क्या दैवी है। स्पष्ट विभाजन भीतर साफ हो, तो यात्रा बड़ी सुगम हो जाती है। क्योंकि गलत साधन से ठीक साध्य तक पहुंचने

का कोई उपाय नहीं है। अकेली आपकी मरजी काफी नहीं है, आकाक्षा काफी नहीं है, प्रार्थना काफी नहीं है, ठीक साधन ही ठीक साध्य तक पहुंचाएगा। और ठीक साधन का अर्थ है, दैवी संपदा का उपयोग।

दोनों संपदाएं प्रत्येक के पास हैं। उन्हें कमाना नहीं पड़ता, उन्हें हम लेकर ही पैदा होते हैं। जन्म के साथ ही हम दोनों संपदाएं लेकर पैदा होते हैं। और प्रत्येक व्यक्ति बराबर लेकर पैदा होता है। उस अर्थ में बिलकुल साम्यवाद है, उस अर्थ में जरा भी भेद नहीं है। गरीब से गरीब, अमीर से अमीर, बुद्धिमान या मूढ़, बराबर लेकर पैदा होते हैं। प्रकृति सबको समान देती है। और अगर इस जगत में इतने भेद दिखाई पड़ते हैं, तो हम उनका कैसा उपयोग करते हैं, इस पर निर्भर करते हैं।

अगर इस जगत में साधु दिखाई पड़ता है और दुष्ट दिखाई पड़ता है, तो प्रकृति किसी को साधु नहीं बनाती और दुष्ट नहीं बनाती। परमात्मा बिलकुल कोरा चेक ही आपको देता है, उस पर कुछ आंकड़े लिखे नहीं होते। लिखना हम करते हैं; और जो हम लिखते हैं, वह हम बन जाते हैं।

ध्यान रहे, प्रत्येक व्यक्ति बराबर संपदा लेकर पैदा होता है और दोनों संपदाएं बराबर लेकर पैदा होता है। इसलिए बच्चे इतने भोले मालूम पड़ते हैं। बच्चे के भोलेपन का राज यही है कि वह दोनों संपदाएं बराबर लेकर पैदा होता है। बराबर होने के कारण न तो वह साधु होता है, न असाधु होता है। दोनों संतुलित होती हैं। इसलिए बच्चा भोला होता है।

बच्चे के भोलेपन में और साधु के भोलेपन में बड़ा फर्क है। बच्चे का भोलापन अज्ञान से भरा हुआ है, साधु का भोलापन ज्ञान से भरा हुआ है। साधु का भोलापन दैवी संपदा का पूरा उपयोग है। बच्चे का भोलापन अनुपयोग है, अभी उसने कुछ उपयोग किया नहीं, अभी स्लेट खाली है। पर दोनों अक्षर लिखे जा सकते हैं, दोनों की क्षमता लेकर वह पैदा हुआ है।

इसलिए परम साधु की आंखें बच्चों जैसी हो जाती हैं। एक पुनर्जन्म हो जाता है। फिर से सब सरल हो जाता है। लेकिन यह सरलता बड़ी गहरी है, बच्चे की सरलता बड़ी उथली है।

बच्चे की सरलता दो विपरीत शक्तियों का संतुलन है, दोनों बराबर मात्रा में हैं और अभी यात्रा नहीं हुई है। जल्दी ही यात्रा शुरू होगी, और बच्चा एक तरफ झुकना शुरू हो जाएगा। जैसे—जैसे झुकेगा, वैसे—वैसे जटिलता बढ़ेगी। जैसे—जैसे झुकेगा, वैसे—वैसे भीतर कलह स्वभावत: टूटेगा, निर्मित होगा, दो हिस्से होने शुरू हो जाएंगे। और जो भी फिर बच्चा करेगा, दो आवाजें होंगी। चोरी करेगा, तो दो आवाजें होंगी; किसी को दान देगा, तो दो आवाजें होंगी। दोनों संपदाएं पुकारेंगी।

हर क्षण, जब भी आप कुछ निर्णय लेते हैं, दोनों शक्तियां आवाज देती हैं, कि मेरी तरफ। चोरी करने जाएं, तो कोई भीतर से कहता है, बुरा है; मत करो। और प्रार्थना करने जाएं, तो कोई भीतर से कहता है, क्यों फिजूल समय खराब कर रहे हो! इतनी देर में कुछ कमा लेते! अच्छा करें, तो भीतर से कोई कहता है, रुको। बुरा करें, तो भीतर से कोई कहता है, रुको। भीतर दो आवाजें हैं।

बच्चे की दोनों आवाजें अभी शांत हैं। अभी बच्चे ने चुनाव नहीं किया है। इसलिए बच्चा निर्दोष है। लेकिन यह निर्दोषता टिकेगी नहीं; टूटेगी ही। क्योंकि आज नहीं कल ये आवाजें उठेंगी। आज नहीं कल बच्चा संसार में जाएगा, विकल्प खड़े होंगे, चुनाव करना पड़ेगा। इसलिए बच्चा तो विकृत होगा।

साधु या परम साधु का अर्थ यह है कि वह सारी विकृतियों को पार करके संतुलन को उपलब्ध हुआ है। यह संतुलन किसी अज्ञान के कारण नहीं है; यह संतुलन परिपूर्ण जानकारी और परिपूर्ण होश में साधा गया है।

बच्चा भोला है, बिना अपने कारण। यह भोलापन कोई उपलब्धि नहीं है। इसलिए सभी बच्चे भोले हैं। यह जानकर हैरानी होगी कि सभी बच्चे प्यारे लगते हैं; कुरूप बच्चा वस्तुत: होता ही नहीं। जो भी बच्चा है, प्यारा लगता है।

लेकिन सारे प्यारे बच्चे फिर कहां खो जाते हैं! मुश्किल से कोई सुंदर आदमी बाद में बचता है। सभी बच्चे सुंदर पैदा होते हैं; बच्चों को देखकर सभी को सौंदर्य का भाव होता है। लेकिन फिर यही सारे बच्चे बड़े होते हैं, फिर बड़ी कुरूपता प्रकट होती है। शायद ही कभी कोई बच पाता है, जो बाद में भी सुंदर होता है। कहा खो जाती हैं सारी बातें?

बच्चे का सौंदर्य भी उसी संतुलन के कारण था। जैसे ही चुनाव हुआ, सौंदर्य खोना शुरू हो जाता है।

फिर परम संत को एक सौंदर्य उपलब्ध होता है, जिसके खोने का कोई उपाय नहीं। क्योंकि वह उपलब्धि है, वह स्वयं पाई गई बात है। वह प्रकृति का दान नहीं, अपनी अर्जित क्षमता है। और जो आपने कमाया है, वही केवल आपका है; जो आपको मिला है, वह आपका नहीं है।

ये दोनों संपदाएं बराबर प्रत्येक व्यक्ति के भीतर हैं।

उसके उपरात कृष्ण बोले कि हे अर्जुन, दैवी संपदा जिन पुरुषों को प्राप्त है तथा जिनको आसुरी संपदा प्राप्त है, उनके लक्षण पृथक—पृथक कहता हूं।

लक्षण इसीलिए ताकि आप पहचान सकें, ताकि अर्जुन पहचान सके। और यह पहचान अत्यंत बुनियादी है।

दैवी संपदा को प्राप्त हुए पुरुष के लक्षण : अभय, फियरलेसनेस। अभय शब्द सुनते ही हमें जो खयाल उठता है, वह उठता है निर्भयता का। लेकिन अभय निर्भयता नहीं है, क्योंकि निर्भय तो आसुरी संपदा वाले लोग भी होते हैं; अक्सर ज्यादा निर्भय होते हैं। अपराधी हैं, निर्भय हैं, नहीं तो अपराध करना मुश्किल था। और एक दफा जेल से लौटते हैं, तो भी भयभीत नहीं होते; दुबारा और तैयारी करके अपराध में उतरते हैं।

मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि कारागृह से तो किसी अपराधी को कभी ठीक किया ही नहीं जा सकता, क्योंकि उसकी निर्भयता और बढ़ती है। उसने यह भी देख लिया, वह इससे भी गुजर गया; यह तकलीफ भी बहुत ज्यादा नहीं है। यह भी सही जा सकती है। इसलिए जो आदमी एक बार कारागृह जाता है, वह फिर बार—बार जाता है। दुनिया में जितने कारागृह बढ़ते हैं, उतने अपराधी बढ़ते चले जाते हैं। जितनी ज्यादा हम सजा देते हैं, उतना अपराधी निर्भय होता है। यह थोड़ा समझ लेने जैसा है।

बहुत—से लोग इसीलिए अपराधी नहीं हैं, क्योंकि उनमें निर्भयता की कमी है; और कोई कारण नहीं है। अपराध तो वे भी करना चाहते हैं; भयभीत हैं। चोरी आप भी करना चाहते हैं, लेकिन भय पकड़ता है। चोरी के लोभ से ज्यादा चोरी का जो परिणाम हो सकता है—कारागृह हो सकता है, बदनामी होगी, प्रतिष्ठा खो जाएगी, पकड़े जाएंगे—वह भय ज्यादा मजबूत है। लोभ से भय बड़ा है; वही आप पर अंकुश है। हत्या आप भी करना चाहते हैं, कई बार मन में सोचते हैं, सपने देखते हैं; कई बार तो हत्या मन में कर ही देते हैं। ऐसा आदमी खोजना मुश्किल है, जिसने जीवन में दो—चार बार मन में किसी की हत्या न कर दी हो।

मनसविद कहते हैं कि हर आदमी अपने लंबे जीवन में, अगर वह सौ साल जीए तो कम से कम दस बार खुद की आत्महत्या करने का विचार करता है, औसत। करते नहीं हैं आप, उसका कारण यह नहीं है कि आप करना नहीं चाहते हैं। उसका कारण सिर्फ इतना है कि उतना निर्भय भाव नहीं जुटा पाते हैं। भय पकड़े रहता है।

मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन बड़ा नाराज था पत्नी से, और कलह कुछ ज्यादा ही बढ़ गई, तो आधी रात उठा और उसने कहा, बहुत हो चुका; जितना सह सकता था, सह लिया। हर चीज की सीमा आती है; और सीमा आ गई। मैं मरने जा रहा हूं इसी समय, झील में डूबकर। दरवाजा खोलकर बाहर निकलता था, पत्नी ने कहा, लेकिन नसरुद्दीन, तैरना तो तुम जानते ही नहीं! तो वह वापस लौट आया, उदास बैठ गया। उसने कहा, तो फिर मुझे कोई और उपाय सोचना पड़ेगा।

वे मरने जा रहे थे झील में, लेकिन तैरना नहीं आता तो कोई और उपाय सोचना पड़ेगा!

करना आप भी वही चाहते हैं, जो अपराधी करता है, लेकिन फर्क शायद निर्भयता का है।

कृष्ण अभय को दैवी संपदा का पहला लक्षण गिनाते हैं। और सिर्फ कृष्ण नहीं, महावीर भी अभय को बुनियादी आधार बनाते हैं; बुद्ध भी। महावीर ने कहा है कि अहिंसक तो कोई हो ही नहीं सकता, जब तक अभय न हो, क्योंकि भय से हिंसा पैदा होती है। लेकिन ध्यान रहे, हिंसक निर्भय हो सकता है, होता है। आखिर युद्ध के मैदान में जाता हुआ सिपाही निर्भय तो होता ही है, लेकिन हिंसक होता है। और महावीर कहते हैं, अभय का अंतिम परिणाम अहिंसा है। तो हमें निर्भयता और अभय में थोड़ा फर्क समझ लेना चाहिए।

निर्भय का अर्थ है, जिसके भीतर भय तो है, लेकिन उस भय से जो भयभीत नहीं होता और टिका रहता है। कायर वह है, उसके भीतर भी भय है, लेकिन वह भय से प्रभावित होकर भाग खड़ा होता है। कायर में और बहादुर में फर्क भय का नहीं है, भय दोनों में है। बहादुर भय के बावजूद भी खड़ा रहता है। कायर भय के पकड़ते ही भाग खड़ा होता है। भय दोनों के भीतर है, लेकिन कायर भय को स्वीकार कर लेता है और जिसको हम बहादुर कहते हैं, वह अस्वीकार करता है। लेकिन भय भीतर मौजूद है।

निर्भयता का अर्थ है, भय तो भीतर है, लेकिन हम उसे स्वीकार नहीं करते, हम उसके विपरीत खड़े हैं। अभय का अर्थ है, जिसके भीतर भय नहीं। इसलिए अभय को उपलब्ध व्यक्ति न तो कायर होता है और न बहादुर होता है, वह दोनों नहीं हो सकता। दोनों के लिए भय का होना एकदम जरूरी है। भय हो, तो आप कायर हो सकते हैं या बहादुर हो सकते हैं। भय न हो, तो आप अभय को उपलब्ध होते हैं।

अभय को कृष्ण कहते हैं पहला लक्षण दैवी संपदा का। क्यों? अगर अभय दैवी संपदा का पहला लक्षण है, तो भय आसुरी संपदा का पहला लक्षण हो गया।

भय किस बात का है? और जब आप निर्भयता भी दिखाते हैं, तो किस बात की दिखाते हैं? थोड़ा—सा ही सोचेंगे तो पता चल जाएगा कि मृत्यु का भय है। बहाना कोई भी हो, ऊपर से कुछ भी हो, लेकिन भीतर मृत्यु का भय है। मैं मिट न जाऊं, मैं समाप्त न हो जाऊं। दूसरी चीजों में भी, जिनमें मृत्यु प्रत्यक्ष नहीं है, वहा भी गहरे में मृत्यु ही होती है।

आपका धन कोई छीन ले, तो भय पकड़ता है। मकान जल जाए, तो भय पकड़ता है। पद छिन जाए, तो भय पकड़ता है। लेकिन वह भय भी मृत्यु के कारण है; क्योंकि पद के कारण जीवित होने में सुविधा थी; पद सहारा था। धन पास में था, तो सुरक्षा थी। धन पास में नहीं, तो असुरक्षा हो गई। मकान था, तो साया था; मकान जल गया, तो खुले आकाश के नीचे खडे हो गए।

जिन—जिन चीजों के छिनने से भय होता है, उन—उन चीजों के छिनने से मौत करीब मालूम पड़ती है। और जिन—जिन चीजों को हम पकड़ रखना चाहते हैं, वे वे ही चीजें हैं, जिनके कारण मौत और हमारे बीच में परदा हो जाता है। धन का ढेर लगा हो, तो हमारी आंखों में धन दिखाई पड़ता है, मौत उस पार छूट जाती है।

प्रतिष्ठा हो, पद हो, तो शक्ति होती है पास में, हम लड़ सकते हैं। बीमारी आए, मौत आए, तो कुछ उपाय किया जा सकता है। पास कुछ ची न् ले, ते कोई उपाय नहीं है, हम असुरक्षित मौत के हाथ में पड़ जाते हैं।

भय तो मृत्यु का है, सभी भय मृत्यु से उदभूत होता है। इसलिए उसको हम बहादुर कहते हैं, जो मौत के सामने भी अकड़कर खड़ा रहता है। कोई बंदूक लेकर आपकी छाती पर खड़ा हो, भाग खड़े हुए, तो लोग कायर कहते हैं; पीठ दिखा दी!

पश्चिम में युवकों का आंदोलन है, हिप्पी। हिप्पी शब्द बहुत महत्वपूर्ण है। हिप्पी शब्द का वही मतलब होता है, जो रणछोड़दास का होता है, जिसने हिप दिखा दिया, जिसने पीठ दिखा दी, जो भाग खड़ा हुआ। जो युवक हिप्पी कहे जा रहे हैं पश्चिम में, लेकिन उनका फलसफा है, उनका एक दर्शन है। वे कहते हैं, लड़ना फिजूल है। और लड़ना किसलिए? और लड़ने से मिलता क्या है? इसलिए पीठ दिखाई है जान—बूझकर।

ये जो बहादुर और कायर हैं, इन दोनों की समस्या एक है। कायर पीठ दिखाकर भाग जाता है। बहादुर पीठ नहीं दिखाता, खड़ा रहता है, चाहे मिट जाए। लेकिन दोनों के भीतर भय है।

अभय उस व्यक्ति को हम कहेंगे, जिसके भीतर भय नहीं है। लेकिन यह तभी हो सकता है, जब मृत्यु के संबंध में हमारी समस्या हल हो गई हो। जब हमें किसी भांति यह प्रतीति हो गई हो कि मृत्यु है ही नहीं; जब हमने किसी अनुभव से यह रस पहचान लिया हो कि भीतर अमृत छिपा है, कि मैं मरणधर्मा नहीं हूं।

आत्मभाव जगा हो, तो अभय पैदा होगा। इसलिए अभय आत्मा का नाम है। जिसने आत्मा को जरा—सा भी पहचाना, उसके जीवन में अभय हो जाएगा।

इसे कृष्ण पहला आधार बना देते हैं। क्यों? सत्य की यात्रा पर, ब्रह्म की यात्रा पर, दिव्यता के आरोहण में अभय पहला आधार क्यों?

अभय की संभावना बनती है, अमृत की थोड़ी—सी प्रतीति हो तो। और अमृत की प्रतीति हो, तो आदमी छलांग ले सकता है ब्रह्म में; नहीं तो छलांग नहीं ले सकता। अगर भीतर डर समाया हो कि मैं मिट तो न जाऊंगा, तो ब्रह्म तो मृत्यु से भी ज्यादा भयानक है। क्योंकि मृत्यु में तो शायद शरीर ही मिटता होगा, आत्मा बच जाती होगी। ब्रह्म में आत्मा भी नहीं बचेगी। महामृत्यु है। उस विराट में तो मैं ऐसे खो जाऊंगा, जैसे बूंद सागर में खो जाती है, कोई नाम—रूप नहीं बचेगा।

तो जिसको हम मृत्यु कहते हैं, यह तो अधूरी मृत्यु है। आत्मा बच जाएगी, नए शरीर ग्रहण करेगी, नई यात्राओं पर निकलेगी। लेकिन जो व्यक्ति ब्रह्म—ज्ञान को उपलब्ध हुआ, फिर उसकी कोई यात्रा नहीं है, फिर वह महाशून्य में खो गया। इसलिए हम कहते हैं, परम ज्ञानी वापस नहीं आता।

बुद्ध से लोग बार—बार पूछते हैं, कि मृत्यु के बाद बुद्धत्व को प्राप्त व्यक्ति का क्या होता है? तो बुद्ध कहते हैं, जैसे दीए की ज्योति को कोई फूंककर बुझा दे, तो फिर तुम पूछते हो या नहीं कि दीए की ज्योति का क्या हुआ, कहां गई? ऐसा ही बुद्ध पुरुष खो जाता है; जैसे दीए को कोई फूंककर बुझा दे, ऐसे ही बुद्ध पुरुष खो जाता है।

तो बुद्धत्व तो महामृत्यु हुई। हमारी ज्योति तो थोड़ी—बहुत बचेगी, नए दीए में जलेगी, और नए दीए खोजेगी; नए घर, नए शरीर ग्रहण करेगी। लेकिन बुद्ध की ज्योति? दीया भी मिट गया, ज्योति भी खो गई।

कृष्ण अभय को पहला आधार बनाते हैं दैवी संपदा का। क्योंकि दिव्यता में जिसे भी प्रवेश करना हो, उसे अपने को पूरी तरह मिटाने का साहस चाहिए। कौन अपने को पूरा मिटा सकता है? वही जिसको पूरा भरोसा है कि मिटने का कोई उपाय नहीं। यह बात विपरीत मालूम पड़ेगी, विरोधाभासी लगेगी।

वही व्यक्ति अपने को मिटा सकता है, जिसे भरोसा है कि मिटने का कोई उपाय नहीं है; वह सहजता से छलांग ले सकता है। वह अग्नि में उतर सकता है, क्योंकि वह जानता है कि अग्नि जलाएगी नहीं। वह शस्त्रों से छिद सकता है, क्योंकि वह जानता है कि शस्त्र छेदेंगे नहीं। इस आस्था पर ही अभय विकसित होगा।

अभय, अंतःकरण की अच्छी प्रकार से शुद्धि।

अंतःकरण के साथ बड़ी भ्रांतियां जुड़ी हैं। समाज ने अंतःकरण का बड़ा उपयोग किया है। समाज की पूरी धारणा ही अंतःकरण के शोषण पर निर्भर है। समाज सिखा देता है बचपन से ही हर बच्चे को, क्या करने योग्य है, क्या करने योग्य नहीं है। और इस बात को इतने जोर से स्थापित करता है, हृदय में इस बात को इतनी बार पुनरुक्त किया जाता है कि कंडीशनिंग, संस्कारबद्ध धारणा बैठ जाती है। फिर जब भी आप उसके विपरीत जाने लगते हैं, कि समाज का सिखाया हुआ अंतःकरण फौरन विरोध खड़ा करता है। इसलिए हर समाज के पास अलग—अलग तरह के अंतःकरण हैं। अगर आप एक शाकाहारी घर में पैदा हुए हैं, तो उस घर ने आपको शाकाहारी का अंतःकरण दिया। अगर मांस

आपके सामने आ जाए, तो आप सिर्फ ग्लानि से भरेंगे। आपकी जीभ से पानी और रस नहीं बहेगा, सिर्फ ग्लानि; वमन हो सकता है, उल्टी आ सकती है।

यही मांस किसी दूसरे के सामने, जो मांसाहारी घर में पैदा हुआ है, बड़े स्वाद को जगा सकता है। इसी मांस को देखकर उसकी सोई हुई भूख जग सकती है; भूख न भी हो, तो भी भूख लग सकती है। एक दूसरे शाकाहारी घर में पैदा व्यक्ति को इसी मांस को देखकर बड़ी जुगुप्सा, बड़ी घृणा पैदा होती है।

निश्चित ही, यह अंतःकरण असली अंतःकरण नहीं है। यह अंतःकरण सिखाया हुआ, शिक्षित अंतःकरण है। यह समाज ने उपयोग किया हुआ है। गलत और सही का सवाल नहीं है। समाज को एक बात समझ में आ गई है कि अगर व्यक्तियों को नियंत्रण में रखना हो, व्यवस्था में रखना हो, तो इसके पहले कि उनका वास्तविक अंतःकरण बोलना शुरू हो, हमें जो—जो धारणाएं डालनी हों, उनमें डाल देनी चाहिए।

मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि सात वर्ष की उम्र तक आपका आधा मस्तिष्क निर्मित हो जाता है। आधा, पचास प्रतिशत, सात वर्ष में! फिर पूरी जिंदगी में शेष पचास प्रतिशत निर्मित होता है। और यह जो पचास प्रतिशत सात वर्ष में निर्मित होता है, यह आधार है। इसके विपरीत जाना कठिन है। फिर पूरी जिंदगी इसके अनुकूल ही ले जाना आसान है। और अगर इसके विपरीत आप ले गए, तो बड़ी दुविधा और बड़ी कलह में जिंदगी बीतेगी।

इसलिए सभी तथाकथित धार्मिक संप्रदाय बच्चों का शीघ्रता से शोषण करने को उत्सुक होते हैं। जो धर्म भी अपने बच्चों को धार्मिक शिक्षा नहीं देता, फिर बाद में आशा नहीं रख सकता। सात वर्ष के पहले ही धारणाएं प्रविष्ट हो जानी चाहिए। धारणाएं मजबूत भीतर बैठ जाएं, तो वास्तविक अंतःकरण की आवाज सुनाई ही नहीं पड़ती; समाज के द्वारा दिया गया अंतःकरण ही बीच में बोलता रहता है।

कृष्ण जब कहते हैं, अंतःकरण की अच्छे प्रकार से शुद्धि, तो वे यही कह रहे हैं कि समाज ने जो धारणाएं दी हैं, उनसे जब तक छुटकारा न हो अंतःकरण का, तब तक वास्तविक आपकी आत्मा बोल न पाएगी। हिंदू बोल सकता है भीतर से, मुसलमान बोलेगा, जैन बोलेगा, ईसाई बोलेगा, आस्तिक—नास्तिक बोलेगा। लेकिन आप जो लेकर पैदा हुए हैं, वह जो दैवी स्वर आपके भीतर है, वह

छिपा रहेगा। उसके प्रकट होने के लिए अंतःकरण की सारी परतें अलग हो जानी चाहिए।

क्यों कृष्ण अर्जुन से ऐसा कह रहे हैं? क्योंकि अर्जुन जो ज्ञान की बातें कर रहा है, वे उसके अंतःकरण से नहीं आ रही हैं; वे सामाजिक धारणाएं हैं। वह कह रहा है, ये मेरे गुरु हैं, तो जिस गुरु के मैंने चरण छुए, उसकी मैं हत्या कैसे करूं! कि ये मेरे सगे भाई हैं, कि मेरे बंधु—बांधव हैं, ये मेरे मित्र, प्रियजन हैं। ये जो उस तरफ खड़े हैं युद्ध में, इसमें अनेक मेरे संबंधियों के संबंधी या संबंधी हैं। भीष्म पितामह उस तरफ हैं, वे मेरे आदर योग्य हैं। इन सबके साथ मैं कैसे युद्ध करूं? ये मेरे अपने हैं, ये सगे—संबंधी हैं।

कौन आपका अपना है?

जीसस एक भीड़ में खड़े थे। और उन्होंने एक बड़ा कठोर वचन उपयोग किया है, जिसकी निरंतर आलोचना की गई है। क्योंकि जीसस जैसे व्यक्ति से ऐसे शब्द की आशा नहीं थी। किसी ने भीड में आवाज दी कि जीसस, तुम्हारी मां मरियम तुमसे मिलने बाहर आई है। तो जीसस ने कहा, मेरी न कोई मां है, न मेरा कोई पिता है।

कठोर वचन है। और जीसस जैसे अत्यंत करुणावान, महा करुणावान व्यक्ति से ऐसी बात की आशा नहीं है। निश्चित ही, उनका प्रयोजन कुछ भिन्न है।

जीसस यह कह रहे हैं कि कौन मां है! कौन पिता है! जहां तक शुद्ध अंतःकरण का सवाल है, न कोई पिता है, न कोई माता है। न कोई भाई है, न कोई बंधु है। जहां तक समाज के द्वारा दिए गए अंतःकरण का संबंध है, मां है, पिता है, भाई—बंधु हैं। ये सब सिखावन हैं, से सब संस्कार हैं।

अर्जुन कह रहा है, यह बुरा है। और कृष्ण यह कह रहे हैं कि यह तेरे अंतःकरण की आवाज नहीं; तुझे जो—जो बुरा बताया गया है, उसे—उसे तू बुरा कह रहा है। यह तेरी अपनी प्रतीति नहीं है, तेरी अंतःप्रज्ञा नहीं है, तेरा बोध नहीं है। यह तू नहीं कह रहा है, तेरे भीतर से समाज की धारणाएं बोल रही हैं।

और जब तक समाज की धारणाओं को हम हटा न सकें, तब तक शुद्ध अंतःकरण का कोई पता नहीं चलता। शुद्ध अंतःकरण का मतलब यह नहीं है कि भले आदमी का अंतःकरण। क्योंकि जिसको हम भला आदमी कहते हैं, वह तो समाज की ही मान्यताओं को मानकर चलने वाला आदमी है; उसको हम भला कहते हैं। बुरा हम उसको कहते हैं, जो समाज की मान्यताएं नहीं मानता।

मगर यह धारणा रोज बदल जाती है। क्योंकि जीसस जिस जमाने में पैदा हुए, लोगों ने उन्हें बुरा कहा, क्योंकि जिस यहूदी समाज में वे पैदा हुए, उसकी मान्यताएं उन्होंने नहीं मानी। तो जीसस को लोगों ने आवारा, उपद्रवी, अपराधी समझा, इसलिए यहूदियों ने जीसस को सूली लगाई। सूली लगाते वक्त उन्होंने खयाल रखा कि जीसस को अपराधियों के साथ सूली लगाई जाए। तो दोनों तरफ दो चोरों को सूली पर लटकाया, बीच में जीसस को, ताकि समाज समझ ले कि एक अपराधी की तरह हम जीसस को सजा दे रहे हैं। इस आदमी ने समाज की धारणाओं का विरोध किया, यह बुरा आदमी है।

लेकिन फिर जीसस के मानने वाले लोगों का समाज धीरे— धीरे निर्मित हुआ और जीसस उनके लिए सबसे अच्छे आदमी हो गए। तो जीसस से कोई अच्छा आदमी हुआ ही नहीं ईसाइयों के लिए। बड़ी कठिनाई है। यहूदियों के लिए यह आदमी बुरा है, सूली लगाने योग्य है। ईसाइयों के लिए यह आदमी भला है, परमात्मा का इकलौता बेटा है, पूजने योग्य है। यही एकमात्र सहारा है मुक्ति का। यही मार्ग है, द्वार है; इसके बिना कोई द्वार नहीं है।

इतनी भिन्न धारणा!

अंतःकरण का सवाल नहीं है। यहूदी के पास एक सामाजिक धारणा है, उससे तौलता है। ईसाई के पास दूसरी सामाजिक धारणा है, उससे तौलता है।

इस मुल्क में ऐसा निरंतर हुआ है, हर मुल्क में होगा, हर मुल्क में होता रहा है। जो आज हमें बुरा दिखाई पड़ता है, कल भला हो सकता है। समाज की धारणा बदल जाए, तो मापदंड बदल जाता है। जो आज हमें अच्छा लगता है, वह कल बुरा हो सकता है। धारणा बदल जाए, तराजू बदल जाता है, तौलने के उपाय बदल जाते हैं।

अंतःकरण की शुद्धि से अर्थ अच्छे आदमी का अंतःकरण नहीं है। अंतःकरण की शुद्धि का अर्थ है, शुद्ध अंतःकरण। शुद्ध अंतःकरण का अर्थ अच्छा नहीं है। शुद्ध अंतःकरण का अर्थ है, जिसमें कुछ और मिलाया हुआ नहीं है।

और ध्यान रहे, दो शुद्ध चीजें भी मिल जाएं, तो अशुद्धि पैदा होती है। शुद्ध पानी और शुद्ध दूध को मिला दें, तो दोहरी शुद्धि पैदा नहीं होती। पानी भी अशुद्ध हो जाता है, दूध भी अशुद्ध हो जाता है। अशुद्ध का मतलब है, कुछ अन्य मिला दिया गया, कुछ विजातीय मिला दिया गया। शुद्ध का अर्थ है, कुछ भी मिलाया नहीं, खालिस, जैसा था वैसा।

जैसा अंतःकरण हम लेकर पैदा हुए हैं, जो किसी ने हमें दिया नहीं, समाज ने जिसे निर्मित नहीं किया, जो हमारी भीतरी संपदा है, उस शुद्ध अंतःकरण को, कृष्ण कहते हैं, अगर हम निखार लें, समाज की धारणाओं के रूखे—सूखे पत्ते अलग कर दें, भीतर छिपी पानी की धार नजर में आ जाए, तो दैवी संपदा का दूसरा लक्षण है। फिर उसके ही सहारे, उस अंतःकरण के सहारे दिव्यता तक पहुंचा जा सकता है।

जिसको आप अभी अच्छा और बुरा कहते हैं, वह सिर्फ सामाजिक मान्यता है। किसी दूसरे समाज में मान्यताएं बदल जाती हैं, तो दूसरी मान्यताएं हो जाती हैं। जमीन पर कोई हजारों तरह के समाज हैं। ऐसी कोई मान्यता नहीं है, जो किसी न किसी समाज में अच्छी न मानी जाती हो, और ऐसी भी कोई मान्यता नहीं है, जो किसी न किसी समाज में बुरी न मानी जाती हो। सब तरह की बातें अच्छी मानी जाती हैं, सब तरह की बातें बुरी मानी जाती हैं।

ऐसे समाज हैं, जहां सगी बहन से विवाह करना अच्छा माना जाता है। जहां पिता मर जाए, तो ऐसे समाज हैं, जहां बड़े बेटे को मां से विवाह करना अच्छा माना जाता है। ऐसे समाज हैं, जहां पिता का हो जाए, वृद्ध हो जाए, तो जीवित पिता को अग्निसंस्कार दे देना बड़े बेटे का कर्तव्य माना जाता है। और इन सबकी अपनी धारणाएं हैं, और अपनी धारणाओं के तर्क हैं। और अगर उनके तर्क को सहानुभूति से समझें, तो उनकी बात भी सही मालूम पड़ सकती है। जिन समाजों में भाई और बहन का विवाह प्रचलित है, अफ्रीका के कुछ कबीले, उनका कहना यह है कि भाई और बहन ही पति और पत्नी बन सकते हैं। क्योंकि उनमें इतना सामीप्य है, इतनी निकटता है, उन दोनों के पास एक—सा स्वभाव है। किसी भी दूसरी स्त्री से विवाह करना, दो विपरीत संस्कारों में पले, दो विपरीत परिवारों में पले व्यक्तियों को कठिनाई होगी,. अड़चन होगी, उपद्रव होगा। और भाई और बहन के बीच एक स्वाभाविक नैसर्गिक प्रेम है, इसी प्रेम को रूपांतरित किया जाए।

उनकी बात में भी बल मालूम पड़ता है। जिन मुल्कों में विरोध है, उनकी बात में भी बल मालूम पड़ता है। क्योंकि वे कहते हैं, अगर भाई और बहन में विवाह हो, तो फिर भाई और बहन के बीच प्रारंभ से ही कामुक संबंधों को रोकने का कोई उपाय नहीं। तो परिवार प्राथमिक रूप से ही कामुक संबंधों में उलझ जाएगा। कामुक संबंध अगर बचपन से इस भांति खुले छोड़ दिए जाएं, तो जीवन प्राथमिक आधार से विलास की ओर बढ़ेगा और प्रेम की एक पवित्र धारणा विकसित न हो पाएगी। और प्रेम का एक पवित्र रूप भी है, जहां यौन का कोई संबंध नहीं है। अगर भाई—बहन में वह विकसित न हुआ, तो फिर कहां विकसित होगा? उस पवित्र प्रेम की लकीर फिर सदा के लिए खो जाएगी। उनकी बात में भी बल है।

कह मैं यह रहा हूं कि जिस समाज ने भी जो धारणा मानी है, उसके कारण हैं, उसके ऐतिहासिक विकास में आधार है; कुछ वजह से मानी है। उस धारणा को ही मानकर जो चलता है, वह अच्छा आदमी तो हो सकता है, बुरा आदमी हो सकता है। लेकिन जिसको शुद्ध अंतःकरण का आदमी कहें, वह उन धारणाओं को मानकर कोई नहीं हो सकता।

इसका यह अर्थ नहीं कि शुद्ध अंतःकरण का आदमी सारी धारणाओं को तोड़ दे, समाज का दुश्मन हो जाए। यह अर्थ नहीं कि समाज की बगावत करे, उच्छृंखल हो जाए। शुद्ध अंतःकरण का आदमी अपने भीतर अंतःकरण को धारणाओं से मुक्त करने में लग। और उस बिंदु पर अपने अंतःकरण को ले आएगा, जहां समाज की कोई छाप नहीं है, जहां उसका अंतःकरण दर्पण की भांति शुद्ध है, जैसा वह जन्म के साथ लेकर पैदा हुआ था, जब समाज ने कुछ भी लिखा नहीं था, खाली, शून्य।

उस अंतःकरण के माध्यम से ही दैवी संपदा को खोजा जा सकता है, दिव्यता को खोजा जा सकता है। क्योंकि उस अंतःकरण में जो स्वर उठते हैं, वे दिव्यता के स्वर हैं। जिस अंतःकरण को हम अंतःकरण मानते हैं, उसमें जो स्वर उठते हैं, वे समाज के स्वर हैं। ज्ञान—योग में निरंतर दृढ़ स्थिति.।

ज्ञान—योग में निरंतर दृढ़ स्थिति! एक तो हमारा जीवन है, जिसे हम मूर्च्छा में दृढ़ स्थिति कह सकते हैं। जो भी हम करते हैं, सोए हुए करते हैं। हमें कुछ पक्का पता नहीं, हम क्यों कर रहे हैं; क्यों हमने क्रोध किया, क्यों हमने प्रेम किया, क्यों हमने जीवन ऐसा बिताया, जैसा हमने बिताया, कुछ साफ नहीं है।

एक अंधेरे में शराब पीए हुए जैसे कोई आदमी चलता हो, और कहीं भी पहुंच जाए; न रास्ते का कुछ पता है, न दिशा का कोई पता है; यह भी हो सकता है कि गोल घेरे में चक्कर ही लगाता रहे और सोचे कि बड़ी यात्रा हो रही है। ऐसी हमारी दशा है। मूर्च्छा में हमारी दृढ़ स्थिति है।

ज्ञान—योग में दृढ़ स्थिति का अर्थ है, जागरूकता में दृढ़ स्थिति, अवेयरनेस में, होश में। उठुं बैठूं? चलूं जो भी व्यवहार हो, आचरण हो, जो भी परिणमन हो, वह मेरे पूरे होश में हो। मेरे ज्ञान का दीया जलता रहे। क्यों कर रहा हूं? इसकी मुझे पूरी प्रतीति हो। बिना गहरे प्रत्यक्ष होश के कुछ भी मुझसे न निकले।

जिसको कृष्णमूर्ति अवेयरनेस कहते हैं, महावीर ने जिसको सम्यक ज्ञान कहा है, बुद्ध ने जिसको सम्यक स्मृति कहा है, कबीर, नानक, दादू जिसको सुरति—योग कहते हैं, ज्ञान—योग में दृढ़ स्थिति का वही अर्थ है। मूर्च्छित न हो व्यवहार; अचेतन शक्तियां मुझसे कुछ न करवा लें; मेरा कृत्य चेतन हो, काशस हो।

किसी आदमी ने आपको धक्का दिया। इधर धक्का नहीं दिया कि उधर से क्रोध की लपट भभक उठती है। यह क्रोध का भभकना वैसे ही है, जैसे किसी ने बटन दबाई और बिजली जली। बटन दबाने के बाद बिजली का बल्ब सोचता नहीं कि जलूं या न जलूं। यह भी नहीं सोचता कि इस आदमी ने जलाया, तो मैं कोई परवश तो नहीं हूं; चाहूं तो जलूं? चाहूं तो न जलूं! न, कोई उपाय नहीं है। यंत्रवत, यंत्र ही है। तो बिजली का बल्ब जल जाता है।

जब कोई आपको धक्का देता है, तो क्रोध भी आप में अगर ऐसा ही पैदा होता हो, जैसे बटन दबाने से बल्ब जलता है, तो आप भी यंत्रवत हो गए। तो जिस आदमी ने आपको धक्का दिया, उसने आपको परिचालित कर लिया, वह आपका मालिक हो गया, स्वामित्व उसके हाथ में चला गया, उसने आप में क्रोध पैदा करवा लिया।

और शायद आप कई दफा कसमें खा चुके हैं कि अब क्रोध न करूंगा, कई दफा निर्णय लिया है कि क्रोध दुख देता है! शास्त्र के शब्द स्मरण हैं कि क्रोध अग्नि है, जहर है। वह सब है। लेकिन किसी ने धक्का दिया, तो वह सब एकदम हट जाता है। भीतर से क्रोध उठ आता है। यह क्रोध भूच्छइृत है।

बुद्ध को कोई धक्का दे, तो क्रोध ऐसे ही नहीं उठता, क्रोध उठता ही नहीं। बुद्ध धक्के को देखते हैं कि धक्का दिया गया, और अपने भीतर देखते हैं कि धक्के से क्या हो रहा है, और निर्णय करते हैं कि मुझे क्या करना है। आपका धक्का निर्णायक नहीं है। आपके धक्के के बाद भी बुद्ध ही निर्णायक हैं, वे निर्णय करते हैं कि मुझे क्या करना है।

आप जब क्रोध करते हैं, तो निर्णय आपका नहीं है। दूसरा आपसे निर्णय करवा लेता है। एक खुशामदी आ जाता है और आपकी प्रशंसा करता है और आपसे काम करवा लेता है। आप भी जानते हैं कि यह खुशामदी है और आप भी जानते हैं कि किसी की

स्तुति में पड़ना ठीक नहीं। लेकिन बस, कोई स्तुति करता है, तो फिर स्मरण नहीं रहता; फिर भीतर कुछ बल्ब जल जाते हैं। फिर भीतर कुछ काम शुरू हो जाता है, जो दूसरे ने चालित किया।

जो व्यक्ति अपने निर्णय से प्रतिपल नहीं जी रहा है, जिससे दूसरे लोग निर्णय करवा रहे हैं, जिसे दूसरे लोग धक्के दे रहे हैं, मैनिपुलेट कर रहे हैं, जो दूसरों से परिचालित है, ऐसा व्यक्ति मूर्च्छा में दृढ़ ठहरा हुआ है।

होश में ठहरे हुए व्यक्ति का लक्षण है कि वह स्वयं चल रहा है, स्वयं उठ रहा है; और जो भी कर रहा है, वह उसका अपना निर्णय है, वह उसने सचेतन रूप से लिया है! कोई अचेतन शक्तियों ने उससे निर्णय नहीं करवाया है।

चौबीस घंटे आपके भीतर बड़ा हिस्सा अचेतन है, जिसको फ्रायड ने बड़ी कोशिश की विश्लेषण करने की। फ्रायड के हिसाब से, जैसे हम बरफ के टुकड़े को पानी में डाल दें, तो नौ हिस्सा पानी में डूब जाता है और एक हिस्सा ऊपर होता है, ऐसा आपका एक हिस्सा केवल होशपूर्ण है, नौ हिस्से नीचे डूबे हुए हैं पानी में और उनका आपको कुछ भी पता नहीं है। और वे नौ हिस्से आपसे चौबीस घंटे काम करवा रहे हैं। वे काम आपको करने ही पड़ते हैं। और आप निर्णय भी ले लें कि नहीं करूंगा, तो भी कोई फर्क नहीं पड़ता। क्योंकि निर्णय एक हिस्सा लेता है, उससे नौ गुनी ताकत के मन के विचार भीतर दबे पड़े हैं, वे उसकी सुनते भी नहीं।

आप तय कर लेते हैं, सुनते हैं ब्रह्मचर्य पर एक व्याख्यान, पढ़ते हैं कोई किताब, जंचती है बात बुद्धि को, वह जो एक हिस्सा पानी के ऊपर तैर रहा है, आप तय कर लेते हैं। लेकिन वे नौ हिस्से, जो पानी के नीचे दबे हैं, उनको आपकी किताब का कोई पता नहीं, ब्रह्मचर्य का कोई पता नहीं; उन्होंने कोई यह बात सुनी नहीं कभी, वे अपनी धारणा से चल रहे हैं। वे मिले हैं नौ हिस्से आपको जन्मों—जन्मों की लंबी यात्रा में। अनंत संस्कारों, पशुओं, पौधों, वृक्षों से गुजरकर उनको आपने इकट्ठा किया है। वे अब भी वही हैं। उनको कुछ पता भी नहीं है। वे अपने ही ढंग से चलते हैं; उनकी ताकत नौ गुनी ज्यादा है।

जब भी कामना मन को पकड़ेगी, तो वह जो एक हिस्सा है, नपुंसक सिद्ध होगा। वे जो नौ गुने ताकतवर हैं, वे शक्तिशाली सिद्ध होंगे और वे आपको मजबूर कर लेंगे। और उनकी मजबूरी इतनी शक्तिशाली है कि वे आपके इस एक हिस्से को भी तर्क देंगे और यह एक हिस्सा भी रेशनलाइज करेगा। यह भी कहेगा कि छोड़ो, यह सब ब्रह्मचर्य वगैरह में कुछ सार नहीं है। और यह भी कहेगा कि ब्रह्मचर्य साधना है, तो जल्दी क्या है, अभी जिंदगी बहुत पड़ी है!

हजार तर्क! वे नौ हिस्से धक्के देकर एक हिस्से को राजी करवा लेंगे। जब वे नौ हिस्से अपना काम पूरा करवा लेंगे, तब फिर एक हिस्सा बातें सोचने लगेगा भली— भली। फिर ब्रह्मचर्य वापस लौटेगा। लेकिन यह हमेशा कमजोर सिद्ध होगा नौ के मुकाबले। यह अड़चन है प्रत्येक मनुष्य की। जो भी मनुष्य थोड़ा जीवन को बदलने की कोशिश में लगा है, उसकी यह कठिनाई है कि वह तय करता है, लेकिन पूरा नहीं हो पाता।

कृष्ण कहते हैं, दैवी संपदा तभी सक्रिय होगी, जब कोई व्यक्ति ज्ञान—योग में निरंतर दृढ़ स्थित हो।

होश इतना सधा हुआ हो...। जितना ज्यादा होश सधता है, उतना ही पानी के ऊपर बर्फ आना शुरू हो जाता है। जितना ज्यादा आप होश का प्रयोग करते हैं, उतना ज्यादा आपका अचेतन कम होने लगता है, चेतन बढ़ने लगता है। और एक ऐसी स्थिति भी है टोटल अवेयरनेस की, परिपूर्ण प्रज्ञा की, जब आपका पूरा का पूरा मन प्रकाशित होता है, होश से भरा होता है।

उस स्थिति में जो भी निर्णय लिए जाते हैं, उनका कोई विरोध नहीं है। उस स्थिति में जो भी आप तय करते हैं, वह होगा ही, क्योंकि उससे विपरीत आपके भीतर कोई स्वर नहीं है। उस स्थिति में जो भी जीवन है, वह। कोई पश्चात्ताप नहीं है। उस जीवन में सभी कुछ आनंद है और सभी कुछ अद्वैत है।

सारी साधना प्रक्रियाएं ज्ञान—योग में दृढ़ स्थिति के ही उपाय हैं। सारे ध्यान, सारी प्रार्थनाएं, सारी विधियां, कैसे आप ज्यादा से ज्यादा होश में जीने लगें, मूर्च्छा टूटे, अमूर्च्छा बढ़े.।

और दान तथा इंद्रियों का दमन, यज्ञ, स्वाध्याय तथा तप एवं शरीर और इंद्रियों के सहित अंतःकरण की सरलता।

दान, देने का भाव, बहुत आधारभूत है। आसुरी संपदा है लेने का भाव, छीनने का भाव। जो दूसरे के पास है, वह मेरा कैसे हो जाए। सारा सब मेरा कैसे हो जाए पजेशन, सारी दुनिया का मैं मालिक कैसे हो जाऊं। और दैवी संपदा देने की भावना है। जो भी मेरे पास है, वह बंट जाए। जो भी मैं हूं उसे मैं साझेदारी कर लूं। जो मेरे पास है, वह दूसरा भी उसमें रस ले पाए वह दूसरे का भी हो सके।

कृष्ण यह नहीं कहते, क्या दान—कि धन का दान, कि संपत्ति का दान, कि भूमि का दान—यह सवाल नहीं है। सिर्फ दान! भाव!

तो महावीर अपने ज्ञान को बाट रहे हैं, कि बुद्ध अपनी करुणा को बांट रहे हैं, कि जीसस अपनी सेवा को। यह सवाल नहीं है कि क्या! बहुत गहरे में जो भी मैं हूं वह मेरा न रहे, वह सबका हो जाए। जो भी मैं हूं मैं बिखर जाऊं और सबमें चला जाऊं, मेरा अपना कुछ बचे न। इसके स्वाभाविक बड़े गहरे परिणाम होंगे। जितना ही मैं छीनने का सोचता हूं उतना ही मेरा अहंकार बढ़ता है। इसलिए जितनी मेरे पास संपदा होगी, जितनी मेरे पास सुविधा—साधन होंगे, उतना अहंकार होगा। जितना ही मैं बटता हूं उतना ही मैं पिघलता हूं। जितनी ही मैं साझेदारी करता हूं जितना ही मेरा अस्तित्व दूसरे के अस्तित्व में लीन होता है, उतना ही मेरा अहंकार शून्य होगा।

दैवी संपदा के पास अस्मिता नहीं बचेगी, और आसुरी संपदा के पास सिर्फ अस्मिता ही बचेगी। अहंकार शैतान की आखिरी उपलब्धि है। निरअहंकारिता परमात्म— भाव है।

तो दान का अर्थ है, देना, और देने की वृत्ति को विकसित करना; और उस घड़ी की प्रतीक्षा करना, जब मेरे पास कुछ भी न होगा देने को। इसका यह अर्थ नहीं है कि आपके पास कुछ भी न होगा। सब कुछ होगा; जितना आप देंगे, उतना बढ़ेगा। जितना आप बाटेंगे, उतना ज्यादा होगा। जितना आप अपने को शून्य करेंगे, उलीचेंगे, उतना ही पाएंगे कि साम्राज्य बड़ा होता जाता है। देने का अर्थ यह नहीं है कि आपके पास कुछ बचेगा नहीं, लेकिन देने का भाव कि कुछ भी न बचे।

दान, प्रेम का सार है। छीनना, घृणा का आधार है। तो अगर प्रेम में भी आप दूसरे से कुछ लेना चाहते हैं, तो वह प्रेम नहीं है। वहा सिर्फ प्रेम के नाम पर शोषण है। जहां मांग है, वहा प्रेम की कोई संभावना नहीं है। प्रेम निपट दान है, बेशर्त। वह कुछ पाने की आकाक्षा से नहीं है, देना ही आनंद है। और जिसने लिया, उसके प्रति अनुग्रह है।

दान तथा इंद्रियों का दमन।

दान और इंद्रियों के दमन को कृष्ण ने एक साथ कहा। यह भी थोड़ा विचारणीय है। क्योंकि जितना ही आप देंगे, उतनी ही इंद्रियां अपने आप विसर्जित हो जाती हैं। जितना ही आप लेंगे, इकट्ठा करेंगे, उतनी ही इंद्रियां मजबूत होती चली जाती हैं। इंद्रियां छीनना चाहती हैं; और जो देने को राजी है, उसकी इंद्रियां धीरे—धीरे शून्य हो जाती हैं। इंद्रियों का दमन इंद्रियों से लड़कर नहीं उपलब्ध होता है। इंद्रियों का दमन स्वयं की निजता को पूरी तरह बाट देने से उपलब्ध होता है। जो अपने भीतर अपने लिए बचाता नहीं, उसकी इंद्रियां अपने आप शात हो जाती हैं।

यह जो इंद्रियों की शांति है, जो दान से या प्रेम से फलित होती है, इस शाति में और इंद्रियों को दबा लेने में बड़ा फर्क है, बुनियादी विरोध है। कोई व्यक्ति अगर इंद्रियों को जोर से दबा ले, तो भीतर अशांति पैदा होगी, शाति पैदा नहीं होगी।

आप किसी भी इंद्रिय को दबाकर देखें। और आप पाएंगे कि उस दबाने से और अशांति पैदा होती है, क्योंकि इंद्रिय निकलना चाहती है, बाहर आना चाहती है, भोग में जाना चाहती है। इंद्रिय आपको कहीं ले जाना चाहती है।

जो दबाएगा, वह तो और अशात हो जाएगा। लेकिन अगर कोई अपने को बांटने को राजी है, तो उसकी इंद्रियां अपने आप शात होती चली जाएंगी।

इस फर्क को आप ऐसा समझें। आप उपवास करें एक दिन। तो क्या करेंगे? उपवास करेंगे, तो दबाएंगे भूख को। भूख रोज लगी है, आज भी लगेगी; उसे दबाएंगे। दबाएंगे तो भूख और फैलेगी रोएं—रोएं में भीतर। और चौबीस घंटे सिर्फ भोजन का स्मरण आपका स्मरण होगा।

लेकिन घर में एक मेहमान आया है। और घर में इतना ही भोजन है कि या तो आप कर लें या मेहमान को करा दें। और आप प्रसन्न हैं कि मेहमान घर में आया, और आप आनंदित हैं। तो आपने मेहमान को भोजन कराया। यह उपवास बड़े और ढंग का होगा। इस उपवास में एक खुशी होगी, एक प्रफुल्लता होगी। भूख अब भी लगी है, लेकिन आपने भूख को दबाया नहीं, आपने भोजन को बांटा, आपने दान किया।

इसलिए मां, अगर बेटा भूखा हो, तो उसे खिला देगी, खुद भूखी सो जाएगी। इस उपवास का मजा और है। इस उपवास में जो आनंद है, वह किसी साधारण साधु के, संन्यासी के उपवास में नहीं हो सकता। क्योंकि वह केवल भूख को दबा रहा है। इसने भूख को दबाया नहीं है, भोजन को बांटा है। यहा बुनियादी फर्क है। यहां किसी और की भूख को पूरा किया है। और उसकी भूख को पूरा किया है, जिसके प्रति प्रेम है।

दान, अगर जीवन के सब पहलुओं में समा जाए, तो सभी इंद्रियां अपने आप शात हो जाती हैं। और दान से ही दमन आए, तो दमन में एक उत्सव है। बिना दान के दमन आए—लोभ से भी दमन आता है—तब एक तरह की विकृति और कुरूपता है।

यह फर्क बारीक है, नाजुक है। और इसको आप प्रयोग करेंगे, तो ही खयाल में आ सकता है। अपने को वंचित करना किसी को देने के लिए, तब उस वंचित करने में एक सुख है। और सिर्फ अपने को वंचित. करना बिना किसी को देने के खयाल से, उसमें कोई रस नहीं है, कोई सुख नहीं है। उसमें पीड़ा होगी।

तो आप भूखे रह सकते हैं, और जो पैसा बचे, वह बैंक में जमा कर सकते हैं। उस भूख में सिर्फ भूख ही होगी।

भूखे रहना प्राथमिक न हो, किसी का पेट भरना प्राथमिक हो। और अगर उसके पीछे भूखे रहना पड़े, तो भूखे रहने की स्वीकृति हो।

दान से सारी इंद्रियां रूपांतरित हो सकती हैं। आप नग्न खड़े हो जाएं सड़क पर, यह एक बात है। यह नग्नता अधूरी है, और इस नग्नता में अहंकार है। लेकिन कोई नग्न खड़ा हो और अपने वस्त्र उसको ओढ़ा दें, उस नग्नता का रस और है। उस नग्नता में न अहंकार है, न तप का कोई भाव है। उस नग्नता की पवित्रता और पूर्णता और है। उसका गुणधर्म और है।

लेकिन अक्सर यह हुआ कि जो भी धर्म दान के माध्यम से जीवन को रूपांतरित करने को पैदा हुए, दान तो भूल गया, वह जो दान का आधा हिस्सा था, वह भीतर रह गया। उस आधे हिस्से का कोई अर्थ नहीं है।

आप खूब उपवास कर सकते हैं, लेकिन आपका उपवास किसी के पेट भरने का हिस्सा होना चाहिए। आप बिलकुल दरिद्र हो सकते हैं, उसका कोई मूल्य नहीं है। आपकी दरिद्रता किसी को समृद्ध करने का हिस्सा होना चाहिए, तब बात पूरी होती है। और तब जीवन में इंद्रियों का उत्पात जिस भांति शांत होता है, उस भांति कोई भी दमन करके कभी उन्हें शात नहीं कर पाया।

यज्ञ, स्वाध्याय, तप, शरीर और इंद्रियों के सहित अंतःकरण की सरलता।

यज्ञ एक वैज्ञानिक प्रक्रिया का नाम है। उसके बाह्य रूप से तो हम परिचित हैं। लेकिन बाह्य रूप तो सिर्फ प्रतीक है। बाहर के प्रतीक से कुछ भीतर की बात कहने की कोशिश की गई है। यज्ञ एक तकनीक है, एक विधि है, कि भीतर कैसे अग्नि प्रज्वलित हो, और उस अग्नि में मैं कैसे भस्मीभूत हो जाऊं।

सारा जीवन अग्नि का खेल है। आप भी अग्नि के एक रूप हैं। भोजन पच रहा है, खून बन रहा है, खून दौड़ रहा है, हृदय गति करता है, श्वास चलती है, सब अग्नि का खेल है। शरीर से अग्नि

खो जाए, सब खो जाता है। आप ठंडे हुए, कि मौत आ गई। मौत सदा ठंडी है। जीवन सदा गर्म है। जीवन एक उष्णता है। हिंदुओं ने इस उष्णता के बड़े गहरे प्रयोग किए हैं। उन गहरे प्रयोगों का नाम यज्ञ है।

यह जो जीवन की उष्णता है, जिससे साधारण काम चल रहा है, भोजन पच रहा है। आप सोच भी नहीं सकते, वैज्ञानिक भी अभी तक राज को पूरा खोल नहीं पाए। इस छोटे—से शरीर में बड़ा विराट कार्य चल रहा है। भोजन आप करते हैं, पचता है, खून बनता है, मांस—मज्जा बनती है।

वैज्ञानिक कहते हैं कि अगर एक आदमी के शरीर के भीतर जितना काम होता है—एक रोटी को हम डालते हैं, खून और मांस—मज्जा बन जाती है। अभी तक रोटी को मशीन में डालकर खून, मांस—मज्जा बनाने की कोई हम व्यवस्था नहीं खोज पाए हैं। वैज्ञानिक सोचते हैं कि कभी यह संभव होगा—पक्का नहीं कहा जा सकता कब, लेकिन कभी संभव होगा—तो एक आदमी का शरीर जितना काम करता है, इतना काम करने के लिए कम से कम चार वर्ग मील

की यांत्रिक व्यवस्था करनी पड़ेगी। इतनी बड़ी फैक्टरी चार वर्ग मील के क्षेत्र पर फैले, तब हम आदमी के शरीर के भीतर जो काम चल रहा है पूरा, इतना काम उसमें कर पाएंगे। बड़ा अदभुत काम चल रहा है, और बड़े चुपचाप चल रहा है।

लेकिन सबके भीतर—जैसा हिंदुओं की धारणा, योग की धारणा है—सबके भीतर एक अग्नि प्रज्वलित है, अग्नि सारा काम कर रही है। प्रदीप्त अग्नि है भीतर। श्वास हम लेते हैं, वह भी अग्नि ही है। दीया जलता है, वह भी अग्नि ही है। वैज्ञानिक उसको आक्सीडाइजेशन कहते हैं।

एक दीया जल रहा हो, और जोर से हवा का झोंका आए, आप डर जाएंगे कि कहीं बुझ न जाए; बर्तन से ढंक दें, कांच के बर्तन से ढंक दें। थोड़ी देर, क्षणभर तो जलता रहेगा, फिर बुझ जाएगा। तूफान शायद न बुझा पाता, लेकिन ढंके हुए बर्तन में बुझ जाएगा, क्योंकि प्रतिपल जलने के लिए आक्सीजन चाहिए। वह जितनी आक्सीजन भीतर है, उतनी देर जल जाएगा, फिर बुझ जाएगा।

चौबीस घंटे हम श्वास ले रहे हैं, उससे आक्सीजन भीतर जा रही है, वह अग्नि है, सूक्ष्म अग्नि है। श्वास बंद हुई कि आदमी मरा। श्वास ठीक से न ली, तो जीवन क्षीण हो जाता है।

तो योग की प्रक्रियाओं के द्वारा भीतर की इस अग्नि को धूं— धूं करके प्रज्वलित करने की प्रक्रियाएं हैं। उनका नाम यज्ञ है। और जब यह धूं— धूं करके भीतर की अग्नि पूरी जलती है, तो इससे सिर्फ भोजन ही नहीं पचता, शरीर ही नहीं चलता, जीवन के साधारण दैनंदिन कार्य ही नहीं होते, धू— फर जब अग्नि जलती है, तो उसमें हमारा अहंकार जल जाता है। और उस अग्नि से गुजरकर ही हमें पहली दफा पूरी दिव्यता का अनुभव होता है। और अहंकार के जलते ही कचरा जल जाता है, स्वर्ण निखरकर बाहर आता है। स्वाध्याय का अर्थ है, अपना सदा अध्ययन करते रहना। स्वाध्याय का अर्थ गीता पढ़ना नहीं है, वह गौण अर्थ है। वेद पढ़ना नहीं है, वह गौण अर्थ है। स्वाध्याय का अर्थ है, स्वयं का निरंतर अध्ययन, स्वयं को निरंतर देखते रहना। एक—एक छोटी—छोटी गतिविधि को पहचानते रहना, परखते रहना, विश्लेषण करते रहना। क्या मैं कर रहा हूं र क्यों कर रहा हूं क्या छिपे कारण है—उन सबकी पूरी जांच—परख करते रहना। स्वयं को एक अध्ययन की जीवंत प्रक्रिया बना लेना। स्वप्न भी भीतर पैदा हो, तो उसका भी अध्ययन करना कि वह क्यों घटा!

कोई स्वप्न ऐसे ही नहीं घटता। आप रात स्वप्न देखते हैं, किसी की हत्या कर देते हैं। ऐसे ही हत्या नहीं होती। स्वप्न में भी ऐसे ही नहीं होती। कहीं कुछ छिपा राज है, कुछ होना चाहता है, स्वप्न में उसको अभिव्यक्ति मिली है। स्वप्न से लेकर कृत्यों तक सभी कुछ अध्ययन करते रहना। स्वयं को एक शास्त्र बना लेना और उससे सीखना कि क्या हो रहा है। लिए गए परिणाम और नतीजों पर आगे उपयोग करने का नाम तप है।

स्वाध्याय तथा तप.......।

जो स्वयं के अध्ययन से निष्कर्ष हों, उन निष्कर्षों के अनुसार चलने का नाम तप है। तप का मतलब इतना नहीं है कि अपने को अकारण सताना, परेशान करना, कि अपने को दुख देना। तप का अर्थ है, जो मेरे अध्ययन से नतीजे निकले हैं, उन नतीजों के अनुसार जीवन को चलाना।

कठिन होगा, और दुख झेलना पड़ेगा, संकल्प का उपयोग करना पड़ेगा। क्योंकि पुरानी आदतें हैं, वे सुगम हैं। चाहे उनसे दुख मिलता हो अंत में, लेकिन वे सुगम हैं। उन्हें बदलना दुर्गम होगा, दुख उठाना पड़ेगा। लेकिन एक बार वे बदल जाएं, तो आनंद की मंजिल उनसे उपलब्ध होती है। सम्यकरूप से स्वयं के निरीक्षण से जो नतीजे हाथ आए हों, उन नतीजों को लिखकर रख देना नहीं, वरन उनके अनुसार जीवन को चलाना तपश्चर्या है।

और शरीर और इंद्रियों के सहित अंतःकरण की सरलता।

और जीवन के सब पहलुओं पर जटिलता की बजाय सरलता को जगह देना। जो भी जटिल हो, उससे बचने की कोशिश करना। जो भी सरल हो, उसको स्थापित करना।

आमतौर से हम उलटा करते हैं। जो भी जटिल हो, वह हमें आकर्षित करता है। अगर एक पहेली सामने रखी हो, जो बहुत उलझन वाली हो, तो हम पच्चीस काम छोड़कर उसको हल करने में लग जाते हैं। जटिल हमें आकर्षित करता है। जटिल क्यों आकर्षित करता है?

एवरेस्ट है वहा, तो आदमी का मन चढ़ने का होता है। एडमंड हिलेरी से किसी ने पूछा कि तुम एवरेस्ट पर चढ़ने के लिए इतने पागलपन से क्यों भरे रहे? तो उसने कहा, चूंकि एवरेस्ट है, इसलिए चढ़ना ही पड़ेगा; चुनौती है।

तो जितनी जटिल हो चीज.......। अब चांद पर जाने की कोई जरूरत नहीं है, पर जाना पड़ेगा। मंगल पर भी जाने की कोई जरूरत नहीं है, लेकिन जाना पड़ेगा, क्योंकि मंगल है और हमारा मन बेचैन है। हालाकि आप चांद पैर पहुंच जाएं कि मंगल पर, आप ही रहेंगे! जो उपद्रव आप यहां कर रहे हैं, वहा करेंगे! मंगल आप में कोई फर्क ला नहीं सकता। और यहा दुखी हैं, तो वहा दुखी होंगे! पहुंचकर कुछ भी होगा नहीं।

लेकिन जटिल आकर्षित करता है, क्योंकि जटिल में चुनौती है। चुनौती से अहंकार भरता है। तो जितना कठिन काम हो, उतना करने जैसा लगता है। जितना सरल काम हो, उतना करने जैसा नहीं लगता, क्योंकि सरलता से कोई अहंकार को भरती नहीं मिलती। कृष्ण कहते हैं, शरीर, इंद्रियों और अंतःकरण की सभी आयामों में सरलता।

जो सरल हो, उसको चुनें। और धीरे— धीरे आप पाएंगे, आपका अहंकार जाने लगा। जो कठिन है, उसको चुनें। और आप पाएंगे, आपका अहंकार बढ़ने लगा।

आदमी खुद भी अपने लिए कठिनाइयां पैदा करता है। क्योंकि कठिनाइयां पैदा करके जब उनको वह पार कर लेता है, तो वह दुनिया को कह सकता है, देखो, इतनी कठिनाइयों को मैंने पार किया! सरलता को आप किसको बताने जाइएगा कि पार किया! उसमें पार करने जैसा कुछ था ही नहीं।

अगर आप जीवन में सरलता को नियम बना लें और जब भी कोई विकल्प सामने हो, तो सरल को चुनें.......। बहुत कठिन है यह, सरल को चुनना, क्योंकि अहंकार को इसमें कोई रस नहीं आता।

सिर के बल खड़े हो जाएं रास्ते पर, पचास लोग भीड़ लगाकर खड़े हो जाते हैं। आप दोनों पैर के बल खड़े हों, फिर कोई भीड़ लगाकर खड़ा नहीं होता। सिर के बल खड़े होते से ही भीड़ लग जाती है, क्योंकि आप कुछ कर रहे हैं, जो कठिन है। हालांकि सिर के बल खड़े होने से कुछ मिलता नहीं, लेकिन भीड़ इकट्ठी होती है। और भीड़ इकट्ठी हो, तो हमें रस आता है।

काफ्का, एक बहुत प्रसिद्ध कथाकार, उसने एक छोटी—सी कहानी लिखी है। एक आदमी उपवास करता था, उपवास का प्रदर्शन करता था। वह चालीस दिन तक उपवास कर लेता था। लोग बड़े प्रभावित होते थे। गांव—गांव वह जाता था और चालीस दिन के उपवास करता था। फिर एक सरकस गांव में थी जहां वह उपवास कर रहा था, तो सरकस वाले लोगों को जंच गई बात, उन्होंने उसको सरकस में ले लिया। सरकस में भी उसको देखने बड़ी भीड़ इकट्ठी होती थी। लेकिन यह धीरे— धीरे.....।

अगर आप रोज ही सिर के बल खड़े रहें, तो फिर भीड़ इकट्ठी नहीं होगी। फिर लोग कहते हैं, वह खड़ा ही रहता है, ठीक है। वह जो आदमी उपवास करता था, वह करता ही था। तो पहले तो लोगों को कठिन लगा, चालीस दिन! इधर करता, तो कोई कठिन भी नहीं लगता हमको। हमारे मुल्क में कई लोग कर ही रहे हैं। जर्मनी में कर रहा था, तो बहुत कठिन बात थी; चालीस दिन बहुत बड़ी बात है। पर धीरे— धीरे लोगों को लगा, यह करता ही है, अभ्यासी है। लोगों ने उसकी झोपड़ी का टिकट लेना बंद कर दिया। फिर सरकस के लोगों को लगा, अब कोई ज्यादा उसकी टिकट भी नहीं खरीदता, तो फिजूल उसको क्यों ढोना! तो उन्होंने उससे कहा कि अब तुम जाओ। पर उसने कहा कि अब मैं जा नहीं सकता, क्योंकि मैं बिना उपवास किए रह नहीं सकता। मुझे रहने दो। तो उन्होंने सबसे पीछे जहां जंगली जानवरों के कुछ कटघरे थे, वहा उसका भी एक कटघरा बना दिया।

लोग आते थे फिर भी, कोई शेर को देखने आता, कोई हाथी को देखने आता, तो उसके कटघरे से निकलते थे। वह इससे भी रस लेता था। वह अपने मन में यह सोचता था कि चलो, मुझे देखने आते हैं। हालाकि उसको लगता था कि अब यहां मुझे देखने कोई आता नहीं।

जब चालीस दिन का कोई परिणाम न रहा, तो उसने घोषणा की कि अब मैं सदा के लिए उपवास कर रहा हूं। कोई अस्सी दिन वह टिक गया। जब अस्सी दिन की खबर पहुंची, तो लोग आने शुरू हुए। नब्बे दिन के करीब पहुंच गया, तो एक पत्रकार ने उसके कान के पास जाकर पूछा, क्योंकि उसकी आवाज अब बिलकुल क्षीण हो गई थी, कि तू यह किसलिए कर रहा है? तो उसने बिलकुल क्षीण आवाज में कहा कि मैं सब रिकार्ड तोड़ देना चाहता हूं; मर जाऊं भला, मगर रिकार्ड तोड़ देना है। मुझसे ज्यादा बड़ा उपवास करने वाला दुनिया में कभी भी नहीं हुआ!

जटिल में एक रस है, रिकार्ड तोड्ने का रस। सरल में कोई रिकार्ड ही नहीं है, सभी लोग उसको करते ही रहे हैं।

कृष्ण कहते हैं, दिव्यता की तरफ जिसे जाना है, उसे सरलता का चुनाव जीवन के सब पहलुओं पर.......।

जब भी चुनाव हो, तो सरल का, सरलतम का। और आप धीरे— धीरे पाएंगे, अहंकार बचा ही नहीं जिसको मिटाना है। और अहंकार खो जाए, तो आसुरी संपदा की जड़ कट गई। निरअहंकारिता आ जाए, तो दैवी संपदा का द्वार खुल गया।

गीता दर्शन–(भाग–7)
अध्याय—16 (प्रवचन—दूसरा) — दैवीय लक्षण

सूत्र—

अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिरपैशुनम्।
दया भूतेष्वलोलुप्त्वं मार्दवं ह्रीरचापलम्।।2।।
तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रोहोनातिमानिता ।
भवन्ति संपदं दैवीमीभिजातस्य भारत।।3।।
दैवी संयदायुक्त पुरुष के अन्य लक्षण हैं : अहिंसा, सत्य, अक्रोध, त्याग, शांति और किसी की भी निंदादि न करना तथा सब भूत प्राणियों में दया, अलोलुपता, कोमलता तथा लोक और शास्त्र के विरुद्ध आचरण में लज्जा और व्यर्थ चेष्टाओं का अभाव; तथा तेज, क्षमा, धैर्य और शौच अर्थात बाहर— भीतर की शुद्धि एवं अद्रोह अर्थात किसी में भी शत्रु— भाव का न होना और अपने में पूज्यता के अभिमान का अभाव— ये सब तो हे अर्जुन, दैवी संपदा को प्राप्त हुए पुरूष के लक्षण हैं।

पहले कुछ प्रश्न।
पहला प्रश्न :
आश्चर्य है कि जब आप बोलते हैं, तभी वाणी के माध्यम से हमें आपका शिखर थोड़ा दिखाई पड़ता है। ऐसा क्यों?
स्वभावतः, शब्द समझ में आते हैं; मौन समझ में नहीं आता। शब्द तो बुद्धि से भी पकड़ लिए जाते हैं, मौन को पकड़ने के लिए तो हृदय चाहिए। बुद्धि का शिक्षण है आपके पास, बुद्धि की धारणाओं की, बुद्धि के तर्क की, बुद्धि की भाषा की पकड़ है। मौन, शून्य, ध्यान की कोई पकड़ नहीं है।

जिसे आप समझ सकते हैं, उसे आप समझ लेते हैं। उसे भी पूरा समझते हैं, कहना कठिन है। क्योंकि जो केवल शब्द को ही समझता है और शून्य को नहीं, वह शब्द को भी पूरा नहीं समझ पाएगा। साधारण बोलचाल के शब्द, साधारण जीवन और काम और चर्या के शब्द तो वस्तुओं के प्रतीक हैं। शास्त्रों के शब्द अनुभूतियों के प्रतीक हैं। और अनुभूतियां तो बड़ी सूक्ष्म हैं, आकार में उन्हें बांधा नहीं जा सकता, नाम देना संभव नहीं है, परिभाषाएं बनती नहीं हैं, फिर भी शब्द आपको सुनाई पड़ते हैं और सुनाई पड़ने से आपको लगता है कि समझ में आ गया।

थोड़ी—सी झलक मिलती है, तो उससे मुझसे संबंध बनता है। अगर मैं चुप बैठा हूं, तो फिर कोई संबंध नहीं बनता, सेतु खो जाता है। फिर जब मैं चुप बैठा हूं तब आप अपनी ही बातों को सोचते हैं; मुझसे संबंध नहीं बनता, आपका अपने से ही संबंध रहता है। जब मैं बोल रहा हूं, तब थोड़ी देर को आपका मन बंद हो जाता है। आपका अपने मन से संबंध टूट जाता है और मुझसे संबंध जुड़ जाता है।

इसलिए सुनकर आपको जितनी शांति मिलती है, उतनी अगर मैं शांत बैठा हूं तो मेरे पास शांत बैठकर न मिलेगी। मिलनी चाहिए ज्यादा। क्योंकि जब मैं मौन हूं तब आप मेरे पास हैं ही नहीं। तब आप अपने पास हैं। आपका मन भीतर चल रहा है। आपका जो निरंतर का उपद्रव है, उसमें आप डूबे हैं। जब मैं बोल रहा हूं तब बीच—बीच में आपका मन छिटक जाता है, आप थोड़े मेरे पास आ जाते हैं। उस क्षण में कुछ प्रतीतियां आपको हो सकती हैं।

लेकिन ध्यान रहे, जो मैं कह रहा हूं वह, शब्द में कहा जाने योग्य नहीं है। इसलिए शब्द से ही जो मुझे समझेंगे, वे नहीं समझ पाएंगे। और उनकी समझ अधकचरी होगी; नासमझी ज्यादा होगी उससे, समझदारी कम। मौन में भी मुझे समझने की कोशिश करनी होगी। स्वभावत:, शब्द की तैयारी है, जीवनभर शब्द आपने सीखा है, मौन आपने कभी सीखा नहीं। उसे भी सीखना होगा, उसके प्रशिक्षण से भी गुजरना होगा। ध्यान उसी का प्रशिक्षण है।

इसलिए आधा जोर मेरा मैं आपसे बोलता हूं उस पर है, और आधा जोर मेरा इस पर है कि आपके भीतर बोलने की प्रक्रिया बंद हो, आप ध्यानस्थ हों। जैसे—जैसे आप ध्यानस्थ होंगे, वैसे—वैसे ही मेरा न बोलना आपकी ज्यादा समझ में आएगा। और बोलने में भी जो आप समझेंगे, वह शब्दों के पार है, उसकी झलक मिलनी शुरू हो जाएगी।

शब्द भी शून्य के संकेत बन जाते हैं, लेकिन उसके लिए हृदय की तैयारी चाहिए। और हम एक ही तरह का संबंध जानते हैं, एक ही कम्युनिकेशन, एक ही संवाद का रास्ता जानते हैं कि बोलें। भाषा के अतिरिक्त हमारे बीच कोई संबंध नहीं है। भाषा न हो, हमारे सब संबंध खो जाएं।

पश्चिम के मनसविद पति—पत्नियों को सलाह देते हैं कि जैसा प्राथमिक क्षणों में पति और पत्नी ने एक—दूसरे से प्रेम के शब्द बोले थे, उनको जारी रखना चाहिए।

स्वभावत:, पति—पत्नी उन्हें छोड़ देते हैं। उनकी जरूरत नहीं रह जाती। जब आप पहली बार किसी के प्रेम में पड़ते हैं, तो कुछ शब्द बोलते हैं, जो कि निरंतर साथ रहने पर, विवाहित हो जाने पर, फिजूल मालूम पड़ेंगे।

लेकिन मनोवैज्ञानिक कहते हैं, उन्हें दोहराते रहना चाहिए, अन्यथा प्रेम समाप्त हो जाएगा। क्योंकि शब्द ही हमारा कुल संबंध है। तो पति चाहे वह बीस वर्ष से पत्नी के साथ हो, तो भी उसे रोज दोहराना चाहिए कि मैं तेरे प्रेम में पागल हूं। मनोवैज्ञानिक कहते हैं, चाहे यह सत्य न भी मालूम पड़े, चाहे यह प्रतीति न भी होती हो, लेकिन प्रेम की भाव—भंगिमा, प्रेम के शब्द, प्रेम की मुद्राएं जारी रखनी चाहिए, अन्यथा संबंध टूट जाएगा।

अधिक पति—पत्नियों का जीवन उदास और ऊब से भर जाता है। उसका बहुत कारण यह नहीं है कि उनके जीवन का प्रेम समाप्त हो गया। प्रेम था, तो समाप्त होता भी नहीं। शब्द थे पहले, अब वे शब्द छूट गए। और निरंतर उन्हीं शब्दों को दोहराना बेहूदा मालूम पड़ता है। शब्द छूट गए, संबंध छूट गया।

मौन को तो कोई समझता नहीं। अगर कोई आपको प्रेम करता हो और कहे न, तो आप पकड़ ही न पाएंगे कि प्रेम करता है। किसी तरह प्रकट न करे—भाव— भंगिमा से, आख के इशारे से, शब्दों से, ये सभी शब्द हैं—चुप रहे, तो आप कभी भी न पहचान पाएंगे कि कोई आपको प्रेम करता है। कहना पड़ेगा, प्रकट करना पड़ेगा।

और तब एक बड़े मजे की घटना घटती है। प्रेम न भी हो और अगर कोई कुशल हो प्रकट करने में, तो आपको लगेगा कि प्रेम है। बहुत बार, जो अभिव्यक्ति में कुशल है, वह प्रेमी बन जाता है। जरूरी नहीं है कि प्रेम हो। क्योंकि प्रेम को आप समझते नहीं, आप सिर्फ शब्दों को समझते हैं।

पति—पत्नी उदास होने लगते हैं, क्योंकि उन्हीं—उन्हीं शब्दों को क्या बार—बार कहना! फिर उनमें कुछ रस नहीं मालूम पड़ता। लेकिन शब्दों के खोते ही संबंध खो जाता है।

मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन एक नौकरी के लिए इंटरव्यू दे रहा था। और इंटरव्यू लेने वाले अफसर ने कहा कि क्या आप शादीशुदा हैं? उसने कहा कि नहीं, मैं वैसे ही दुखी हूं।

शादीशुदा आदमी की शक्ल दूर से ही पहचानी जा सकती है। एक ऊब घेर लेती है। और इस ऊब का कुल कारण इतना है कि जिन शब्दों के कारण प्रेम प्राथमिक रूप से संवादित हुआ था, वे शब्द आपने छोड़ दिए।

प्रेम भी समझ में नहीं आता शब्द के बिना, तो प्रार्थना तो कैसे समझ में आएगी, परमात्मा तो कैसे समझ में आएगा! क्योंकि प्रेम पहला चरण है, प्रार्थना दूसरा चरण है, परमात्मा अंतिम चरण है। फिर और गहरे चरण हैं; प्रेम, प्रार्थना, परमात्मा एक से ज्यादा गहरे हैं। परमात्मा को तो समझना बहुत ही कठिन है। उसके लिए भी हमें शब्दों का प्रयोग करना पड़ता है।

इसलिए जब मैं बोलता हूं तब आपको किसी शिखर की प्रतीति हो सकती है, लेकिन वह शिखर वास्तविक शिखर नहीं है। जिस दिन मैं चुप बैठा हूं आपके पास और आपको कुछ अनुभूति हो, उसी दिन जानना कि किसी वास्तविक की प्रतीति का पहला, पहला आघात, पहला संघात हुआ, पहली बिजली आपके भीतर क्रोधी। मेरे बोलने का सारा प्रयोजन ही इतना है कि कुछ लोगों को उस घड़ी के लिए तैयार कर लूं, जब मैं न बोलूं, तब भी वे समझ पाएं। और अगर कुछ लोग उसके लिए तैयार नहीं हो पाते, तो बोलना व्यर्थ गया जानना चाहिए।

बोलने की अपनी कोई सार्थकता नहीं है, सार्थकता तो मौन की ही है। बोलना ऐसे ही है, जैसे छोटे बच्चे को हम सिखाते हैं, ग गणेश का। ग का गणेश से कुछ लेना—देना नहीं है। ग गधे का भी उतना ही है। गणेश प्रतीक हैं; उसके सहारे हम ग को समझाते हैं। फिर समझ जाने के बाद गणेश को याद रखने की जरूरत नहीं है। और जब भी आप ग पढ़ें, तो बार—बार दोहराने की जरूरत नहीं कि ग गणेश का। और अगर यह दोहराना पड़े, तो आप पढ़ ही न पाएंगे। तब तो कुछ पढ़ना संभव न होगा; तब आप पहली कक्षा के बाहर कभी जा ही न पाएंगे।

तो जो भी मैं कह रहा हूं वह ग गणेश का है। सब कहा हुआ प्रतीक है। तैयारी इसकी करनी है कि वह छूट जाए और आप चुप होने में समर्थ हो जाएं, तब जो दर्शन होगा, वह दर्शन वास्तविक शिखर का है।

दूसरा प्रश्न :
रात आपने कहा कि प्रार्थना परमात्मा तक पहुंचा देती है और यह भी कहा कि प्रार्थना जीवन की शैली है। क्या इस विषय पर थोड़ा और प्रकाश डालेंगे? धर्म—साधना में प्रार्थना का क्या स्थान है?
प्रार्थना परमात्मा तक पहुंचा देती है, शायद यह कहना बिलकुल ठीक नहीं है। ज्यादा ठीक होगा कहना कि प्रार्थना परमात्मा बना देती है। प्रार्थना करते—करते ऐसा नहीं होता कि आप परमात्मा को पा लेते हैं; प्रार्थना करते—करते ऐसा होता है कि आप खो जाते हैं और परमात्मा बचता है।

प्रार्थना की परिपूर्ण उपलब्धि आपके भीतर परमात्मा का आविष्कार है। प्रार्थना एक विधि है, जिससे हम अपने भीतर को निखारते हैं, वह एक छेनी है, जिससे हम पत्थर को तोड़ते हैं। और पत्थर में मूर्ति छिपी है। सिर्फ व्यर्थ पत्थर को तोड़कर अलग कर देना है, मूर्ति प्रकट हो जाएगी।

मूर्तिकार मूर्ति को बनाता नहीं, केवल उघाड्ता है। अनगढ़ पत्थर में छिपी जो पडी थी, मूर्तिकार उसे बाहर ले आता है। अनगढ़ पत्थर में जो—जो अंग व्यर्थ थे, गैर—जरूरी थे, उनको अलग करता है। इसे थोड़ा ठीक से समझें।

मूर्तिकार मूर्ति को बनाता नहीं है, केवल उघाड़ता है, निर्वस्त्र करता है, वह जो ढंका था, उसे अनढंका कर देता है। मूर्ति तो थी ही, उस पर कुछ अनावश्यक भी जुड़ा था, उस अनावश्यक को तोड़ता है।

प्रार्थना आप में जो अनावश्यक है, उसको तोड़ती है; जो अनिवार्य है, उसको बचाती है। जो आत्यंतिक है, वही शेष रह जाता है, और जो भी सांयोगिक है, वह हट जाता है।

आपके जीवन के सारे संबंध सांयोगिक हैं, कि आप पिता हैं, कि पति हैं, या पत्नी हैं, या बेटे हैं, कि आप अमीर हैं कि गरीब हैं, कि आप बच्चे हैं, कि जवान हैं, कि के हैं; सब सांयोगिक है। यह आपका होना वास्तविक होना नहीं है, कि आप गोरे हैं, कि काले हैं, सुंदर हैं, कुरूप हैं। यह सब सांयोगिक है, यह ऊपर—ऊपर है, यह आपकी वास्तविकता नहीं है। यह सब छांट देगी प्रार्थना। केवल वही बच जाएगा, जो नहीं छांटा जा सकता। केवल वही बच जाएगा, जो आप जन्म के साथ हैं। केवल वही बच जाएगा, जो मृत्यु के बाद भी आपके साथ रहेगा।

तो प्रार्थना मृत्यु की तरह है। वह आपके भीतर सब छांट डालेगी, जो व्यर्थ है, कचरा है, जो संयोग था, जो स्वभाव नहीं है।

ये दो शब्द समझ लेने जैसे हैं, संयोग और स्वभाव। संयोग वह है, जो आपको रास्ते में मिल गया है। एक दिन आपके पास नहीं था, आज है, एक दिन फिर नहीं होगा। स्वभाव वह है, जो आपको रास्ते में नहीं मिला, जिसको लेकर ही आप रास्ते पर उतरे हैं। जो जीवन के पहले था, वह स्वभाव है, जीवन के बाद भी होगा, वह स्वभाव है। जो जन्म और मृत्यु के बीच में मिलता है, वह संयोग है। प्रार्थना की कला संयोग को काटना, स्वभाव को बचाना है।

जापान में झेन फकीर अपने शिष्यों को कहते हैं, एक ही चीज खोजने जैसी है, वह है ओरिजनल फेस, तुम्हारा मौलिक चेहरा। शिष्य सदियों से पूछते रहे हैं गुरुओं से, कि क्या अर्थ है आपका? मौलिक चेहरे का क्या अर्थ है? तो गुरुओं ने कहा है, जब तुम पैदा नहीं हुए थे, तब तुम्हारा जो चेहरा था, या जब तुम मर जाओगे, तब जो शेष बचेगा, वह तुम्हारा मौलिक चेहरा है, वह स्वभाव है, वह ओरिजनल है।

प्रार्थना उसको बचा लेती है। और वही परमात्मा है। जो स्वभाव है, वही परमात्मा है। जिसे हमने कभी पाया नहीं, जिसे हमने कभी अर्जित नहीं किया और जिसे हम चाहें भी, तो खो न सकेंगे, जिसे खोने का कोई उपाय नहीं है, जो मेरी निजता है, जो मेरा होना है, मेरा बीइंग है, वही परमात्मा है और प्रार्थना उसकी तलाश है।

इसलिए मैंने कहा कि प्रार्थना परमात्मा को पहुंचने का मार्ग है। और यह भी कहा कि प्रार्थना जीवन की शैली है।

निश्चित ही, प्रार्थना कोई एक कोने में नहीं हो सकती। ऐसा नहीं हो सकता कि सुबह आप प्रार्थना कर लें और फिर भूल जाएं। ऐसा नहीं हो सकता कि एक दिन रविवार को चर्च में प्रार्थना कर लें, कि धार्मिक उत्सव के दिन प्रार्थना कर लें, और फिर विस्मरण कर दें। प्रार्थना कोई खंड नहीं हो सकती, प्रार्थना जीवन की शैली हो सकती है।

जीवन की शैली का अर्थ यह है कि आप प्रार्थनापूर्ण होंगे, तो आपके चौबीस घंटे प्रार्थनापूर्ण होंगे। प्रार्थना अगर होगी, तो श्वास जैसी होगी। आप ऐसा नहीं कह सकते कि सुबह श्वास लूंगा, दोपहर विश्राम करूंगा, कि जब फुरसत होगी तब श्वास ले लेंगे, बाकी काम बहुत हैं।

प्रार्थना श्वास जैसी बन जाए, तो शैली बनी। उसका अर्थ यह हुआ कि प्रार्थना करने की बात न हो, प्रार्थना आपके होने का ढंग हो जाए। उठें तो प्रार्थनापूर्ण हों; बैठें तो प्रार्थनापूर्ण हों; भोजन करें तो प्रार्थनापूर्ण हों।

हिंदू सदियों से भोजन के पहले ब्रह्म को स्मरण करता रहा है। वह भोजन को प्रार्थनापूर्ण बनाना है। स्वयं को भोजन दे, इसके पहले परमात्मा को देता रहा है। उसका अर्थ है कि संयोग के पहले स्वभाव स्मरणीय है। मैं गौण हूं; मेरे भीतर जो छिपा, सबके भीतर छिपा जो परमात्मा है, वह प्रथम है। तो सबसे पहले उसका स्मरण। आप पूछेंगे कि उठना—बैठना कैसे प्रार्थनापूर्ण हो सकता है?

एक महाकवि रिल्के का जीवन मैं पढ़ता था। रिल्के के जीवन में उनके मित्रों ने उल्लेख किया है कि रिल्के अपना जूता भी उतारता था, तो इतने मैत्री— भाव से, कि आप अगर देखते, तो लगता कि रिल्के अपने जूते के साथ प्रेम में है। वह

अपने कपड़े भी उतारता, तो इस भाव से, जैसे कपड़े जीवंत हों, जैसे कपड़ों की आत्मा हो। ऐसा नहीं कि कपड़े उतारे और फेंक दिए। वह कपड़ों को सम्हालता। वह घर में पैर रखता, तो ऐसे जैसे कि जीवंत घर में प्रवेश कर रहा हो; जैसे जरा भी बेहूदे ढंग से चलेगा, तो घर को चोट पहुंचेगी।

रिल्के फूल को पौधे से तोड़ नहीं सकता था। फूलों का प्रेमी था। फूलों के पास जाता, उनसे दो शब्द कहता, उनसे नमस्कार कर लेता, उनसे दो बातें भी कर लेता, लेकिन तोड़ना असंभव था। हमें यह आदमी पागल लगेगा, क्योंकि जूते को क्या सदव्यवहार की जरूरत है! हम पूछेंगे कि जूते को क्या सदव्यवहार की जरूरत है! जूते को उतारकर फेंका जा सकता है। मकान में प्रवेश करते समय मंदिर में प्रवेश कर रहे हों, ऐसे भाव रखने की क्या जरूरत है! मकान मकान है, मंदिर मंदिर है।

लेकिन ध्यान रहे, हम जो भी करते हैं, वह हमें निर्मित करता है। और जिंदगी में बड़े—बड़े काम ज्यादा नहीं हैं। चौबीस घटे तो छोटे—छोटे काम हैं। जूता उतारना है, भोजन करना है, कपड़े पहनना है, स्नान करना है, मकान में आना है, दुकान में जाना है। मंदिर तो आप कभी—कभी जाते हैं।

और ध्यान रहे, जो अपने मकान में निरंतर गैर—प्रार्थनापूर्ण ढंग से गया है, वह मंदिर में लाख कोशिश करे, प्रार्थनापूर्ण ढंग से नहीं जा सकेगा, उसकी आदत नहीं है। और जिसने अपने मकान को मकान समझा है, वह मंदिर को भी मकान से ज्यादा कैसे समझ सकता है! वस्तुत: मंदिर भी मकान ही है, नाम भर मंदिर है।

अगर मंदिर को मंदिर बनाना हो, तो हर मकान को मंदिर बनाना होगा, तभी यह संभव है। तब मकान मिट जाएंगे, तब सभी मंदिर हो जाएंगे। और जब आप हर मकान में मंदिर की तरह प्रवेश करेंगे, यह प्रवेश आपकी वृत्ति को बदलेगा। यह प्रवेश आपके भाव को बदलेगा। यह प्रवेश आपको निर्मित करेगा। फिर आप जहां भी जाएंगे, वह मंदिर हो, कि मस्जिद हो, कि गुरुद्वारा हो, कि साधारण मकान हो, कि एक झोपड़ा हो, कि महल हो, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। सवाल मकानों का नहीं है, सवाल आपका है। सवाल कहां आप प्रवेश करते हैं, इसका नहीं; कौन प्रवेश करता है, इसका है।

अगर आपने जूते प्रेम से उतारे हैं, कपड़े सदभाव से रखे हैं, वस्तुओं से भी मैत्री का व्यवहार किया है, यह सारा व्यवहार आपको रूपांतरित करेगा। यह आपकी शैली बन जाएगी।

जीवन के प्रति प्रेम का जो व्यवहार है, उस शैली को मैं प्रार्थना कहता हूं। और अगर हम चौबीस घंटे उसमें डूब सकें, तो ही, तो ही जीवन में क्रांति हो सकती है। इसलिए प्रार्थना कोई खंड नहीं है, कोई अंश नहीं है, कि आपने किया और निपट गए।

लोग प्रार्थना कर रहे हैं, पर उनके जीवन में प्रार्थना का कोई सुर सुनाई नहीं पड़ता, क्योंकि प्रार्थना को उन्होंने एक काम बना लिया है। वे सुबह पांच मिनट बैठकर प्रार्थना कर लेते हैं। अगर जल्दी हो, तो पांच मिनट की प्रार्थना वे दो मिनट में कर लेते हैं। अगर फुरसत हो, कोई काम न हो, तो दस मिनट भी कर लेते हैं। लेकिन प्रार्थना उनके जीवन की आधारशिला नहीं है, हजार कामों में एक काम है।

और अगर प्रार्थना हजार कामों में एक काम है, तो प्रार्थना हो ही नहीं सकती। और परमात्मा अगर हजार खोजों में एक खोज है, तो उस खोज का कोई उपाय नहीं है। जिस दिन प्रार्थना ही जीवन की विधि हो जाए..।

कबीर को किसी ने पूछा है कि अब तुम सिद्ध हो गए, अब तुम यह कपड़ा बुनना बंद कर दो। क्योंकि कबीर जुलाहे थे और जुलाहे बने रहे। और तुम कपड़ा बुनने में लगे रहते हो, फिर कपड़ा बुन कर बेचने जाते हो बाजार में, तुम्हें समय कहां मिलता है? प्रार्थना—पूजा.....!

तो कबीर ने कहा कि जो भी मैं कर रहा हूं वह प्रार्थना है; जो भी मैं कर रहा हूं वह पूजा है! जब मैं कपड़ा बुनता हूं तो मैं परमात्मा को बुन रहा हूं। जब मैं कपड़ा बेचता हूं तो मैं परमात्मा को बेच रहा हूं। जब मैं बाजार जा रहा हूं तो मैं राम की तलाश में जा रहा हूं जिसको कपड़े की जरूरत है। इसलिए अलग से प्रार्थना करने का क्या अर्थ है!

जब तक अलग से प्रार्थना करनी पड़े, तब तक जानना, प्रार्थना का स्वाद आपको लगा नहीं। जिस दिन प्रार्थना जीवन की शैली हो जाए; आप जो करें, वह प्रार्थनापूर्ण हो, प्रेयरफुल हो; जो करें, उसमें से परमात्मा की तरफ आपका बहाव हो; जो करें, उसमें परमात्मा का स्मरण हो; कुछ न भी कर रहे हों, तो उस न—होने के क्षण में भी परमात्मा की मौजूदगी हो। ऐसी सुरति से जो जीएगा, वह एक दिन परमात्मा तक पहुंच जाता है, ऐसा नहीं, एक दिन परमात्मा हो जाता है।

यह प्रार्थना का सतत प्रवाह, जैसे पानी गिरता हो प्रपात से, पत्थरों को काट देता है। कोमल सा जल, सख्त से सख्त पत्थर को तोड़ देता है और बहा देता है। ऐसे ही कोमल—सी प्रार्थना सतत बहती रहे जीवन में, तो आपका जो भी पथरीला हिस्सा है, वह जो भी व्यर्थ है, सांयोगिक है, वह जो भी कूड़ा—कर्कट जन्मों—जन्मों में इकट्ठा किया है, वह चाहे कितना ही कठोर हो, पाषाणवत हो, वह सब प्रार्थना की धार उसे बहा देगी। और केवल वही बच रहेगा. जो आपकी वास्तविकता है, जो आपकी आत्मा है। इसे पा लेना ही परमात्मा को पा लेना है।

तीसरा प्रश्न :
रात आपने कहा कि परम साधु एक क्षण में परम असाधु हो सकता है, लेकिन आपने यह भी कहा है कि अस्तित्व में पीछे लौटने का कोई उपाय नहीं। क्या इसे स्पष्ट करिएगा?
अद्वैत स्थिति से पीछे लौटने का कोई उपाय नहीं है, द्वैत स्थिति से पीछे लौटने का सदा उपाय है। अद्वैत स्थिति अस्तित्व की स्थिति है; द्वैत स्थिति माया की स्थिति है। इसे थोड़ा समझ लें।

साधु हम किसे कहते हैं? वह जो असाधु से उलटा है। साधु की परिभाषा कौन करेगा? साधु की परिभाषा असाधु से होगी। अगर असाधु हिंसक है, तो साधु अहिंसक है। अगर असाधु चोर है, तो साधु अचोर है। अगर असाधु बुरा है, तो साधु भला है। अगर जगत में कोई असाधु न हो, तो साधु के होने की कोई जगह नहीं है। असाधु चाहिए साधु होने के लिए, द्वंद्व जरूरी है।

इसलिए साधुता, असाधुता दोनों ही माया के अंग हैं। अच्छा आदमी भी माया से भरा है, बुरा आदमी भी। दोनों ही अंधे हैं, क्योंकि दोनों ने एक हिस्से को चुना है दूसरे के विपरीत। और जिसके विपरीत हम लड़े हैं, उसमें गिर जाने का डर सदा है।

अगर आपके भीतर चोरी है. सबके भीतर चोरी है; सबके भीतर छीनने का मन है; सबके भीतर उसके मालिक हो जाने का मन है, जिसके हम मालिक नहीं हैं। तो चोरी की भावना सबके भीतर है; सबके भीतर चोर छिपा है। इस चोर से अगर आप राजी हो जाएं, इस चोर के साथ चलें, तो आप असाधु हो जाएंगे। इस चोर से आप लड़े, इसकी आप न मानें, इसके विपरीत आप चलें, इससे उलटा चलना ही आपका ढंग हो जाए तो आप साधु हो जाएंगे।

अगर आप साधु हो जाएंगे, तो भी चोर आपके भीतर छिपा है, मिट नहीं गया। सिर्फ आपने उसे दबाया है, उसकी मानी नहीं है। अगर आप चोर हो गए, तो भी आपके भीतर अचोर छिपा है।

जो क्या कह रहे हैं दैवी संपदा, आसुरी संपदा, वे दोनों आपके भीतर हैं। तो जो चोरी कर रहा है, उसके भीतर भी अचोर छिपा है, वह भी नष्ट नहीं हो गया है, उसने उसे दबाया है। जब—जब चोर चोरी करने गया है, तब—तब उसके भीतर छिपे साधु ने कहा है, मत कर, बुरा है, पाप है। छोड; इससे बच। लेकिन इन आवाजों को उसने अनसुना किया है; इन आवाजों के प्रति वह अपने को बधिर बना लिया है; इन आवाजों को उसने दबाया है, इन आवाजों की उसने उपेक्षा की है। पर ये वहां भीतर मौजूद हैं।

जो साधु हो गया है, अचोर हो गया है चोर को दबाकर, उसके भीतर भी चोर मौजूद है। वह भी कह रहा है कि कहां तू उलझा है! क्या तू कर रहा है! जीवन हाथ से जा रहा है। यह आत्मा—परमात्मा का पक्का नहीं है। स्वर्ग है या नहीं, निश्चित नहीं है। मृत्यु के बाद कोई बचता है, किसी ने लौटकर कहा नहीं है। यह सब कपोल—कल्पित हो सकता है। यह सब एक जागतिक गप्प हो सकती है। जिन्होंने कहा है, उन्होंने भी जीते—जी कहा है कि आत्मा अमर है। मरकर लौटकर उन्होंने भी नहीं कहा है। उनकी बात का भरोसा क्या है? और उनकी बातों में उलझकर तू जीवन का रस खो रहा है। ये लाख रुपए सामने पड़े हैं, कोई देखने वाला नहीं है, इन्हें तू उठा ले, इन्हें तू भोग ले।

साधु के भीतर भी चोर खड़ा है, असाधु के भीतर साधु खड़ा है; ये मिट नहीं गए हैं। और जो गणित की बात समझने की है, जो गहरे विज्ञान की बात समझने की है, वह यह कि जिसका हमने उपयोग किया है, वह थक जाता है। जैसे मेरे दो हाथ हैं; अगर मैं बाएं हाथ का उपयोग करूं दिनभर, तो बायां हाथ थक जाएगा; और दायां हाथ दिनभर विश्राम करेगा, ज्यादा शक्तिशाली होगा। किसान जानते हैं कि अगर हमने इस वर्ष फसल एक जमीन पर ले ली है, तो वह थक गई जमीन। जो जमीन बंजर पड़ी रही, जिसका हमने उपयोग नहीं किया, वह थकी नहीं है, वह ऊर्जा से भरी है।

तो अगर आपने अपने भीतर के साधु का उपयोग किया है, तो असाधु शक्तिशाली है, साधु थक गया है। जिसका उपयोग करेंगे, वह थकेगा। जो नहीं थका है, जो बैठा विश्राम कर रहा है, वह शक्तिशाली है।

इसलिए मैं कहता हूं कि परम साधु एक क्षण में परम असाधु हो सकता है, परम असाधु एक क्षण में परम साधु हो सकता है। दोनों तरह की घटनाएं घटती रही हैं। घटने का पीछे विज्ञान है। क्योंकि जिसको आपने पकड़ा है, वह थक गया, ऊब गया। उससे आप बेचैन हो गए हैं। उसको कर—करके भी कुछ बहुत पाया नहीं है।

इसलिए बड़े मजे की बात है, भले लोग रात सपने बुरे देखते हैं, बुरे लोग बुरे सपने नहीं देखते, भले सपने देखते हैं। जो थका है, वह रात सोता है, जो नहीं थका, वह सक्रिय होता है। ब्रह्मचारी रात कामुकता के सपने देखता है; कामी रात सपने देखता है कि उसने बुद्ध से दीक्षा लेकर वह ब्रह्मचर्य को उपलब्ध हो गया है, वह संन्यस्त हो रहा है!

आपका सपना बताएगा आपको कि कौन—सा हिस्सा अनथका है, जो नींद में भी नहीं सोता। उसका मतलब है, बहुत सजग है। तो जो सजग है, शक्तिशाली है, उसका खतरा है, वह किसी भी क्षण में आपको पकड़ ले सकता है।

लेकिन निरंतर मैं कहता हूं अस्तित्व से लौटने की कोई विधि, कोई व्यवस्था नहीं है। कोई पीछे नहीं लौटते। अस्तित्व में। माया में तो पीछे लौटता है, क्योंकि द्वंद्व है।

इसलिए हमारे पास एक और शब्द है, वह शब्द साधु का पर्यायवाची नहीं है। वह शब्द है, संत। संत का अर्थ है, जो न साधु है न असाधु। जिसने दोनों का ही उपयोग करना बंद कर दिया है, जो दोनों में से किसी को भी नहीं चुनता; जो चुनावरहित, च्वाइसलेस है। जो न बाएं को चुनता है, न दाएं को। जो दोनों का साक्षी मात्र है। उसके भीतर चोर भी बोलता है, तो उसको भी सुनता है। उसके भीतर साधु बोलता है, उसको भी सुनता है। मानता किसी की भी नहीं। द्वंद्व को खड़ा नहीं होने देता। क्योंकि जब आप एक की मानेंगे, तो द्वंद्व खड़ा होगा। जब आप दोनों की सुनते हैं, मानते किसी की भी नहीं; जब आप दोनों के साक्षी बने रहते हैं, विटनेस बने रहते हैं; और आप कहते हैं, दोनों द्वंद्व खेल है, और ये दोनों की साजिश है, और ये दोनों साथी हैं...।

मैंने सुना है, एक सड़क पर एक आदमी बर्तन बेच रहा था। जो बर्तन बाजार में दो रुपए में मिलते हैं, वह उनके चार—चार रुपए दाम मांग रहा था। एक ठेले पर जोर से आवाज लगा रहा था कि बिलकुल सस्ते लुटा दिए, चार रुपए में। कोई आ भी नहीं रहा था। तभी अचानक बगल की गली से एक दूसरा आदमी आया एक ठेले पर बर्तन लिए और उसने कहा, क्यों लूट रहे हो लोगों को! चार रुपया? बर्तन तीन रुपए के हैं।

लोग ठहर गए। एक चिल्ला रहा था, चार रुपए! दूसरा कह रहा था कि लूटो मत; बर्तन तीन रुपए के हैं। भीड तीन रुपए वाली दुकान पर लग गई। सब बर्तन थोड़ी ही देर में खाली हो गए। दूसरा चिल्ला रहा है कि तू अपने समव्यवसायी को धोखा दे रहा है। तू क्यों मेरे पीछे पड़ा है? तू क्यों मेरे ग्राहक बिगाड़े दे रहा है?

थोड़ी ही देर बाद जब दूसरे के बर्तन समाप्त हो गए, वह ठेले को लेकर अंदर एक गली में' चला गया। दूसरा भी पहुंचा और उसने कहा, तूने तो कमाल कर दिया भाई। फिर जिसके बर्तन बिलकुल नहीं बिके थे, आधे— आधे फिर उन्होंने ठेले पर रख लिए। वे दोनों सहयोगी हैं, साझेदार हैं। फिर दूसरी सड़क पर वही शुरू हो गया शोरगुल। एक चार रुपए चिल्ला रहा है। दूसरा कह रहा है कि तीन रुपए! मत लूटो लोगों को। वे तीन रुपए वाले बर्तन बिक रहे हैं। बाजार में दाम दो रुपए हैं।

वह जो आपके भीतर चोर है और जो आपके भीतर अचोर है, उन दोनों की कास्पिरेसी है, दोनों साझीदार हैं। उनमें से किसी भी एक की आपने सुनी, तो दूसरे के जाल में भी आप गिरे।

यह जरा समझना कठिन है। और यहीं से धर्म की यात्रा शुरू होती है। नीति और धर्म का यही फर्क है।

नीति कहती है, भीतर जो साधु है, उसकी सुनो। धर्म कहता है, दोनों की मत सुनो; सुनो भी, तो साक्षी रहो। दोनों की मानो मत, क्योंकि उन दोनों की सांठ—गांठ है। वे दोनों एक ही धंधे में साझीदार हैं। एक की सुनी, तो दूसरे के चक्कर में तुम पड़े। जब तक एक तुम्हें चूसेगा, तब तक दूसरा विश्राम करेगा। जब तुम एक से थक जाओगे, दूसरा तुम पर हावी हो जाएगा। और ये दिन और रात की तरह अनंत जन्मों तक चल सकती है यह प्रक्रिया। यह रोज चल रही है।

सुबह आप भले आदमी होते हैं, दोपहर बुरे आदमी हो जाते हैं, सांझ भले आदमी हो जाते हैं। आप गलती में हैं अगर आप सोचते हैं कि दुनिया में साधु कटे हैं और असाधु अलग हैं। ऐसा नहीं है। सभी के साधु क्षण हैं, सभी के असाधु क्षण हैं।

सुबह—सुबह आप उठे हैं, तब साधु क्षण आप पर भारी होता है, भोर होती है, जीवन ताजा होता है, रातभर का विश्राम होता है, उपद्रव इतनी देर शांत रहे होते हैं, साधु क्षण होता है। भिखमंगे सुबह भीख इसीलिए मांगने आते हैं। सांझ को कोई उन्हें भीख देने वाला नहीं है। सुबह साधु क्षण को फुसलाया जा सकता है।

सुबह—सुबह एक आदमी उठा है, उसके सामने कोई भीख मांगता है, तो इनकार करना मुश्किल है। सांझ एक आदमी दिनभर दुकान में बेईमानी करके लौटा है। उससे दया पाने की आशा करनी कठिन है।

आपके भी क्षण होते हैं। दिन में आप कई बार साधु और कई बार असाधु होते हैं। और यह रूपांतर चलता रहता है। इस द्वंद्व के बाहर जाने का एक ही उपाय है कि हम दोनों में चुनना बंद कर दें।

संतत्व अस्तित्व है, साधुता, असाधुता माया है। संतत्व से कोई पीछे नहीं गिरता। क्योंकि जिसका साक्षी सध गया, उसके पीछे कुछ बचता ही नहीं, जहां गिर सके। द्वंद्व खो गया; स्वप्न टूट गया। वह जो षड्यंत्र था द्वैत का, वह शेष न रहा। गिरने की कोई जगह नहीं है। संत को गिरने की कोई जगह नहीं है। कुछ बचा नहीं, जहां वह गिर सके।

साधु गिर सकता है, इसलिए साधुता कोई बड़ी उपलब्धि नहीं है। खेल से ज्यादा नहीं है। संतत्व उपलब्धि है, लेकिन बड़ी दूभर है। क्योंकि पहली ही शर्त, चुनना नहीं। पहली ही शर्त, ज्ञान में ठहरना, जागरूकता में रुकना। पहली ही शर्त, साक्षी हो जाना।

अब हम सूत्र को लें।
दैवी संपदायुक्त पुरुष के अन्य लक्षण हैं अहिंसा, सत्य, अक्रोध, त्याग, शांति और किसी की भी निंदादि न करना तथा सब भूत प्राणियों में दया, अलोलुपता, कोमलता तथा लोक और शास्त्र के विरुद्ध आचरण में लज्जा, व्यर्थ चेष्टाओं का अभाव तथा तेज, क्षमा, धैर्य और शौच अर्थात बाहर— भीतर की शुद्धि एवं अद्रोह अर्थात किसी में भी शत्रु— भाव का न होना और अपने में पूज्यता के अभिमान का अभाव—यें सब तो, हे अर्जुन, दैवी संपदा को प्राप्त हुए पुरुष के लक्षण हैं।

एक—एक लक्षण को समझें।

अहिंसा.....।

अहिंसा का अर्थ है, दूसरे को दुख पहुंचाने की वृत्ति का त्याग। हम सबको दूसरे को दुख पहुंचाने में रस आता है। दूसरे को दुखी देखकर हममें सुख का जन्म होता है। यह जरा कठिन लगेगा, क्योंकि हम कहेंगे, नहीं, ऐसा नहीं।

दूसरे में दुख देखकर हममें सहानुभूति जन्मती है। लेकिन अगर आप अपनी सहानुभूति को भी थोड़ा—सा खोजेंगे, तो पाएंगे, उसमें रस है।

किसी के मकान में आग लग गई है, तब आप अपना स्वाध्याय करना। जब आप जाकर उसके प्रति सहानुभूति प्रकट करते हैं कि बहुत बुरा हुआ, ऐसा नहीं होना चाहिए तब अपना आप निरीक्षण करना कि भीतर कोई रस तो नहीं आ रहा है कि अपना मकान नहीं जला, दूसरे का जला! भीतर कोई रस तो नहीं आ रहा है कि हम सहानुभूति बताने की स्थिति में हैं और तुम सहानुभूति लेने की स्थिति में हो! कि अच्छा मौका मिला कि आज हमारा हाथ ऊपर है!

और वह आदमी अगर आपकी सहानुभूति न ले, तो आपको पता चल जाएगा। वह कह दे, कुछ हर्जा नहीं, बड़ा ही अच्छा हुआ कि मकान जल गया, सर्दी के दिन थे, और ताप मिल रहा है; बड़ा आनंद आ रहा है। तो आप दुखी घर लौटेंगे, क्योंकि उस आदमी ने आपको मौका नहीं दिया ऊपर चढ़ने का। एक मुफ्त अवसर मिला था, जहां आप दान कर लेते बिना कुछ दिए; जहां बिना कुछ बांटे आप सहानुभूति का सुख ले लेते, वह मौका उस आदमी ने नहीं दिया। आप उस आदमी के दुश्मन होकर घर लौटेंगे।

ध्यान रहे, अगर आप किसी को सहानुभूति दें और वह आपकी सहानुभूति न ले, तो आप सदा के लिए उसके दुश्मन हो जाएंगे, आप उसको कभी माफ न कर सकेंगे।

इसको पहचानना हो, तो दूसरे छोर से पहचानना आसान है। सभी को लगता है कि नहीं, यह बात ठीक नहीं। दूसरे के दुख में हमें दुख होता है। इसे छोड्कर दूसरे छोर से पहचानें, दूसरे के सुख में क्या आपको सुख होता है?

अगर दूसरे के सुख में सुख होता हो, तो ही दूसरे के दुख में दुख हो सकता है। और अगर दूसरे के सुख में पीड़ा होती है, तो गणित साफ है कि दूसरे के दुख में आपको सुख होगा, पीड़ा नहीं हो सकती। अगर दूसरे का सुख देखकर आप जलते हैं, तो दूसरे का दुख देखकर आप प्रफुल्लित होते होंगे। चाहे आपको भी पता न चलता हो, चाहे आप अपने को भी धोखा दे लेते हों, लेकिन भीतर आपको मजा आता होगा।

अखबार सुबह से उठाकर आप देखते हैं। अगर कोई उपद्रव न छपा हो, कहीं कोई हत्या न हुई हो, गोली न चली हो, तो आप थोड़ी देर में उसको ऐसा उदास पटक देते हैं। कहते हैं, कुछ भी नहीं है, कोई खबर ही नहीं! आप किस चीज की तलाश में हैं? आप कहीं दुख खोज रहे हैं, तो आपको लगता है, यह समाचार है, कुछ खबर है। जब भी आप दुखी आदमी को देखते हैं, तो तुलनात्मक रूप से आप अनुभव करते हैं कि आप सुखी हैं। और न केवल साधारणजन, बल्कि नैतिक शिक्षक लोगों को समझाते हैं कि अगर तुम्हारा एक पैर टूट गया है, तो दुखी मत होओ। देखो, ऐसे लोग भी हैं, जिनके दो पैर टूटे हुए हैं। उनको देखो! तो निश्चित ही अगर आपका एक पैर टूट गया है, तो दो पैर टूटे आदमी को देखकर आपके जीवन में अकड़ आ जाएगी। आपको लगेगा कि कुछ हर्जा नहीं, ऐसा कुछ ज्यादा नहीं बिगड़ गया है; दुनिया में और भी बुरी हालतें हैं।

नैतिक शिक्षक लोगों को समझाते हैं कि अपने से पीछे देखो; अपने से ज्यादा दुखी को देखो, तो तुम हमेशा सुखी अनुभव करोगे। अपने से सुखी को देखोगे, तो हमेशा दुखी अनुभव करोगे।

पर यह बात ही बुरी है। इसका मतलब हुआ कि दूसरे को दुखी देखकर आपको कुछ सुख मिल रहा है। यह कोई बड़ी नैतिक शिक्षा न हुई। और यह कोई भला संदेश न हुआ।

कृष्ण कहते हैं, दैवी संपदायुक्त व्यक्ति का लक्षण होगा अहिंसा। अहिंसा का अर्थ है, दूसरे को दुख न पहुंचाने की वृत्ति। और यह तभी हो सकता है, जब दूसरे के दुख में हमें सुख न हो। और यह तभी होगा, जब दूसरे के सुख में हमें सुख की थोड़ी—सी भाव—दशा बनने लगे।

तो अहिंसा कहां से शुरू करिएगा? पानी छांनकर पीजिएगा, तो अहिंसा शुरू होगी? मांसाहार छोड़ने से अहिंसा शुरू होगी? ये सब गौण बातें हैं। छोड़ दें तो अच्छा है, लेकिन उतने से अहिंसा शुरू नहीं होती।

अहिंसा शुरू होती है, जब कोई सुखी हो, तो वहां सुख अनुभव करें। दूसरे के सुख को अपना उत्सव बनाएं। और जब कोई दुखी होता हो, तो दुख अनुभव करें, और दूसरे के दुख में समानुभूति में उतरें। दूसरे की जगह अपने को रखें, चाहे सुख हो, चाहे दुख।

दूसरे की जगह स्वयं को रखने की कला अहिंसा है। कोई सुखी है, तो उसकी जगह अपने को रखें, और उसके सुख को अनुभव करें, और प्रफुल्लित हो जाएं। कोई दुखी है, तो उसकी जगह अपने को रखें, और उसके दुख में लीन हो जाएं, जैसे वह दुख आप पर ही टूटा हो। तब आप पाएंगे कि जीवन में अहिंसा आनी शुरू हुई।

पानी छानकर पीना और मांसाहार छूट जाना बड़ी सरल बातें हैं, जो इस भाव—दशा के बाद अपने आप घट जाएंगी। लेकिन कोई कितना ही पानी छानकर पीए सात बार छानकर पीए तो भी अहिंसा नहीं होने वाली। मांसाहार बिलकुल न करे, तो भी अहिंसा होने वाली नहीं। ये सिर्फ आदतें हो जाती हैं। आदतों का कोई बड़ा मूल्य नहीं है। बोधपूर्वक अहिंसा के सार— तत्व को पकडने की बात है।

मैं रोज देखता हूं तो बड़ा जीवन विरोधों से भरा हुआ मालूम पड़ता है।

एक क्वेकर साधु पुरुष था। क्वेकर ईसाइयों का एक संप्रदाय है, जो अहिंसा में पक्का भरोसा करता है। जैनों जैसा संप्रदाय है ईसाइयों का। किसी को मारना नहीं। तो क्वेकर अपने हाथ में बंदूक या अस्त्र—शस्त्र भी नहीं रखते, अपने घर में भी नहीं रखते। लेकिन यह क्वेकर्स की मान्यता है कि जब किसी को मरना है, किसी की घड़ी आ गई, तो परमात्मा उसे खुद उठा लेगा, किसी को उसे मारने की जरूरत नहीं है। अगर अपनी घड़ी मरने की आ गई, तो परमात्मा हमें उठा लेगा। तो अस्त्र—शस्त्र का क्या प्रयोजन है!

लेकिन यह साधु पुरुष जब भी चर्च जाता—चर्च दूर था इसके गांव से—तो वह एक पिस्तौल लेकर जाता। और वह जाहिर अहिंसक था। तो मित्रों ने पूछा कि तुम भाग्य को मानते हो, अहिंसा को मानते हो, तुम किसी को मारना भी नहीं चाहते, तुम यह भी जानते हो कि जब तक परमात्मा की मरजी न हो, तब तक तुम्हें कोई मार नहीं सकता, तो तुम पिस्तौल लेकर किसलिए जा रहे हो?

उस क्वेकर ने क्या कहा! उसने कहा कि मैं अपने बचाव के लिए पिस्तौल लेकर नहीं जा रहा हूं। लेकिन इस पिस्तौल से अगर परमात्मा को किसी को मारना हो, तो यह मौजूद रहनी चाहिए। अगर मेरा उपयोग करना हो परमात्मा को।

इस क्वेकर के घर में एक रात एक चोर घुस गया, तो उसने अपनी पिस्तौल उठा ली। चोर एक कोने में दबा हुआ खड़ा है। उस कोने की तरफ धीमा—सा प्रकाश है; रात का नीला प्रकाश थोड़ा—सा, पांच कैंडल का बल्ब है। वह कोने में छिपा खड़ा है। इसने कोने की तरफ पिस्तौल की और कहा कि मित्र, तुम्हें मैं नहीं मार रहा हूं; लेकिन जहां मैं गोली चला रहा हूं, तुम वहीं खड़े हो!

लेकिन यह हमें हंसी योग्य बात लगती है, लेकिन सारी दुनिया के अहिंसक इसी तरह के तर्क। क्योंकि हिंसा तो बदलती नहीं, ऊपर से आचरण थोप लिया जाता है!

क्वेकर पक्के अहिंसक हैं। दूध भी नहीं पीते। कहते हैं, दूध खून है, आधा खून है, इसलिए पाप है। दूध से बनी कोई चीज नहीं लेते। क्योंकि वह एनिमल फुड है।

ये जो सोचने के ढंग हैं, इनमें से तरकीबें निकल आती हैं। अंडा खाते हैं, क्वेकर अंडा खाते हैं। क्योंकि वे कहते हैं, अंडा, जब तक बच्चा उसके बाहर नहीं आ गया, तब तक उसमें कोई जीवन नहीं है। अंडे को खाने में कोई पाप नहीं है। दूध पीने में पाप है, क्योंकि वह खून है।

और जीवन की सारी व्यवस्था हम इस ढंग की कर ले सकते हैं कि ऊपर से लगे कि सब अहिंसा है और भीतर सारी हिंसा जारी रहे। जैनों ने अहिंसा का बड़ा प्रयोग किया, लेकिन उनकी सारी हिंसा धन को इकट्ठा करने में जुट गई। तो

उन्होंने खेती—बाड़ी छोड़ दी, क्योंकि उसमें हिंसा है। पौधा काटेंगे, तो हिंसा होगी; इसलिए जैनों ने खेती—बाड़ी छोड़ दी। क्षत्रिय होने का उपाय न रहा उनका, क्योंकि वहा युद्ध में हिंसा होगी।

तो उनके व्यक्तित्व की सारी हिंसा, जो युद्ध में निकल सकती थी, खेती—बाडी में निकल सकती थी।

आप जानकर हैरान होंगे कि किसान, माली भले लोग होते हैं, क्योंकि उनकी हिंसा निकल जाती है। एक किसान दिनभर काट रहा है जंगल में, लकड़ी काट रहा है, पौधे उखाड़ रहा है, तो उसकी जितनी क्रोध की वृत्ति है, वह सब इस उखाड़ने, तोड्ने में, मिटाने में निकल जाती है। वह भला आदमी होता है। किसान सरल आदमी होता है।

क्षत्रिय भी सरल आदमी होता है, क्योंकि युद्ध के मैदान पर लड़ लेता है। कुछ भी बचता नहीं, सब निकल जाता है। इसलिए क्षत्रिय भोले होते हैं। क्षत्रिय को आप जितनी आसानी से धोखा दे सकते हैं, दुकानदार को नहीं दे सकते, बनिया को नहीं दे सकते। होना चाहिए था उलटा, क्योंकि वह हिंसक है, दुष्ट है, उसको धोखा देना मुश्किल होना चाहिए। लेकिन ऐसी बात नहीं है। उसको धोखा देना बिलकुल आसान है।

मैंने सुना है, राजस्थान की एक कथा है, कि एक गांव का एक क्षत्रिय राजपूत बड़ा अकडीला आदमी था। वह अपने गांव में किसी को मूंछ सीधी नहीं करने देता था, सिर्फ अकेली अपनी मूंछ सीधी रखता था। दूसरा अगर उसके घर के सामने दूसरे गांव का भी आदमी निकले, तो कहता था, मूंछ नीची कर। इससे झगड़े, दंद—फंद हो जाते थे, तलवारें खिंच जाती थीं।

एक नया बनिया गांव में आया, जवान था। और वह भी मूंछ सीधी रखने का शौकीन था। क्षत्रिय के घर के सामने से निकला। उस क्षत्रिय ने कहा, मूंछ सीधी नहीं चल सकती। इस गांव में एक ही मूंछ सीधी रह सकती है, दो तलवारें स्व म्यान में नहीं चलेंगी, तू मूंछ नीची कर ले। बनिये ने कहा, क्यों? मूंछ नीची नहीं होगी! तलवारें खिंच गईं।

बनिये ने कहा, एक दो मिनट रुक जा। क्योंकि मैं घर लौटकर जाकर अपने बच्चे और पत्नी को समाप्त कर आऊं, हो सकता है, मैं मर जाऊं; मेरे कारण मेरे बच्चे और पत्नी भूखे मरें, यह मुझे बरदाश्त के बाहर है। और मैं तुझे भी सलाह देता हूं? तू भी घर जा, बच्चे और पत्नी को खतम कर आ। क्योंकि हो सकता है, तू मर जाए।

क्षत्रिय ने कहा, बात बिलकुल ठीक है। वह घर गया। वह साफ करके आ गया। बनिया घर गया, वापस लौटकर उसने कहा, मैंने इरादा बदल दिया, मैंने मूंछ नीची कर ली।

यह जो बनिया है, हिंसक तो नहीं है, लेकिन इसकी हिंसा चालाकी बन जाएगी।

तो जैनों की सारी हिंसा धन को इकट्ठा करने में लगी; सब उपाय बंद हो गए। और धन सबसे सुविधापूर्ण साधन है दूसरे को दुख देने का। इससे ज्यादा आसान कोई तरकीब नहीं है। किसी की छाती में छुरा मारो, वह भी उपद्रव है, क्योंकि उसमें खुद को भी छुरा भोंका जाए, इसका डर सदा है। लेकिन धन चूस लो, दूसरा वैसे ही मर जाता है बिना छुरा मारे। और दूसरे को इससे ज्यादा दुखी करने की कोई सुविधापूर्ण व्यवस्था नहीं है कि तुम धन इकट्ठा कर लो। तुम धन इकट्ठा करते जाओ, दूसरा निर्धन होता जाए। वह मरता जाता है अपने आप। वह उसे इकट्ठा जहर देने की जरूरत नहीं है। एक—एक बूंद उसमें जहर उतरता जाता है। चारों तरफ सब सूख जाता है। सारा जीवन तुम शोषित कर लेते हो।

तो जैन बड़ी अहिंसा साधा। लेकिन वह अहिंसा चूंकि ऊपर—ऊपर थी, नैतिक थी; वह अहिंसा मौलिक आधार से नहीं जन्मी। वह महावीर की अहिंसा नहीं थी। इस जैन की, पीछे चलने वाले की अपने मन की, गणित की, अपनी बुद्धि की खोज थी। तो जटिल हो गया। और शोषण के रूप में अहिंसा दब गई और हिंसा व्यापक हो गई।

अहिंसा लक्षण है इस अर्थ में कि आप अपने मन से दूसरे को दुख देने का भाव विसर्जित कर दें। शुरू करना होगा दूसरे के सुख में सुख लेना। क्योंकि सुख लेना आसान है, दुख लेना कठिन है।

अपना ही दुख झेलना मुश्किल होता है, दूसरे का दुख झेलना तो और मुश्किल हो जाएगा। आप अपने ही दुख से काफी परेशान हैं, अगर हर एक का दुख लेने लगें और हर एक का दुख झेलने लगें; हर घर में आदमी मरेगा, अगर आप हर घर में बैठकर रोने लगे, जैसे आपका कोई मर गया हो—यह कठिन होगा। इससे शुरुआत नहीं हो सकती।

इसलिए शुरुआत का सूत्र है, दूसरे के सुख से शुरू करें। जब दूसरे के जीवन में फूल खिले, तो आपके जीवन में नाच आए। यह आसान होगा। हालांकि बहुत कठिन लगेगा, क्योंकि अभी हमें सुख देखकर तो बड़ी पीड़ा होती है; दुरूहतम मालूम होगा। लेकिन साधना दुरूह है। वह ऊंचे पहाड़ चढ़ने जैसा प्रयोग है। और यह ऊंचे से ऊंचा पहाड़ है, दूसरे के सुख में सुख अनुभव करना। तो आपका जीवन एक तरफ उत्सव से भर जाएगा।

और तब दूसरा प्रयोग है, दूसरे के दुख में दुख अनुभव करना, तब आपके जीवन में अंधकार भी भर जाएगा, प्रकाश और अंधकार दोनों। लेकिन चूंकि दूसरे के दुख में आप दुखी हो रहे हैं और दूसरे के सुख में आप सुखी हो रहे हैं, आपका साक्षी— भाव दोनों में निर्मित हो सकेगा। आप दोनों अनुभव में डूबकर भी बाहर रह सकेंगे।

जब आपका खुद का दुख आता है, तो आप एकदम भीतर हो जाते हैं, आप उस दुख में लीन हो जाते हैं। जब आप दूसरे के दुख में डूबेंगे, तो आप कितने ही लीन हो जाएं, आपका आंतरिक आत्यंतिक हिस्सा बाहर खड़ा देखता रहेगा। जब आप पर सुख आता है, तो आप उसमें उत्तेजित हो जाते हैं। दूसरे के सुख में आप कितने ही डूबे, उत्तेजित न हो पाएंगे। वह एक धीमा, सौम्य उत्सव होगा, और आपके भीतर का साक्षी जगा रहेगा।

और ध्यान रहे, जो व्यक्ति दूसरे के सुख—दुख में साक्षी हो गया, वह धीरे— धीरे अपने सुख—दुख में भी साक्षी हो सकेगा। क्योंकि थोडे ही समय में उसे पता चलेगा, सुख—दुख न तो मेरे हैं, न दूसरे के हैं। सुख—दुख घटनाएं हैं, जिनका मेरे और तेरे से कुछ लेना—देना नहीं है। सुख—दुख बाहर परिधि पर घटते हुए धूप—छाया के खेल हैं, जो मेरे आंतरिक केंद्र को छूते भी नहीं, जिनसे मैं अस्पर्शित रह जाता हूं।

सत्य……।

सत्य से इतना ही अर्थ नहीं है कि सच बोलना। सत्य से अर्थ है, प्रामाणिक होना, आथेंटिक होना। सत्य से अर्थ है, जैसे आप भीतर हैं, वैसे ही बाहर होना। लेकिन लोग सत्य का यह अर्थ नहीं लेते। लोग सत्य का अर्थ लेते हैं, सच बोलना। वह सिर्फ गौण हिस्सा है।

और सच बोलना…..हमारा मन जैसा चालाक है, उसमें हम सच बोलने का भी दुरुपयोग कर लेते हैं। हम तब सच बोलते हैं, जब सच से दूसरे को चोट पहुंचती हो। और अगर दूसरे को चोट पहुंचाने का मौका हो, तो हम कहते हैं, हम झूठ कैसे बोल सकते हैं! सच बोलना ही पड़ेगा। खुद पर चोट पहुंचती हो, तो हमारे तर्क बदल जाते हैं।

मैंने सुना है, एक सुबह मुल्ला नसरुद्दीन अपनी छपरी में बैठा हुआ है। अचानक वर्षा का झोंका आया। गांव का जो मौलवी है, वह पानी की बूंदें पड़ी तो तेजी से भागा। नसरुद्दीन ने कहा, रुको, यह परमात्मा का अपमान है। मौलवी भी घबड़ा गया; क्योंकि नसरुद्दीन वजनी आदमी था। और गाव में खबर हो जाए। और उससे कह रहा था, तो उसका कुछ मतलब होगा। उसने कहा, क्या मतलब? तो उसने कहा, जब परमात्मा वर्षा कर रहा है, तो तुम उसका अपमान कर रहे हो भागकर। धीमे— धीमे जाओ। मौलवी को भी बात समझ में आई। बेचारा धीरे— धीरे घर तक गया, भीग गया वर्षा में। बूढ़ा आदमी था, बुखार आ गया।

वह तीसरे दिन अपने बिस्तर में बुखार में बैठा हुआ था, तब उसने खिड़की से देखा कि वर्षा का फिर झोंका आया और नसरुद्दीन बाजार से भागा जा रहा है। तो उसने कहा, रुक, नसरुद्दीन! भूल गया? तो नसरुद्दीन रुका नहीं, भीतर भागता हुआ घर में आया और उसने कहा कि नहीं, भूला नहीं। इसीलिए भाग रहा हूं कि परमात्मा पानी गिरा रहा है, उसके पानी पर कहीं मेरे नापाक पैर न पड़ जाएं। गंदा आदमी हूं, नहाया भी नहीं। ये गंदे पैर उसके पानी पर न पड़ जाएं, इसीलिए तो भाग रहा हूं। भूला नहीं हूं।

बस, यही हमारे सबके तर्क हैं। जब खुद पर चोट पड़ती हो, तो हम झूठ को सच बना लेते हैं। जब दूसरे पर चोट पड़ती हो, तो हम सच का भी झूठ की तरह उपयोग करते हैं, हिंसक उपयोग करते हैं। कुछ लोग सच बोलने में बडा रस लेते हैं, क्योंकि सच से काफी चोट पहुंचाई जा सकती है। तब मजे की बात यह है कि झूठ बोलकर भी हम दूसरे को नुकसान पहुंचाते हैं और सच बोलकर भी नुकसान पहुंचाते हैं। हमारा लक्ष्य सदा एक है; हिंसा हमारा लक्ष्य है।

इसलिए सत्य का अर्थ केवल सच बोलना नहीं है। सत्य का अर्थ है, प्रामाणिक होना। सत्य का अर्थ है कि जैसा मैं भीतर हूं? वैसा ही बाहर होना, परिस्थिति की बिना फिक्र किए कि क्या होगा परिणाम। इसे थोड़ा समझ लें।

जो व्यक्ति परिणाम की चिंता करता है, वह सत्य नहीं हो सकता। क्योंकि कई बार अच्छे परिणाम झूठ से आ सकते हैं। कम से कम जहां तक हमें दिखाई पड़ता है, वहां तक आ सकते हैं।

एक आदमी को फांसी लग रही है, आप झूठ बोल दें, बच सकता है वह आदमी। झूठ बोलने से, आपके देखने में तो जहां तक मनुष्य की बुद्धि जाती है, यह परिणाम हो रहा है कि एक आदमी का जीवन बच रहा है। अगर परिणाम की आप चिंता करेंगे, तो सौ में निन्यानबे मौकों पर लगेगा कि झूठ से अच्छे परिणाम आ सकते हैं, सत्य से बुरे परिणाम आ सकते हैं।

सत्य का अर्थ है कि परिणाम की चिंता ही मत करना। जैसा हो, उसे बेशर्त, बिना आगे—पीछे देखे, वैसा ही रख देना। भविष्य को सोचना ही मत, फल को सोचना ही मत।

कृष्ण का बहुत जोर है इस बात पर कि जो फल को सोचेगा, वह भटक जाएगा। जैसा हो, वैसा उसे प्रकट कर देना, अपने को बाहर— भीतर एक—सा कर देना, अपने को उघाड़ देना, सत्य है। और वह दैवी संपदा का अनिवार्य हिस्सा है।

अक्रोध.......।

साधारणत: आप सोचते हैं कि कभी—कभी आप क्रोध करते हैं। यह बात झूठ है, यह बात बिलकुल ही झूठ है। आप चौबीस घंटे क्रोध में रहते हैं। कभी—कभी क्रोध उबलता है और कभी—कभी कुनकुना रहता है, बस। कुनकुने की वजह से पता नहीं चलता। क्योंकि उसकी आपको आदत है। उतने में तो आप जी ही रहे हैं सदा से।

आप अपने को पहचानें, निरीक्षण करें, तो आपको समझ में आएगा कि चौबीस घंटे आप में हल्का—सा क्रोध बना रहता है। कभी इस चीज के प्रति, कभी उस चीज के प्रति। कभी कोई भी कारण न हो, तो अकारण। अगर आपको चौबीस घंटे कमरे में बंद कर दिया जाए, जहां कोई कारण न दे आपको क्रोधित होने का, तो भी आप क्रोधित होंगे। तो आप इस पर ही क्रोधित होने लगेंगे कि कुछ भी नहीं हो रहा है, कोई भी नहीं है! कि मैं यहां बैठा क्या कर रहा हूं! कि मुझे यहां क्यों बिठाया गया है! अकेले में क्यों छोड़ा गया है!

क्रोध आपकी दशा है। हम सब सोचते हैं कि क्रोध घटना है। इसलिए हम सोचते हैं, क्रोध कभी—कभी आता है, यह कोई ऐसी बात नहीं है कि सदा है। लेकिन क्रोध सदा है। कभी—कभी कोई चिनगारी डाल देता है, तो आपकी बारूद भभक उठती है। लेकिन बारूद सदा है। बारूद न हो, तो चिनगारी डालने से भी भभकेगी नहीं।

अक्रोध का अर्थ है, चौबीस घंटे एक शांत स्थिति। यह तभी हो सकता है, जब आप दूसरे को दोष देना बंद कर दें।

क्रोध का तर्क क्या है? क्रोध का तर्क एक ही है कि दूसरा भूल—चूक कर रहा है, दूसरा गलत कर रहा है। दूसरा ऐसा कर रहा है, जैसा उसको नहीं करना चाहिए। इससे आप भभकते हैं।

अक्रोध की भाव—दशा तब निर्मित होगी, जब आप समझेंगे कि दूसरा जो कर रहा है, वह वही कर सकता है। दूसरा उसको इससे अन्यथा करने का उपाय नहीं है। अगर एक आदमी आपको गाली दे रहा है, तो आप सोचते हैं, इसे गाली नहीं देनी चाहिए। यह आदमी गलती कर रहा है, बुरा कर रहा है। इसलिए क्रोध भभकता है।

अगर आप इस आदमी का पूरा अनंत जीवन जानते हों अतीत का, तो आप कहेंगे, यह गाली इसमें ऐसे ही लग रही है, जैसे किसी पौधे में फूल लगते हैं। वे बीज में ही छिपे थे। बढ़ते—बढ़ते—बढ़ते वृक्ष बड़ा होता है, फिर फूल आते हैं। वे फूल कड़वे होते हैं, कि सुगंधित होते हैं, कि सुंदर होते हैं, कि कुरूप होते हैं, यह बीज में ही छिपे थे।

ये गालियां इस आदमी में लग रही हैं, इसका मुझसे कुछ लेना—देना नहीं है। यह इस आदमी का स्वभाव है, यह इस आदमी के जीवन का ढंग है, यह इसकी उपलब्धि है कि गालियां बक रहा है। मैं सिर्फ बहाना हूं। अगर मैं यहां न होता, तो कोई दूसरा इसकी गाली खाता, वह भी नहीं होता, तो कोई तीसरा गाली खाता; कोई भी नहीं होता, तो यह शून्य में गाली देता, लेकिन गाली देता। यह गाली इसके कर्मों की अभिव्यक्ति है।

अक्रोध तब पैदा होगा, जब आप समझेंगे कि प्रत्येक व्यक्ति अपनी नियति में चल रहा है। आपसे कुछ लेना—देना नहीं है। आपसे रास्ते पर मिलना हो जाता है, इससे आप अकारण परेशान न हों।

एक झेन फकीर हुआ, रिंझाई। वह अपने शिष्यों को नाव में ले जाता था। और जब वह नाव को ले जाता, तो एक किनारे पर उसने एक मल्लाह रख छोड़ा था। एक झाड़ी की आड़ में वह मल्लाह एक नाव को छिपाए रखता। जब इसकी नाव निकलती, तो खाली नाव को वह झाड़ी के भीतर से धक्का देता। वह खाली नाव आकर रिंझाई की नाव को टकरा जाती। कोई भी कुछ नहीं बोलता, क्योंकि खाली नाव से क्या गाली बकनी, क्या झगड़ा करना। शिष्य भी हिल—डुलकर बैठकर रह जाते। फिर दुबारा कभी वह मल्लाह नाव में बैठकर और टक्कर देता, तब वे सारे शिष्य उबल पड़ते।

तो रिंझाई कहता कि एक दफे पहले भी यह हुआ था, जब नाव हमसे टकरा गई थी, तुम सब चुप रहे थे। वे कहते, तब यह आदमी उसमें नहीं था। और खाली नाव को जिम्मेवार नहीं ठहराया जा सकता। खाली नाव से क्या कहना! संयोग की बात है। लेकिन यह आदमी बैठा है, यह रिस्पासिबल है, यह जिम्मेवार है, इससे झगड़ा किया जा सकता है। लेकिन रिंझाई कहता कि आदमी बैठा हो, या न बैठा हो, यह संयोग की बात है कि नाव टकरा गई। और तुम दोनों स्थितियों में एक—सा व्यवहार करो, तो अक्रोध जन्मेगा!

कोई व्यक्ति क्या कर रहा है, वह उसकी अपनी नियति है। तुम अकारण उसे अपने ऊपर मत लो। तुम व्यर्थ ही मत समझो कि सारी दुनिया तुम पर हंस रही है; कि सारी दुनिया तुम्हारे संबंध में ही फुस—फुस कर रही है; कि सारे लोग तुम्हारे संबंध में सोच रहे हैं, कि तुम्हें कैसे बरबाद कर दें; कि सब तुम्हारे दुश्मन हैं। किसी को तुम्हारे लिए इतनी फुरसत नहीं है। सब अपने—अपने गोरखधंधे में लगे हैं। तुम अकारण बीच में खड़े हो। तुम व्यर्थ ही बीच में चीजें झेल लेते हो।

जैसे ही कोई व्यक्ति इस बात को ठीक से देखने लगता है कि हर व्यक्ति अपने ढंग से जा रहा है, और जो भी उसमें हो रहा है, वही उसमें हो सकता है, तब एक स्वीकृति पैदा होती है; तब क्रोध नहीं जन्मता, तब तथाता का भाव निर्मित होता है। तब हम कहते हैं कि जो होना था, वह हुआ है। इस व्यक्ति से जो हो सकता था, इसने किया है। तब अक्रोध।

अक्रोध बहुमूल्य है; दैवी संपदा में बड़ा मूल्यवान है। और ये दैवी संपदा के जो सूत्र हैं, इनमें से एक सध जाए, तो दूसरे अपने आप सध जाते हैं। इसलिए ऐसा मत सोचना कि एक—एक को साधना पड़ेगा। एक भी सध जाए, तो उसके पीछे दूसरे गुण अपने आप चले आते हैं, क्योंकि वे सब गुण संयुक्त हैं।

जो आदमी अक्रोध साधेगा, उसकी अहिंसा अपने आप सध जाएगी। जो आदमी अक्रोध साधेगा, वह अभय हो जाएगा। क्योंकि जो क्रोध ही नहीं करता, अब उसको भयभीत कौन कर सकता है? अगर वह भयभीत हो सकता था, तो क्रोधित होता। क्योंकि क्रोध भयभीत हो जाने के बाद अपनी रक्षा का उपाय है, वह डिफेंस मेजर है। उसके द्वारा हम अपना बल जगाते हैं और तत्पर हो जाते हैं कि आ जाओ, हम निपट लें। वह भय की सुरक्षा है।

और जो आदमी अक्रोध को उपलब्ध हो गया, जो कहता है, प्रत्येक व्यक्ति अपनी नियति से चल रहा है, मैं भी अपनी नियति से चल रहा हूं वह क्यों छिपाका कुछ! किससे छिपाना है? परमात्मा के सामने मैं उघड़ा हुआ हूं। और यहां किससे क्या छिपाना है! किसी से कुछ लेना—देना नहीं है। तब वह आदमी खुली किताब की तरह हो जाएगा।

ये सब गुण संयुक्त हैं। चर्चा के लिए अलग—अलग ले लिए हैं। इससे आप ऐसा मत समझना कि ये .अलग—अलग हैं। और आपको इतने गुण साधने पड़ेंगे! आप नाहक घबड़ा जाएंगे। आप सोचेंगे, इतने गुण! अपने बस के बाहर है। और इतनी छोटी जिंदगी! यह होने वाला नहीं है। इनमें से एक साध लें, और आप पाएंगे कि बाकी उनके पीछे आने शुरू हो गए हैं।

त्याग.......।

एक तो रस है भोग का, जिसे हम जानते हैं। एक और रस है त्याग का, जिसे हम नहीं जानते हैं। या शायद कभी—कभी कोई क्षण में हम जानते हैं। कभी आपने देखा, जब आप किसी को कुछ देते हैं, तो एक खुशी आपको पकड़ लेती है। किसी को सहारा दे देते हैं, कोई रास्ते पर गिर रहा हो और आप हाथ बढ़ा देते हैं; एक अहोभाव, एक आनंद की थिरक आप में समा जाती है। हृदय में कुछ संगीत बजने लगता है।

जब भी आप कुछ छोड़ते हैं, तभी आपके भीतर कुछ फैलता है। आप थोड़े से विराट हो जाते हैं। इसकी झलकें सबको मिलती हैं। उन झलकों को अगर हम समाहित करते जाएं, उन झलकों को अगर हम धीरे— धीरे विकसित करते जाएं, उनका अभ्यास गहन होने लगे, वे झलकें हमारे जीवन का पथ बन जाएं, तो उस पथ का नाम त्याग है।

त्याग का अर्थ है, देने का सुख, छोड़ने का सुख। और यह कोई कल्पना नहीं है, यह कोई दार्शनिक बात नहीं है। छोड़ते ही सुख मिलता है। पर हम एक ही सुख जानते हैं, पकड़ने का सुख। और मजे की बात यह है कि हमने कभी दोनों की तुलना भी नहीं की है। दो फकीरों के संबंध में मैंने सुना है। उनमें बड़ा विवाद था। विवाद एक छोटी—सी बात को लेकर था कि एक फकीर कुछ पैसे पास रखता था, और एक फकीर कुछ भी पैसे पास नहीं रखता था। जो पास पैसे नहीं रखता था, वह कहता था, छोड़ने में आनंद है, पकड़ने में दुख है। जो पास पैसे रखता था, वह कहता था कि थोड़ा तो पकड़ना ही पड़े, नहीं तो बड़ा दुख होता है।

फिर वे एक नदी के किनारे पहुंचे। सांझ ढल गई, माझी नाव छोड़ने को था, उसने पैसे मांगे। इस तरफ रुकना खतरनाक था, जंगली जानवरों का डर था, उस तरफ जाना जरूरी था। तो जिसके पास पैसे थे, और जो पैसे का आग्रही था, उसने कहा, अब बोलो; के गीता अब तुम्हारा त्याग चलाओ! अब तुम्हारे पास जो त्याग की संपदा है, उसका उपयोग करो, हमें उस तरफ जाना है। पैसे मेरे पास हैं, अगर तुमसे कुछ न बन पड़े, तो मैं पैसे देता हूं, हम उस तरफ हो जाते हैं।

फकीर मुस्कुराता रहा, वह जो त्याग का पक्षपाती था। फिर जिसके पास पैसे थे, उसने पैसे दिए, वे नदी पार किए। नदी पार करके जिसके पास पैसे थे, उसने कहा, अब बोलो!

उस पहले फकीर ने कहा, लेकिन त्याग से ही हम पार हुए। तुम पैसे छोड़ सके, तुम पैसे दे सके, इसीलिए हम पार हुए हैं। पैसे होने से हम पार नहीं हुए हैं, पैसा छोड़ने से ही पार हुए हैं। और अगर मैं पार नहीं हो रहा था, तो उसका कारण यह नहीं था कि मेरा त्याग बाधा था, मेरे पास और त्याग की सुविधा न थी, और छोड़ने को नहीं था; बस। तकलीफ मेरे त्याग की नहीं थी, त्याग मेरा कम पड़ रहा था, और मेरे पास छोड़ने को नहीं था, थोड़ा और त्याग करने की जरूरत थी। तुम कर सके। लेकिन सही मैं ही हूं। हम छोड़ने से इस पार आए।

लेकिन हमें एक ही अनुभव है, इकट्ठा करने का। जैसा मैं देखता हूं। देखता हूं, जैसे—जैसे लोगों का धन बढ़ता है, वे दुखी होते जाते हैं। तब वे सोचते हैं कि शायद धन में दुख है। और तब शास्त्रों में उनको सहारा भी मिल जाता है कि धन से कोई सुख नहीं मिलता।

मेरी धारणा बिलकुल भिन्न है। धन से सुख मिल सकता है, अगर धन त्यागने की क्षमता हो। धन से दुख मिलता है, अगर पकड़े बैठे रहो। धन से कोई दुख नहीं पाता, कंजूसी से लोग दुख पाते हैं। धन क्यों दुख देगा? लेकिन धन छोड़ नहीं पाते।

और मजबूरी यह है कि जितना ज्यादा हो, उतना ही छोड़ना मुश्किल हो जाता है। जिसके पास एक पैसा है, वह एक पैसा दान दे सकता है; लेकिन जिसके पास एक करोड़ रुपया हो, वह एक करोड़ दान नहीं दे सकता। हालांकि दोनों के दान बराबर हैं। क्योंकि एक पैसा उसकी कुल संपदा है। औसत बराबर है। एक करोड़ दूसरे की कुल संपदा है। लेकिन जिसके पास एक पैसा है, वह पूरा दान दे सकता है; जिसके पास एक करोड़ रुपया है, वह पूरा दान नहीं दे सकता।

जितना ज्यादा धन हो, उतनी ही पकड़ने की वृत्ति बढ़ती है। जितना हम पकड़ लेते हैं, उतना ही और पकड़ना चाहते हैं। फिर दुखी होते हैं। अगर आज अमेरिका दुखी है, तो धन के कारण नहीं, धन की पकड़ के कारण।

इस फर्क को आप ठीक से समझ लेना। धन से कोई दुखी नहीं होता। और थोड़ी अकल हो, तो धन से आदमी सुखी हो सकता है। और बेअकल आदमी हो, तो निर्धन होकर भी दुखी होता है, धनी होकर भी दुखी होता है।

निर्धन का दुख समझ में आता है। मगर मजे की बात यह है कि निर्धन का भी दुख निर्धनता का दुख नहीं है। उसका भी दुख यही है कि पकड़ने को कुछ भी नहीं है। हाथ खाली है। धनी का दुख यह है कि हाथ भर गए हैं, छोड़ने की हिम्मत नहीं है।

जो भी छोड़ने की कला सीख लेता है—त्याग उस कला का नाम है—जीवन के आनंद के द्वार उसके लिए निरंतर खुलते जाते हैं। जितना ज्यादा छोड़ सकता है, उतना ही ज्यादा हलका होता जाता है। जितना छोड़ सकता है, उतनी ही आत्मा विकसित होती है। क्योंकि जितना हम पकड़ते हैं, उतने पदार्थ हम पर इकट्ठे होते जाते हैं, उसमें हम दब जाते हैं। धीरे— धीरे, धीरे— धीरे ढेर लग जाता है वस्तुओं का; हमारा कुछ पता ही नहीं रहता कि हम कहां हैं!

त्याग दैवी संपदा का हिस्सा है।

शांति और किसी की भी निदादि न करना.....।

शांत होना हम भी चाहते हैं। लेकिन हम तभी शांत होना चाहते हैं, जब हम अशांत होते हैं।

मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं, बड़े अशांत हैं; शांति का कुछ रास्ता बताइए। ये लोग वे हैं, जिनके घर में जब आग लग जाए तब वे कुआ खोदना शुरू करते हैं। इनका घर बचेगा नहीं। कुआ पहले खोदना पड़ता है।

जब आप पूरी तरह अशांत हैं, तब शांत होना बहुत मुश्किल है। लेकिन जब आप अशांत नहीं हैं, तब शांत होना बहुत आसान है। और जब आप अशांत नहीं हैं, तब अगर आप शांत होना सीख लें, तो अशांत होने की कोई जरूरत ही न होगी। घर में कुआ हो, तो शायद आग लगेगी ही नहीं। लग भी जाए, तो बुझाई जा सकती है। तो आप जब अशांत हो जाएं, तब शांति की तलाश मत करें। यह तलाश ऐसी नहीं होनी चाहिए कि जब बुखार आ जाए, तब आप चिकित्सक की खोज पर चले जाते हैं। अब तो चिकित्साशास्त्री भी कहते हैं कि यह ढंग गलत है, आदमी जब बीमार हो जाए, तब उसका इलाज करना, बड़ी देर कर दी।

तो रूस में उन्होंने एक नई व्यवस्था ईजाद की है, वह यह कि डाक्टरों को तनख्वाह मिलती है बीमारों का इलाज करने के लिए नहीं, अपने मरीजों को बीमार न पड़ने देने के लिए। रूस में उन्होंने व्यवस्था बदली और सारी दुनिया में वह व्यवस्था आज नहीं कल हो ही जानी चाहिए।

तो हर डाक्टर के हिस्से में मरीज हैं। मरीज का मतलब वे बीमार नहीं हैं, लेकिन उनको बीमार नहीं होने देना है। तो उनको चेक करते रहना है, उनकी फिक्र करते रहना है, बीमारी के पहले इलाज कर देना है। क्योंकि बीमारी के बाद इलाज करना अत्यंत जटिल हो जाता है। बीमारी अलग परेशान करती है, इलाज अलग परेशान करता है।

कुछ लोग बीमारी से मरते हैं, ज्यादा लोग डाक्टरी से मरते हैं। किसी तरह बीमारी से बच गए, तो फिर डाक्टर से बचना बहुत मुश्किल है। औषधियां! फिर जहर को काटना हो, तो और जहर डालना पड़ता है। सारी औषधियां जहर हैं। फिर दो जहरों की लड़ाई आपके भीतर होती है, और आप केवल कुरुक्षेत्र हो जाते हैं। आप कुछ नहीं रह जाते फिर, दो जहर लड़ते हैं। फिर आपकी जो मट्टी पलीद उन दो जहरों के लड़ने में होती है, आप स्वस्थ भी हो जाएंगे, तो भी कभी स्वस्थ नहीं हो पाएंगे। बीमारी भी चली जाएगी, तो आपको मुर्दा छोड़ जाएगी। आप मरे हुए जीएंगे।

जब आप अशांत हो जाते हैं, तब शांत होना कठिन है। लेकिन इतनी देर रुकने की जरूरत क्या है? शांति तो साधी जा सकती है। शांति को तो जीवन का उठते—बैठते, रोजमर्रा का भोजन बनाया जा सकता है।

इसको ध्यान रखें कि आपको शांत रहना है। घर लौटे हैं, तो दरवाजे पर दो क्षण रुक जाएं, क्योंकि पत्नी कुछ कहेगी। वह दिनभर से अशांत है, वह अशांति आप पर फेंकेगी। दो क्षण रुक जाएं, तैयार हो जाएं। तैयारी का मतलब यह कि मैं शांत रहूंगा, चाहे पत्नी कुछ भी कहे, मैं इसको नाटक से ज्यादा नहीं समझूंगा। दया करूंगा, क्योंकि बेचारी परेशान है।

मुल्ला नसरुद्दीन की लड़की का विवाह हुआ। तो लड़की दहाड़ मार—मारकर, छाती पीट—पीटकर रो रही थी। सब समझा रहे थे, वह सुन नहीं रही थी। फिर मुल्ला उसके पास गया। उसने कहा, बेटी, तू मत रो, तुझे ले जाने वाले रोके। तू मेरी बेटी है; तू बिलकुल मत घबड़ा; थोड़ी देर की बात है। थोड़ा धैर्य रख!

जीवन में चारों तरफ विक्षिप्त लोग हैं, दुखी लोग हैं। वे अपने दुख और विक्षिप्तता को फेंक रहे हैं। फेंकने के सिवाय उनके पास जीने का कोई ढंग नहीं है, उपाय नहीं है। फेंकते हैं, तो थोड़ा जी लेते हैं। यह उनकी कैथार्सिस है। अगर आप उसके शिकार हो जाते हैं, अगर आप उससे उद्विग्न होते हैं, अशांत होते हैं, तो फिर आपके जीवन में शांति का स्वर कभी भी नहीं बज पाएगा।

क्योंकि चारों तरफ अशांत लोग हैं, तो आपको शांति साधनी होगी, और आपको सजग रहना होगा। चारों तरफ बीमार लोग हैं, आपको अपने चारों तरफ एक कवच निर्मित करना होगा, एक मिस्थू एक वातावरण आपके चारों तरफ, कि चाहे कोई कुछ भी फेंके, आप अपनी शांति में घिर रहेंगे। थोड़े से होश की जरूरत है। यह हो जाता है।

इसे थोड़ा प्रयोग करके देखें। जब पत्नी नाराज हो रही हो, तब आप खड़े होकर देखें कि आप नाटक देख रहे हैं। इससे वह और भी नाराज होगी, यह भी ध्यान रखना। मगर तब आप और प्रसन्न होकर उसको देखना।

अगर दो व्यक्तियों में एक व्यक्ति क्रोधित हो रहा हो और दूसरा नाटक की तरह देखता रहे, तो यह नाटक ज्यादा देर चल नहीं सकता। यह बढ़ेगा, उबलेगा, लेकिन फूट जाएगा, बिखर जाएगा, क्योंकि इसे बढ़ाने के लिए दोनों तरफ से सहारा चाहिए। समझदार पति—पत्नी निर्णय कर लेते हैं कि जब एक उपद्रव करेगा, तो दूसरा शांत रहेगा।

मुल्ला नसरुद्दीन किसी को कह रहा था कि मेरे घर में कभी झगड़ा नहीं होता। दूसरे ने कहा कि यह मानने योग्य नहीं है। यह असंभव है कि घर हो और झगड़ा न हो! घर यानी झगड़ा। तुम झूठ बोल रहे हो। नसरुद्दीन ने कहा कि नहीं, हमने पहले ही दिन एक बात तय कर ली, और वह बात यह तय कर ली कि सब छोटे—छोटे मसले पत्नी तय करेगी, बड़े—बड़े मसले मैं तय करूंगा। बडे—बड़े मसले आज तक आए नहीं और कभी आएंगे भी नहीं, क्योंकि पहले ही पत्नी तय कर देती है कि सब छोटे मसले हैं। तो वही तय कर रही है।

इंग्लैड में एक आदमी एक सौ बीस वर्ष तक जीया। तो उसकी एक सौ बीसवीं वर्षगांठ पर लोगों ने उससे पूछा कि कैसे तुम इतने स्वस्थ हो?

उसने कहा कि हमने एक निर्णय कर लिया शादी के वक्त कि जब भी पत्नी नाराज होगी, मैं घर के बाहर चला जाऊंगा। तो यह अस्सी साल की घर के बाहर की जिंदगी, यह मेरे स्वास्थ्य का कारण है! क्योंकि मैं अक्सर बाहर ही घूमता रहा हूं। घर तो कभी—कभी भीतर जाता हूं फिर ज्यादातर मुझे बाहर ही, आउट डोर!

चारों तरफ विक्षिप्तता है सभी संबंधों में। और अगर आप अपने को सम्हालकर नहीं चल रहे हैं, तो इतनी विक्षिप्त दुनिया में आप शांत नहीं रह सकते। और दूसरे को जिम्मेवार मत समझें। दूसरा जिम्मेवार है नहीं; वह अपने से परेशान है। कोई आपको परेशान करना नहीं चाह रहा है; वह अपने से परेशान है। परेशानी कोई कहा फेंके! जो निकट हैं, उन्हीं पर फेंकी जाती है।

तो जो व्यक्ति बिना अशांत हुए, सारी उपद्रवों की स्थिति में एक सूत्र ध्यान रखता है कि मुझे शांत रहना है चाहे कुछ भी हो, वह थोड़े ही दिनों में इस कला में पारंगत हो जाता है।

किसी की भी निंदादि न करना...।

बड़ा रस आता है किसी की निंदा करने में, क्योंकि किसी की निंदा परोक्ष में अपनी प्रशंसा है। जब भी आप कहते हैं, फला आदमी बुरा है, तो आप भीतर से यह कह रहे हैं कि मैं अच्छा हूं। जब आप सिद्ध कर देते हैं कि फलां आदमी चोर है, आपने सिद्ध कर लिया कि मैं अचोर हूं।

और अक्सर चोर दूसरों को चोर सिद्ध करने की कोशिश करते रहते हैं, क्योंकि यही उपाय है उनके पास। अगर यहां कोई किसी की जेब काट ले, तो जेबकतरे को बचने का सबसे अच्छा उपाय यह है कि वह सबसे ज्यादा शोरगुल मचाए कि बहुत बुरा हुआ; चोरी नहीं होनी चाहिए; पकड़ो, किसने चोरी की! यह सबसे अच्छा उपाय है। उसको तो आप भूल ही जाएंगे कि यह आदमी चोरी कर सकता है।

जितने बुरे लोग हैं, वे दूसरे की निंदा में संलग्न हैं। वे इतना शोरगुल मचा रहे हैं दूसरे की बुराई का कि कोई सोच भी नहीं सकता कि ये बुरे हो सकते हैं। इसलिए साधु भी जब दूसरे की निंदा कर रहा हो, तब समझना कि साधुता खोटी है।

निंदा का एक ही प्रयोजन है, वह अपनी बुराई को छिपाना है। दूसरे की बुराई को हम जितना बड़ा करके बताते हैं, उतनी अपनी बुराई छोटी मालूम पड़ती है। अगर आपको पता चल जाए कि सब बेईमान हैं, तो आपको लगता है, फिर अपनी बेईमानी भी स्वीकार योग्य है। इसमें हम कुछ नया नहीं कर रहे हैं, हम कुछ ज्यादा बुरे नहीं हैं, दूसरों से हम बेहतर हैं।

दूसरे की निंदा का इसीलिए इतना रस है। जहां भी चार आदमी मिलते हैं, बस, चर्चा का एक ही आधार है। उन चार में से भी एक चला जाएगा, तो वे तीन, जो चला गया उसकी निंदा शुरू कर देंगे। और वे तीन फिर भी नहीं सोचते कि हममें से कोई गया यहां से, कि बाकी दो हटते ही से यही काम करने वाले हैं।

मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि अगर आपके मित्र जो आपके संबंध में पीठ पीछे कहते हैं, उस सबका आपको पता चल जाए, तो दुनिया में एक भी मित्र खोजना मुश्किल है। आपके मित्र आपकी पीठ पीछे जो कहते हैं, अगर आपके सामने कह दें, आपको पता चल जाए, तो दुनिया में मित्रता असंभव है!

लेकिन पता तो चल ही जाता है। और मित्रता सच में ही असंभव हो गई है। मित्र होना मुश्किल है। जो आदमी भी निंदा में रस लेता है, उसका इस जगत में कोई भी मित्र नहीं हो सकता। जो दूसरे को ओछा करने में, नीचा करने में, बुरा करने में शक्ति लगाता है, वह भला अपने मन में सोच रहा हो कि अपने को अच्छा सिद्ध कर रहा है, वह इस कोशिश में ही बुरा होता जा रहा है।

भले आदमी का लक्षण दूसरे में भलाई को खोजना है। और हम जितनी भलाई दूसरे में खोज लेते हैं, उतना ही हमारे भले होने के आधार निर्मित होते हैं।

सब भूत प्राणियों में दया, अलोलुपता, कोमलता तथा लोक और शास्त्र के विरुद्ध आचरण में लज्जा और व्यर्थ चेष्टाओं का अभाव।

जो भी शास्त्र में कहा गया है, जो भी समाज की प्रचलित व्यवस्था है, उस व्यवस्था में जहां तक दखल न बने। जब तक कि आत्मा का ही कोई सवाल न हो, जब तक आपके आत्मिक जीवन पर ही कोई आघात न पड़ता हो, तब तक समाज और शास्त्र की जो व्यवस्था है, उसको खेल का नियम मानकर चलना उचित है।

खेल के नियम का कोई बड़ा मूल्य नहीं है। वह ऐसे ही है, जैसे रास्ते पर बाएं चलो, कोई दाएं चलने में पाप नहीं है। क्योंकि कुछ मुल्कों में लोग दाएं चलते हैं, तो वहा बाएं चलना कठिन है। तो बाएं चलो या दाएं चलो, यह कोई मूल्य की बात नहीं है। लेकिन एक नियम, खेल का नियम है। बाएं चलने में सुविधा है, आपको भी, दूसरों को भी। अगर सभी लोग अपना नियम बना लें, तो रास्ते पर चलना मुश्किल हो जाएगा। हालांकि कोई नियम शाश्वत नहीं, सब सापेक्ष हैं, सबकी उपयोगिता है।

इस बड़े जगत में, जहां बहुत लोग हैं, मैं अकेला नहीं हूं किसी व्यवस्था को चुपचाप मानकर चलना उचित है। इसका यह अर्थ नहीं है कि वह व्यवस्था कोई शाश्वत सत्य है, इसका केवल इतना अर्थ है कि हमने एक खेल का नियम तय किया है, उस नियम को हम पालन करके चलेंगे।

और ध्यान रहे, खेल नियम पर निर्भर होता है, नियम हटा कि खेल गड़बड़ हो जाता है। अगर आप ताश के पत्ते खेल रहे हैं, तो नियम है। चार खिलाड़ी खेल रहे हैं, तो नियम है। उनमें एक भी नियम के विपरीत करने लगे, या कहने लगे कि मेरा अपना अलग नियम है, खेल खराब हो गया।

यह समाज भी पूरा का पूरा एक खेल है। वह ताश के पत्ते से कोई बड़ा खेल नहीं है। उसमें सब नियम हैं। कोई पति है, कोई पत्नी है; कोई बेटा है, कोई बाप है, कोई छोटा है, कोई बड़ा है; कोई पूज्य है, कोई शिष्य है, कोई गुरु है—वे सारे खेल हैं। उस खेल को मानकर चलना दैवी संपदा का लक्षण है। लक्षण इसलिए कि अकारण ऐसा व्यक्ति उलझन में नहीं पड़ता, न दूसरों को उलझन में डालता है।

कुछ लोग व्यर्थ ही उलझन में पड़ते हैं, उनका कोई सार भी नहीं है। आप अगर बाएं को छोड्कर दाएं चलने लगें, तो कोई बड़ी क्रांति नहीं हो जाएगी, सिर्फ आप मूढ़ सिद्ध होंगे।

आसुरी वृत्ति का जो व्यक्ति होता है, उसको हमेशा नियम तोड्ने में रस आता है, उच्छृंखल होने में रस आता है, विद्रोह में रस आता है। उसे लगता है, जब भी वह कुछ तोड़ता है, तब उसका अहंकार सिद्ध होता है। उसे आशा मानना कठिन है, आज्ञा तोड़ना आसान है। उससे अगर कोई काम करवाना हो, तो उलटी बात कहनी उचित है। उससे अगर कहना हो कि सीधे बैठो, तो उससे कहना चाहिए कि सिर के बल बैठो, तो वह सीधा बैठ जाएगा।

मुल्ला नसरुद्दीन अपने बेटे को समझा रहा है कि यह मत कर, वह मत कर। बेटा सुनता नहीं। वह नसरुद्दीन का ही बेटा है! आखिर नसरुद्दीन उससे परेशान आ गया और उससे बोला, अच्छा, अब तुझे जो करना हो कर। अब मैं देखूं, तू कैसे मेरी आता का उल्लंघन करता है! जो तुझे करना हो कर, यह मेरी आशा है। अब मैं देखता हूं कि तू कैसे मेरी आज्ञा का उल्लंघन करता है! वह जो आसुरी वृत्ति का व्यक्तित्व है, उसे तोड्ने का रस है। आप कुछ कहें, वह उसको तोड़ेगा। जो आपको न करवाना हो, उससे कहें कि करो, तो वह नहीं करेगा।

दैवी संपदा का व्यक्ति व्यर्थ उलझन में नहीं पड़ेगा। जो कामचलाऊ है, उसे स्वीकार कर लेगा, ही भर देगा। खेल के नियम हैं, उनको मान लेगा। जब तक कि उसके जीवन का ही कोई सवाल न हो, जब तक कि उसकी आत्मा का कोई सवाल न हो, तब तक उसमें विद्रोह का स्वर नहीं होगा।

और ध्यान रहे, जो छोटी—छोटी बातों में न कहता है, उसके पास न कहने की शक्ति बचती नहीं कि बड़े मौके पर न कह सके। जो छोटी—छोटी बातों में हूं भरता है, जब जरूरत हो, तो उसके पास न कहने की शक्ति होती है। तो वह कह सकता है, नहीं। फिर उसकी नहीं को तोड़ा नहीं जा सकता।

इसलिए जिसको वस्तुत: क्रांतिकारी होना हो, उसको विद्रोही नहीं होना चाहिए; उसे व्यर्थ के नियम तोड्ने में नहीं लगना चाहिए, जिसे अगर जीवन का कोई वास्तविक अतिक्रमण करना हो।

तथा तेज, क्षमा, धैर्य और शौच अर्थात बाहर— भीतर की शुद्धि एवं अद्रोह अर्थात किसी में भी शत्रु— भाव का न होना, अपने में पूज्यता के अभिमान का अभाव—यें सब तो हे अर्जुन, दैवी संपदा को प्राप्त हुए पुरुष के लक्षण हैं।

इन सारे लक्षणों में गहन भाव है, अहंकार—शून्यता। मैं पूज्य हूं दूसरे मुझे प्ले, दूसरे मुझे आदर दें, ऐसा सबके मन में होता है। यह स्वाभाविक है, क्योंकि अहंकार इसके सहारे ही निर्मित होगा और रक्षित होगा। मैं दूसरे को लूं? यह कठिन है। गुरु होना एकदम आसान है, शिष्य होना बहुत कठिन है। क्योंकि शिष्य होने का अर्थ है, किसी और की पूजा, किसी और के सामने समर्पण।

इसलिए अगर आपसे कोई दिल से पूछे कि ठीक दिल की बात बता दें, कि आप गुरु होना चाहते हैं कि शिष्य? तो भीतर से आवाज आएगी, गुरु होना चाहते हैं। और यह आवाज अगर भीतर है, तो आप शिष्य कभी भी नहीं हो सकते। तो अगर आप किसी के चरणों में भी झुकेंगे, तो भी झूठा होगा। और तरकीबें आप ऐसी करेंगे कि किसी भांति गुरु को ही झुका लें। कोई उपाय, कि किसी दिन गुरु आपके प्रति झुक जाए!

अहंकार का स्वाभाविक लक्षण है कि सारा जगत मुझे पूजे। और कठिनाई यह है कि जब तक अहंकार हो, तब तक कोई आपको पूजेगा नहीं। पूजा हो सकती है, पर वह सदा निरहंकार भाव की है। जिस दिन अहंकार मिट जाएगा, उस दिन शायद सारा जगत पूजे, लेकिन आपकी वह आकांक्षा नहीं है। और जगत पूजे या न पूजे, आपका समभाव होगा।

मैं मिटुं ऐसा जिसका लक्ष्य है, वह व्यक्ति दैवी संपदा को उपलब्ध हो जाता है। मैं बनूं मैं रहूं मैं बचूं; चाहे सारा जगत मिट जाए मेरे मैं के बचाने में, तो भी मैं मैं को बचाऊंगा, ऐसा व्यक्ति आसुरी संपदा को उपलब्ध हो जाता है।

गीता दर्शन-(भाग–7)
अध्याय—16 (प्रवचन—तीसरा) — आसुरी संपदा

सूत्रः
दम्भो दयोंऽभिमानश्च क्रोधः पारूष्यमेव च।
अज्ञानं चाभिजातस्म पार्थ संपदमासुर्शँम्।।4।।
दैवी संयद्विमोक्षाय निबन्धायासुरी मता।
मा शुचः संपदं दैवीमीभजातोऽसि पाण्डव।।5।।
द्वौ भूतसर्गौं लस्कैऽस्मिन्दैव आसुर एव च ।
दैवो विस्तरशः प्रोक्त आसुरं पार्थ मे मृणु।।6।।
और है पार्थ, पाखंड, घमंड और अभिमान तथा क्रोध और कठोर वाणी एवं अज्ञान, ये सब आसुरी संपदा को प्राप्त हुए पुरुष के लक्षण हैं।

उन दोनों कार की संपदाओं में दैवी संपदा तो मुक्ति के लिए और आसुरी संपदा बांधने के मानी गई है। इसलिए है अर्जुन, तू शोक मत कर, क्योंकि तू दैवी संपदा को प्राप्त हुआ है।

और हे अर्जुन, हम लोक में भूतों के स्वभाव दो कार के बताए गए हैं। एक तो देवों के जैसा और दूसरा असुरों के जैसा। उनमें देवों का स्वभाव ही विस्तारपूर्वक कहा गया, इसलिए अब असुरों के स्वभाव को भी विस्तारपूर्वक मेरे से सून।

पहले कुछ प्रश्न।
पहला प्रश्न :
कल आपने कहा, पूरा अशांत होने पर शांति की साधना कठिन हो जाती है। लेकिन आप यह भी कहते रहे हैं कि विपरीत ध्रुवीयता के नियम के अनुसार अति पर पहुंचकर ही बदलाहट संभव होती है। इसे समझाएं।
आत्म—रूपांतरण, आत्यंतिक क्रांति तो अति पर ही संभव होती है। जब तक हम जीवन की एक शैली के आखिरी छोर पर न पहुंच जाएं, जब तक हम उसकी पीड़ा को पूरा न भोग लें, उसके संताप को पूरा न सह लें, तब तक रूपांतरण नहीं होता।

अशांत अगर कोई पूरा हो जाए, तो छलांग लग सकती है शांति में। लेकिन पूरा अशांत हो जाए, यह शर्त खयाल रहे। आधी अशांति से नहीं चलेगा। और हममें से कोई भी पूरा अशांत नहीं होता; हम थोड़े अशांत होते हैं। जब हम समझते हैं कि हम बहुत अशांत हैं, तब भी हम थोड़े ही अशांत होते हैं। जब हम सोचते हैं कि असहनीय हो गई है दशा, तब भी सहनीय ही होती है, असहनीय नहीं होती। क्योंकि असहनीय का तो अर्थ है कि आप बचेंगे ही नहीं।

जिसको आप असहनीय अशांति कहते हैं, उसे भी आप सह तो लेते ही हैं। प्रियजन मर जाता है, बेटा मर जाता है, मां मर जाती है, पत्नी मर जाती है, पति मर जाता है, असहनीय दुख हम कहते हैं, लेकिन उसे भी हम सह लेते हैं; और हम बच जाते हैं उसके पार भी। दो—चार महीने में घाव भर जाता है, हम फिर पुराने हो जाते हैं; फिर जिंदगी वैसी ही चलने लगती है। हमने कहा था असहनीय, लेकिन वह सहनीय था। अशांति पूरी न थी।

अशांति पूरी होती, तो दो घटनाएं संभव थीं। या तो आप मिट जाते, बचते न, और अगर बचते, तो पूरी तरह रूपांतरित होकर बचते। हर हालत में आप जैसे हैं, वैसे नहीं बच सकते थे। या तो आत्मघात हो जाता, या आत्मा—रूपांतरण हो जाता; पर आप जैसे हैं, वैसे ही बच नहीं सकते थे।

लेकिन देखा जाता है कि सब दुख आते हैं और चले जाते हैं, और आपको वैसा ही छोड़ जाते हैं जैसे आप थे, उसमें रत्तीभर भी भेद नहीं होता। आप वही करते हैं फिर, जो पहले करते थे—वही जीवन, वही चर्या, वही ढंग, वही व्यवहार। थोड़ा—सा धक्का लगता है, फिर आप सम्हल जाते हैं। फिर गाड़ी पुरानी लीक पर चलने लगती है।

आत्महत्या हो जाएगी और या आत्म क्रांति हो जाएगी, दोनों ही स्थिति में आप मिट जाएंगे। अति पर क्रांति घटित होती है। यदि कोई पूरा अशांत हो जाए, तो उसका अर्थ हुआ कि अब और अशांत होने की जगह न बची। अब इसके आगे अशांति में जाने का कोई मार्ग न रहा। आखिरी पड़ाव आ गया। अब गति का कोई उपाय नहीं। इस क्षण क्रांति घट सकती है; इस क्षण आप इस व्यर्थता को समझ सकते हैं। यह अशांत होने का सारा रोग व्यर्थ मालूम पड़ सकता है।

और ध्यान रहे, कोई और तो आपको अशांत करता नहीं, आप ही अशांत होते हैं। यह आपका ही अर्जन है, यह आपका ही लगाया हुआ पौधा है, आपने ही सींचा और बड़ा किया है। ये जो अशांति के फल और फूल लगे हैं, ये आपके ही श्रम के फल हैं। और अगर आप पूरे अशांत हो गए, तो आपको दिखाई पड़ जाएगा कि सब व्यर्थ था, यह पूरा श्रम आत्मघाती था। आप इसे छोड़ दे सकते हैं। कोई और आपको पकड़े हुए नहीं है, और कोई आपको अशांत नहीं कर रहा है।

एक क्षण में जीवन अशांति के मोड़ से शांति की दिशा में गति करता है। एक तो उपाय यह है। लेकिन जब मैंने कल कहा कि जब आप अशांत हैं तब शांत होना मुश्किल होगा, उसका प्रयोजन दूसरा है।

पहली तो बात यह कि जब आप अशांत हैं, तो मेरा अर्थ पूरी अशांति से नहीं है। आप आधे—आधे हैं। जैसे पानी को हम गरम करें; वह पचास डिग्री पर गरम हो, तो न तो वह भाप बन पाता है और न बर्फ बन पाता है। पानी ही रहता है। सिर्फ गरम होता है। या तो सौ डिग्री तक गरम हो जाए, तो रूपांतरण हो सकता है, पानी छलांग लगा ले, भाप बन

जाए। और या शून्य डिग्री के नीचे गिर जाए, तो भी रूपांतरण हो सकता है, पानी समाप्त हो जाए, बर्फ बन जाए। दोनों हालत में पानी खो सकता है, लेकिन अतियों से।

तो जब मैंने कल कहा कि जब आप अशांत हैं तब शांत होना मुश्किल होगा, उसका मतलब इतना ही है कि जब पानी गरम है, तो बर्फ बनानी मुश्किल होगी। पानी को ठंडा करना होगा, तो बर्फ बन सकती है।

लेकिन दो उपाय हैं। या तो पानी को पूरा गरम कर लें, तो भी पानी खो जाएगा, आप एक नए जगत में प्रवेश कर जाएंगे। या फिर पानी को पूरा ठंडा हो जाने दें, तो भी पानी खो जाएगा और नई यात्रा शुरू हो जाएगी।

अशांति से कूदने के दो उपाय हैं। या तो बिलकुल शांत क्षण आ जाए और या बिलकुल अशांत क्षण आ जाए। आप जहां हैं, वहा से छलांग नहीं लग सकती। या तो पीछे लौटें और अपने को शांत करें या आगे बढ़े और पूरे अशांत हो जाएं।

दोनों की सुविधाएं और दोनों के खतरे हैं। शांत होने की सुविधा तो यह है कि कोई विक्षिप्तता का डर नहीं है। इसलिए अधिक धर्मों ने शांत होने के छोर से ही छलांग लगाने की कोशिश की है। संन्यासियों को कहा गया है, घर—द्वार छोड़ दें, गृहस्थी छोड़ दें, काम—काज छोड़ दें।

यह सब शांत होने की व्यवस्था है। उन परिस्थितियों से हट जाएं, जहां पानी गरम होता है। चले जाएं दूर हिमालय में, जहां कोई गरम करने को न होगा, धीरे— धीरे आप ठंडे हो जाएंगे। हट जाएं उन—उन स्थितियों से, जहां आप उबलने लगते हैं। बार—बार उबलने लगते हैं, उबलने की आदत बन जाती है। हट जाएं उन व्यक्तियों से, जिनके संपर्क में आपको ठंडा होना मुश्किल हो रहा है।

अधिक धर्मों ने, जहां आप हैं—मध्य में, अशांति में खड़े, अधूरी अशांति में—वहां से पीछे लौटने की सलाह दी है। खतरा उसमें कम है। लेकिन कठिनाई भी है उसकी। क्योंकि आप परिस्थितियों से हट सकते हैं, लोगों से हट सकते हैं, दुकान—बाजार छोड़ सकते हैं, लेकिन आपका मन आपके साथ हिमालय चला जाएगा। और जो मन यहां अशांत हो रहा था, वह मन तो आपके साथ होगा, सिर्फ अशांत करने वाली परिस्थितियां साथ न होंगी।

तो हो सकता है कि आप थोड़े शांत होने लगें, लेकिन वह शांति धोखा भी सिद्ध हो सकती है। बीस साल हिमालय पर रहकर वापस लौटें, और जैसे ही नगर में आएं, अशांति वापस पकड़ सकती है। क्योंकि परिस्थिति से हट गए थे, आप शांत नहीं हुए थे, जहां अशांति होती थी, उस जगह से हट गए थे। तो खतरा भी है, सुविधा भी है।

दूसरा उपाय कुछ धर्मों की विशेष शाखाओं ने किया है। जैसे बुद्ध—धर्म की झेन शाखा ने अशांत करने का पूरा प्रयोग किया है। इस्लाम की सूफी शाखा ने अशांत करने का पूरा प्रयोग किया है। वे कहते हैं, भागने से कुछ भी न होगा। चित्त को उसकी पूरी दौड़ में चले जाने दें, उसको हो लेने दें जितना पागल होना है। उसको उसके पूरे पागलपन को छू लेने दें और वहीं से छलांग लें।

इसके खतरे हैं, इसके लाभ हैं। खतरा तो यह है कि आप क्रमश: पाएंगे कि आप और भी पागल होते जा रहे हैं। खतरा यह है कि अगर आप पूरे छोर तक न पहुंचे, नब्बे डिग्री पर कहीं रुक गए, तो आप विक्षिप्त हालत में रह जाएंगे। बहुत—से संन्यासी विक्षिप्त अवस्था में रह जाते हैं।

सौ डिग्री तक पहुंचें, तो पानी भाप बन जाएगा, लेकिन जरूरी नहीं है कि आप पहुंच पाएं। अगर निन्यानबे डिग्री पर भी रह गए, तो आप सिर्फ पागल होंगे, उन्मत्त हो जाएंगे। उस उन्मत्तता की अवस्था में न तो पीछे लौटना आसान होगा, न आगे जाना आसान होगा।

वह दुर्घटना घटती है। अगर बीच में अटके, तो कठिनाई बढ़ जाएगी। और आप इस हालत में होंगे उबलने की कि फिर आप कुछ भी न कर पाएंगे। इसलिए यह जो दूसरा मार्ग है, अनिवार्यरूपेण किसी गुरु के पास ही साधा जा सकता है।

पहला मार्ग अकेला भी साधा जा सकता है, क्योंकि शांत होने की प्रक्रिया है, कोई खतरा नहीं है। दूसरे मार्ग में खतरा है। कोई चाहिए, जो आपको सौ डिग्री तक पहुंचा दे। क्योंकि पचास—साठ डिग्री के बाद आपका होश आपके काम नहीं आएगा। आप इतनी उबलती हालत में होंगे कि फिर आप अपने नियंत्रण में नहीं होंगे। कोई और चाहिए, जो आपको आगे ले जाए। और आखिरी क्षणों में, जब सौ डिग्री पर आप पहुंचते हैं, तब तो गुरु भी चाहिए ऐसा स्थान चाहिए, जहां और भी साधक आस—पास हों, जहां का पूरा वातावरण आपको सौ डिग्री तक पहुंचा दे और टूटने न दे।

इसलिए ग्रुप, एक समूह, स्कूल, संप्रदाय, आश्रम, इसका उपयोग है। जहां बहुत—से लोग उस शांत अवस्था को पहुंच गए हैं, जहां बहुत—से लोग इस उबलती हुई अवस्था को पार कर गए हैं, जहां बहुत—से लोगों ने सौ डिग्री का ताप और पागलपन जाना है, उनकी मौजूदगी आपको सम्हालेगी। और कई बार महीनों तक, वर्षों तक यह विक्षिप्त अवस्था बनी रह सकती है। उस वक्त कोई चाहिए, जो आपको देखे और सम्हाले।

पश्चिम के मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि पश्चिम के पागलखानों में बहुत—से ऐसे पागल बंद हैं, जो पागल नहीं हैं, जो सिर्फ उन्माद की अवस्था में हैं। लेकिन पश्चिम में उनको सम्हालने वाला कोई नहीं है।

ईसाइयों ने, मुसलमानों ने, हिंदुओं ने, बौद्धों ने मोनेस्ट्रीज खड़ी की थीं। आज भी ईसाइयों की कुछ मोनेस्ट्रीज पश्चिम में हैं, जहां व्यक्ति प्रवेश करता है एक बार, तो फिर मरने के पहले वापस नहीं निकलता है। बीस वर्ष, तीस वर्ष, चालीस वर्ष। जो व्यक्ति एक बार द्वार के भीतर गया, वह फिर आश्रम के बाहर नहीं आता, जब तक कि वह अतिक्रमण न कर जाए। जब तक गुरु आज्ञा न दे, तब तक दुनिया से उसका कोई वास्ता नहीं है। और पूरा समूह सहयोगी होता है। इन मोनेस्ट्रीज में अनेक लोग विक्षिप्त अवस्था में वर्षों तक रहते हैं।

तो दूसरे मार्ग का खतरा है, सुविधा भी है। सुविधा यह है कि धोखे का कोई उपाय नहीं है। एक बार पार कर गए, तो पार कर गए; फिर लौटकर गिरना नहीं होगा। फिर यह सारी दुनिया भी आपको अशांत नहीं कर सकती। फिर आप कहीं भी हों, आपको नरक में भी डाल दिया जाए, तो भी आप स्वर्ग में ही होंगे। आपके स्वर्ग को छीना नहीं जा सकता। यह तो सुविधा है।

खतरा यह है कि बड़ी व्यवस्था चाहिए, योग्य निरीक्षण चाहिए, समर्पण का पूरा भाव चाहिए। क्योंकि अपने को पागल करने देना और किसी को शक्ति देना कि वह आपको पागलपन की तरफ ले जाए, पूरा उद्विग्न कर दे, बड़े समर्पण के बिना नहीं हो सकेगा। पूरा समर्पण चाहिए और अंधा अनुकरण चाहिए, तभी आप पागल हो सकेंगे। और एक बार आप पूरी तरह जल जाएं भीतर, तो छलांग लग जाएगी। अति से ही रूपांतरण होता है।

कृष्ण पहले मार्ग की बात कर रहे हैं, जो व्यक्ति अकेला भी साध सकता है। इसलिए मैंने कहा कि जब आप अशांत हैं, तब शांत होना बहुत मुश्किल होगा। इसलिए जब आप शांत हैं, तभी शांति को साधें, ताकि अशांत होने का मौका न आए। और शांति आपके जीवन का आधार बन जाए। धीरे— धीरे वह इतना सुदृढ़ हो जाए कि आप पानी को भाप बनाकर क्रांति में न जाएं, वरन पानी को बर्फ बनाकर क्रांति में जाएं।

पानी से तो हटना है। जहां आप हैं, वहां से तो चलना है। ये चलने के दो उपाय हैं। ज्यादा सुगम—अकेले भी चला जा सके, विक्षिप्तता का भय न हो—पहला मार्ग है। ज्यादा तीव्र, ज्यादा प्रामाणिक, जिससे लौटकर गिरने का कोई डर नहीं है, लेकिन ज्यादा खतरनाक, दुस्साहस का, दूसरा मार्ग है। और प्रत्येक व्यक्ति को तय करना होता है कि उसका कितना साहस है, कितनी क्षमता है, कितना दाव पर लगाने की हिम्मत है।

अगर दुकानदार का मन हो, तो पहला मार्ग ठीक है; अगर जुआरी का मन हो, तो दूसरा मार्ग ठीक है। अगर का चित्त हो, तो पहला मार्ग ठीक है, अगर युवा चित्त हो, तो दूसरा मार्ग ठीक है। अगर स्त्री का चित्त हो, तो पहला मार्ग ठीक है; अगर पुरुष का चित्त हो, तो दूसरा मार्ग ठीक है।

पर प्रत्येक को समझना होता है कि उसकी अपनी जीवन—दशा कैसी है। जहां वह खड़ा है, जैसा वह है, क्या उसके लिए सुगम होगा। क्योंकि आप अगर कुछ अपने से विपरीत मार्ग चुन लें, तो आपका समय, शक्ति अपव्यय होगी। और इसीलिए गुरु की उपादेयता हो जाती है। क्योंकि न केवल वह मार्ग दे सकता है, बल्कि वह यह भी परख दे सकता है कि आपके लिए क्या उचित होगा।

इसलिए पुराने दिनों में एक—एक साधक को गुरु उसके कान में ही उसकी साधना का सूत्र देता रहा है; उसके कान में ही मंत्र देता रहा है। वह उसके लिए निजी था। वह उस व्यक्ति के लिए विशेष था। वह उसका मार्ग, पथ था। उस मंत्र को किसी को कहना भी नहीं है.। क्योंकि आप नहीं जानते, वह किसी और के काम आ सकता है कि नहीं आ सकता है। और आपको पता नहीं है कि वह किसी को नुकसान भी पहुंचा सकता है; किसी के लिए कल्याणकारी हो सकता है।

तो वह जो अतिक्रमण कर गया है जीवन की सारी स्थितियों को, जो लौटकर देख सकता है सारे विस्तार को, जो आपके अंतःकरण में प्रवेश कर सकता है, जो आपके मन की आज की दशा जान सकता है, जो आपके अतीत संस्कारों को ठीक से पहचान सकता है और जो निर्णय ले सकता है कि भविष्य आपके लिए कौन—सा सुगम होगा, उसके बिना मार्ग पर बढ़ जाना सदा ही जोखम का काम है।

दूसरा प्रश्न :
कृष्ण ने गीता में लोक और शास्त्र के विरूद्ध आचरण का निषेध किया है। लेकिन इस नियम से तो समाज लकीर का फकीर होकर रह जाएगा। शायद यही कारण है कि हिंदू समाज सदियों —सदियों से यथास्थिति में पड़कर सड रहा है। इस प्रवृत्ति से तो दकियानूसीपन ही बढ़ेगा तथा सुधार, परिवर्तन और क्रांति असंभव हो जाएंगे! इस पर प्रकाश डालें। इसे समझना जरूरी है।

पहली बात, कृष्ण जो भी कह रहे हैं गीता में, वह कोई समाज—सुधार का आयोजन नहीं है, वह कोई समाज—सुधार की रूप—रेखा नहीं है। वह प्रस्तावना व्यक्ति की आत्मक्रांति के लिए है। और ये दोनों बातें बड़ी भिन्न हैं।

अगर व्यक्ति को आत्मक्रांति की तरफ जाना हो, तो यही उचित है कि वह व्यर्थ के उपद्रवों में न पड़े। क्योंकि शक्ति सीमित है, समय सीमित है, और जीवन और समाज के प्रश्न तो अनंत हैं। उनकी कभी कोई समाप्ति होने वाली नहीं है।

हजारों वर्षों से समाज है, हजारों रूपांतरण किए गए हैं, हजारों सामाजिक क्रांतिया हो चुकी हैं, लेकिन समाज फिर भी सड़ रहा है। एक चीज बदल जाती है, तो दूसरी खड़ी हो जाती है। दूसरी बदल जाती है, तो तीसरा सवाल खड़ा हो जाता है। एक समस्या का हम समाधान करते हैं, तो समाधान से ही दस समस्याएं खड़ी हो जाती हैं। समस्याओं का समाज के लिए कभी कोई अंत आने वाला नहीं है।

हिंदू इस बात को बड़े गहरे से समझ गए कि समाज बहता रहेगा, समस्याएं बनी रहेंगी। क्यों? क्योंकि समाज बनता है करोड़ों—करोड़ों, अरबों—अरबों लोगों से। और वे अरब— अरब लोग अज्ञान से भरे हैं, वे अरब— अरब लोग पागलपन से भरे हैं, वे अरब—अरब लोग विक्षिप्त हैं। उन अरबों लोगों का जो समाज है, वह कभी भी स्वस्थ नहीं हो सकता। बीमार होना उसका लक्षण ही रहेगा, जब तक कि ये सारे लोग प्रबुद्ध पुरुष न हो जाएं।

बुद्धों का कोई समाज हो, तो समस्याओं के पार होगा। हमारा समाज समस्याओं के पार कभी हो नहीं सकता। और हम जो भी करेंगे। एक तरफ हम सुधारेंगे, तो दस तरफ हम बिगाड़ कर लेते हैं।

आज से दो सौ साल पहले दुनियाभर के विचारकों का खयाल था, अगर शिक्षा बढ़ जाए जगत में, तो स्वर्ग आ जाएगा। अब शिक्षा बढ़ गई है। अब सारा जगत शिक्षा के मार्ग पर गतिमान हुआ है। अधिकतम लोग शिक्षित हैं। लेकिन अब शिक्षा के कारण जो परेशानियां आ रही हैं, वह दो सौ साल पहले के समाज—सुधारकों को उनका कोई पता भी नहीं था।

अब शिक्षा के कारण ही उपद्रव है। और बड़े विचारक, डी एच लारेंस जैसा विचारक, यह सुझाव दिया कि सौ साल तक हमें सारे विश्वविद्यालय बंद कर देने चाहिए, सौ साल तक सारी शिक्षा बंद कर देनी चाहिए, तो ही हमारी समस्याओं का हल होगा, नहीं तो हल नहीं हो सकता।

आज हमारे सारे पागलपन और उपद्रव का गढ़ विश्वविद्यालय बन गया है। सब उपद्रव वहां से पैदा हो रहे हैं। सोचा था, शिक्षा स्वर्ग ले आएगी। लेकिन जिनको हमने शिक्षित किया है, वे समाज को और नरक बनाए दे रहे हैं! सोचा था कि शिक्षा से लोग सत्य, धर्म, नीति की तरफ बढ़ेंगे। लेकिन शिक्षा सिर्फ लोगों को बेईमान और चालाक बना रही है।

शिक्षित आदमी के ईमानदार होने में कठिनाई हो जाती है, क्योंकि वह गणित बिठालने लगता है, चालाक हो जाता है। बुद्धि बढ़ेगी, तो चालाकी भी बढ़ेगी। चालाकी बढ़ेगी, तो दूसरे का शोषण करने में ज्यादा कुशल हो जाएगा। शिक्षा बढ़ेगी, तो महत्वाकांक्षा बढ़ेगी, एंबीशन बढ़ेगी। महत्वाकांक्षा बढ़ेगी, तो वह संघर्ष करेगा। तृप्ति कम हो जाएगी, असंतोष घना हो जाएगा।

वह देखता है कि दूसरा आदमी अगर एम ए. पास है और चीफ मिनिस्टर हो गया है और मैं भी एम ऐं. पास हूं तो मैं क्यों क्लर्क रहूं! और यह भी हो सकता है कि थर्ड क्लास एम .ए. मिनिस्टर हो गया है और फर्स्ट क्लास एम ए. क्लर्क है, तो वह कैसे बरदाश्त करे! तो उपद्रव खड़ा होगा।

लोग सोचते थे, गरीबी कम हो जाएगी, तो समाज में सुख आ जाएगा। अमेरिका से गरीबी काफी मात्रा में तिरोहित हो गई। कम से कम आधे वर्ग की तो तिरोहित हो गई। लेकिन वह जो आधा वर्ग आज गरीबी के बिलकुल पार है, वह बड़े महान दुख में पड़ा हुआ है।

अब तक हम सोचते थे कि धन होगा, तो सुख होगा। अब जिनके पास धन है, उनका सुख इस बुरी तरह खो गया है, जितना किसी गरीब का कभी नहीं खोया था। गरीब को एक आशा थी कि कभी धन होगा, तो सुख मिल जाएगा। जिनके पास आज धन है, उनकी यह आशा भी खो गई है। धन है, और सुख नहीं मिला। अब भविष्य बिलकुल अंधकार है। कुछ पाने योग्य भी नहीं है। और फिर जीने की कोई आशा भी नहीं रह गई है।

तो अमेरिका सर्वाधिक आत्मघात कर रहा है। अधिकतम लोग अपने को मिटाने की हालत में हैं। जीकर भी क्या करें? गरीबी मिट जाए, अशिक्षा मिट जाए हम सोचते हैं, बीमारी मिट जाए, सभी लोग स्वस्थ हो जाएं। पर स्वस्थ होकर भी आदमी क्या करेगा?

मैंने सुना है, तैमूरलंग ने एक ज्योतिषी को बुलाया। तैमूरलंग को काफी नींद आती थी। तो उसने ज्योतिषी से पूछा कि बात क्या है? क्या मेरे तारों में, क्या मेरे भाग्य में, क्या मेरी जन्मकुंडली में कुछ ऐसी बात है कि मुझे बहुत नींद आती है? रातभर भी सोता हूं तो भी दिनभर मुझे नींद आती है। और यह तो बुरा लक्षण है। क्योंकि शास्त्रों में कहा है, इतना आलस्य तामसी प्रवृत्ति का सूचक है। उस ज्योतिषी ने कहा कि महाराज, इससे ज्यादा स्वागत—योग्य कुछ भी नहीं है। आप चौबीस घंटे सोए। यह बिलकुल शुभ लक्षण है। शास्त्र गलती पर हैं।

तैमूरलंग को भरोसा नहीं आया। उसने कहा कि शास्त्र गलत नहीं हो सकते, तुम यह क्या कह रहे हो! उसने कहा कि शास्त्रों ने आपके संबंध में लिखा ही नहीं है। आप जैसा आदमी चौबीस घंटे सोए, यही सुखद है। आप जितनी देर जगते हैं, उतना ही उपद्रव होता है। आपसे उपद्रव के सिवाय कुछ हो ही नहीं सकता। तो परमात्मा की बड़ी कृपा है कि आप सोए रहें। आपका जीवित होना खतरनाक है। आपका मर जाना शुभ है।

आदमी पर निर्भर है। अगर आप, जिसको आप कह रहे हैं कि सारा जगत स्वस्थ हो जाए, ये सारे उपद्रवी लोग अगर स्वस्थ हो जाएं, तो आप यह मत सोचना कि शांति आएगी दुनिया में। वह जो बीमार था, एक पत्नी से राजी था, वह जब स्वस्थ हो जाएगा, दस पत्नियों से भी राजी होने वाला नहीं। वह बीमार था, तो वह कभी बरदाश्त भी कर लेता था, सह भी लेता था, समझा लेता था अपने को। वह स्वस्थ हो जाएगा, तो वह तलवार लेकर कूद पड़ेगा, वह सह भी नहीं सकेगा, बरदाश्त भी नहीं करेगा।

आदमी अगर गलत है, तो उसका स्वस्थ होना खतरनाक है। आदमी अगर गलत है, तो उसका शिक्षित होना खतरनाक है। आदमी अगर गलत है, तो उसका धनी होना खतरनाक है। और आदमी गलत हैं, समाज गलत आदमियों का जोड़ है। हमारे हिसाब से समाज सदा ही गलत आदमियों का जोड़ रहेगा। क्योंकि जो भी आदमी ठीक हो जाता है, हिंदुओं के गणित से, वह वापस नहीं लौटता।

कृष्ण या बुद्ध या महावीर, जैसे ही शुभ हो जाते हैं, यह उनका आखिरी जीवन है। फिर इस जीवन में वे वापस नहीं आते। तो शुभ आदमी तो जीवन से तिरोहित हो जाता है, अशुभ आदमी लौटता आता है।

यह कारागृह, जिसको हम संसार कहते हैं, वह बुरे आदमी की जगह है। उसमें से भला तो अपने आप छिटककर बाहर हो जाता है। बुरा उसमें वापस लौट आता है, और भी निष्णात होता जाता है, और भी कुशल होता जाता है बुराई में। जितनी बार लौटता है, उतना निष्णात होता जाता है।

इसलिए समाज कभी शुभ हो नहीं सकेगा। यह बात निराशाजनक लग सकती है, लेकिन तथ्य यही है।

और कृष्ण या बुद्ध या महावीर या जीसस की उत्सुकता समाज में नहीं है, उत्सुकता व्यक्ति में है। क्योंकि वही बदला जा सकता है। और व्यक्ति को अगर जीवन—क्रांति करनी है, तो उचित है कि वह व्यर्थ की बातों में न पड़े। कि दहेज की प्रथा मिटानी है, इसमें लग जाए; आदिवासियों को शिक्षित करना है, इसमें लग जाए; हरिजनों का सुधार करना है, इसमें लग जाए; कोढ़ी की सेवा करना है, इसमें लग जाए। कुछ भी बुरे नहीं हैं ये काम, सब अच्छे हैं। लेकिन आपके पास जिंदगी कितनी है? और आप इसमें लग जाएं, तो आप समाप्त हो जाएंगे। न हरिजन मिटता है, न कोढ़ी मिटता है, न बीमार मिटता है, आप मिट जाएंगे। नए तरह के हरिजन पैदा हो जाएंगे।

रूस ने लाख उपाय किए क्रांति कर डाली। पुराना मजदूर मिट गया, नया मजदूर पैदा हो गया। पहले अमीर आदमी था, गरीब आदमी था; अब सरकारी आदमी है और गैर—सरकारी आदमी है। फर्क उतना ही है। तब भी कोई छाती पर बैठा था और कोई जमीन पर पड़ा था; अब भी कोई जमीन पर पड़ा है और कोई छाती पर बैठा है। नाम बदल जाते हैं, बीमारी कायम रहती है।

जिस व्यक्ति को आत्म—क्रांति में लगना है, उसे व्यर्थ के उपद्रव से अपने को बचाना चाहिए, यह कृष्ण का अर्थ है। तो वे कहते हैं, शास्त्र और समाज का जो नियम है, उसमें वह जो दैवी संपदा का व्यक्ति है, वह व्यर्थ की अड़चन नहीं डालता। उसे खेल का नियम मानकर पूरा कर देता है। वह कहता है, बाएं चलना है तो हम बाएं चल लेते हैं। वह इस पर झगड़ा खड़ा नहीं करता कि नहीं, दाएं चलेंगे। इस पर जीवन नहीं लगा देता। इसका कोई मूल्य भी नहीं है। और ऐसा व्यक्ति अपने जीवन का, अपनी ऊर्जा का सम्यक उपयोग कर पाता है।

और बड़े मजे की बात, विरोधाभासी दिखे तो भी बड़े मजे की बात यह है कि ऐसे व्यक्ति के जीवन के द्वारा समाज में कुछ घटित भी होता है। लेकिन वह प्रत्यक्ष नहीं होता घटित। वह सीधा समाज को बदलने नहीं जाता, वह अपने को बदल लेता है। लेकिन उसकी बदलाहट के परिणाम समाज में भी प्रतिध्वनित होते हैं।

हजारों क्रांतिकारी जो फर्क समाज में नहीं कर पाते, वह एक आत्मा को उपलब्ध व्यक्ति कर पाता है। लेकिन वह उसकी इच्छा नहीं है, वह उसके लिए कोशिश में भी नहीं लगा है। उसकी मौजूदगी, उसके जीवन का प्रकाश अनेकों को बदलता है। लेकिन वह बदलाहट बड़ी सौम्य है। वह कोई क्रांति नहीं है। वह बहुत सौम्य विकास है। उसका कोई शोरगुल भी नहीं है। वह चुपचाप घटित होता है। वह मौन ही घट जाता है।

बुद्ध कोई क्रांति नहीं करते हैं समाज में, लेकिन बुद्ध के बाद दुनिया दूसरी हो जाती है। बुद्धों की मौजूदगी, उनके ज्ञान की घटना, मनुष्य की चेतना को कहीं गहरे में रूपांतरित कर जाती है, किसी को पता भी नहीं चलता। यह ऐसे हो जाता है, जैसे चुपचाप कोई फूल खिलता है और उसकी सुगंध हवाओं में फैल जाती है। न कोई बैंड बजता, न कोई नगाड़े बजते; कोई शोरगुल नहीं होता, चुपचाप सुगंध हवाओं में भर जाती है। फूल खो भी जाता है, तो सुगंध तिरती रहती है। सदियों—सदियों तक उस सुगंध से लोग आप्लावित होते हैं, रूपांतरित होते हैं।

लेकिन ये रुख यात्रा के बिलकुल अलग—अलग हैं। जो व्यक्ति समाज की तरफ उत्सुक हो जाएगा कि समाज को बदलना है, वह व्यक्ति अपने को बदलने में उत्सुक नहीं होता। अगर गहरे से समझना चाहें, तो असल में हम दूसरे को बदलने में इसलिए उत्सुक होते हैं, क्योंकि हम अपने को बदलना नहीं चाहते। यह एक तरह का पलायन है, यह एक तरकीब है।

तो हम देखते हैं, कहां—कहां दुनिया में भूल—चूक है, उसको बदलना है। सिर्फ अपने में कोई भूल—चूक नहीं देखते। और अपने में भूल—चूक दिखाई भी नहीं पड़ेगी, क्योंकि दुनिया में काफी भूल—चूके हैं।

और अगर मैंने यह तय कर लिया कि जब तक दुनिया न बदल जाए, तब तक मैं अपनी तरफ ध्यान न दूंगा, तो मैं अनंत जन्मों तक लगा रहूं तो भी मुझे अपने पर ध्यान देने का समय नहीं मिलेगा। यह दुनिया कभी पूरी बदल जाने वाली नहीं है।

इसलिए समाज को चुपचाप स्वीकार कर लेना दकियानूसीपन नहीं है, एक बहुत बुद्धिमत्ता का कृत्य है। और इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि ऐसे व्यक्ति से क्रांति घटित नहीं होती। ऐसे ही व्यक्ति से क्रांति घटित होती है। लेकिन वह क्रांति परोक्ष है। वह क्रांति लेनिन और मार्क्स और माओ जैसी क्रांति नहीं है। वह क्रांति महावीर, कृष्ण और बुद्ध की क्रांति है। वह बड़ी चुपचाप घटित होती है।

और इस जगत में जो भी महत्वपूर्ण है, वह चुपचाप घटित होता है। और जो भी व्यर्थ है, कचरा—कूड़ा है, वह काफी शोरगुल करता है। इस जगत में जो भी महत्वपूर्ण है, इतिहास उसको अंकित ही नहीं कर पाता। इस जगत में जो भी उपद्रव, उत्पात है, इतिहास उसको अंकित करता है।

एक यहूदी फकीर के संबंध में मैं पढ़ता था। वह अक्सर लोगों से कहता था कि मैं सिर्फ दो किताबें पढ़ता हूं, एक भगवान की और एक शैतान की। अनेक बार लोग उससे पूछते कि भगवान की किताब तो हम समझते हैं कि तालमुद यहूदियों का धर्मग्रंथ है, वह आप पढ़ते होंगे। लेकिन शैतान की किताब? यह इसका नाम क्या है? तो वह हंसता और टाल जाता।

जब उसकी मृत्यु हुई, तो पहला काम उसके शिष्यों ने यह किया कि उसकी कोठरी खोलकर देखा कि वह शैतान की किताब! उसके वहां दो तख्तियां लगी थीं : एक तरफ भगवान की किताब—वहा तालमुद रखी थी, और शैतान की किताब—वहां रोज का अखबार। वहा कोई किताब नहीं थी, वह जो रोज का अखबार है! बस, दो ही किताबें वह पढ़ता था।

अखबार इतिहास बन जाएगा। अगर जीसस के समय कोई अखबार होता, तो उसने जीसस की खबर छापी भी नहीं होती। किसी किताब में जीसस का कोई उल्लेख नहीं है। सिवाय जीसस के शिष्यों ने जो थोड़ा—सा लिखा है, बस वही बाइबिल, अन्यथा कोई उल्लेख नहीं है।

महावीर का इतिहास की किताबों में कोई उल्लेख नहीं है। वह जो महान घटना है, इतिहास के जैसे बाहर घटती है! इतिहास उसकी चिंता ही नहीं लेता। क्योंकि वह इतनी सौम्य है, उसकी कोई चोट नहीं पड़ती। न किसी की हत्या होती है, न गोली चलती है, न हड़ताल होती है, न घेराव होता है। कोई उपद्रव होता ही नहीं उसके आस—पास, इसलिए वह घटना चुपचाप घट जाती है। लेकिन उसके परिणाम सदियों तक गूंजते रहते हैं।

इतिहास कचरा है।
अमेरिकी अरबपति हेनरी फोर्ड कभी—कभी बड़ी कीमत की बातें कहता था। कभी—कभी छोटे—छोटे वचन, लेकिन बड़ी कीमत की बातें कहता था। उसका एक बहुत प्रसिद्ध छोटा—सा वचन है। उसने कहा है, हिस्ट्री इज बैक—बिलकुल कूड़ा—कर्कट है। और जो भी महत्वपूर्ण है, वह इतिहास के बाहर है, वह समय के बाहर घट रहा है, वह चुपचाप घटित हो रहा है।

तो ऐसा नहीं है कि ऐसे व्यक्ति से क्रांति घटित नहीं होती, ऐसे ही व्यक्ति से घटित होती है, लेकिन वह मौन क्रांति है।

तीसरा प्रश्न :
गीता में दैवी संपदा को प्राप्त व्यक्ति के लक्षण या गुण बताए गए हैं। क्या उन्हें अलग— अलग साधने से दिव्यता उपलब्ध होती है? या दिव्यता की उपलब्धि पर उसके फूल की तरह ये गुण चले आते हैं?
दोनों ही बातें एक साथ सच हैं। दोनों बातें एक साथ घटती हैं, युगपत।

प्रश्न ऐसा ही है, जैसे कोई पूछे कि मुर्गी पहले होती है कि अंडा। और सदियों से दार्शनिक विवाद करते रहे हैं। सवाल बचकाना लगता है, लेकिन जटिल है, और अब तक कुछ तय नहीं हो पाया कि पहले अंडा या पहले मुर्गी। क्योंकि कुछ भी तय करें, तो गलत मालूम होता है। कहें कि मुर्गी पहले होती है, तो गलत मालूम पड़ता है, क्योंकि मुर्गी बिना अंडे के कैसे हो जाएगी! कहें कि अंडा पहले होता है, तो गलत मालूम होता है, क्योंकि अंडा हो कैसे जाएगा जब तक मुर्गी उसे रखेगी नहीं! तो क्या करें? प्रश्न में कहीं कोई भूल है, इसलिए उत्तर नहीं मिल पाता है। और जब प्रश्न गलत हो, तो सही उत्तर खोजना बिलकुल असंभव है। कहां गलती है?

मुर्गी और अंडा को दो मानने में गलती है। अंडा मुर्गी की एक अवस्था है, मुर्गी अंडे की दूसरी अवस्था है। दोनों दो चीजें नहीं हैं। अंडा ही फैलकर मुर्गी होता है, मुर्गी फिर सिकुड़कर अंडा होती है।

बीज से वृक्ष होता है, वृक्ष में फिर बीज लग जाते हैं; तो बीज और वृक्ष दो चीजें हैं नहीं। बीज का फैलाव वृक्ष है, वृक्ष का फिर से सिकुडाव बीज है। एक रिदम है। चीजें फैलती हैं और सिकुड़ती हैं। बीज सिकुड़ा हुआ वृक्ष है, वृक्ष फैला हुआ बीज है। और जैसे दिन के बाद रात है और रात के बाद दिन है, ऐसा फैलाव के बाद सिकुडाव है, सिकुडाव के बाद फैलाव है। जन्म के बाद मृत्यु है, मृत्यु के बाद जन्म है। ये दो घटनाएं नहीं हैं; एक वर्तुल है।

तो मुर्गी अंडा दो चीज नहीं है, अंडा छिपी हुई मुर्गी है और मुर्गी प्रकट हो गया अंडा है। और दोनों एक साथ हैं। इसलिए इस प्रश्न को अगर किसी ने सोचना शुरू किया कि कौन पहले, तो वह पागल भला हो जाए सोचते—सोचते, वह इसका उत्तर नहीं पा सकेगा।

और ऐसे बहुत—से प्रश्न हैं। यह प्रश्न भी वैसा ही है कि ये जो लक्षण हैं, इनके साधने से दिव्यता सधती है; या दिव्यता सध जाए, तो ये लक्षण फूल की भांति खिल जाते हैं।

ये दो बातें अलग नहीं हैं। लक्षण सध जाएं, तो दिव्यता सध गई, क्योंकि उन लक्षणों में दिव्यता छिपी है। दिव्यता सध जाए, तो लक्षण आ गए, क्योंकि दिव्यता बिना उन लक्षणों के आ नहीं सकती। लक्षण और दिव्यता दो बातें नहीं हैं। लक्षण दिव्यता के अनिवार्य अंग हैं।

तो आप कहीं से भी यात्रा करें। आप मुर्गी खरीद लाएं, तो घर में अंडे आ जाएंगे। आप अंडा ले आएं, तो मुर्गी बन जाएगी। पर बैठकर सोचते ही मत रहें कि क्या लाएं। कुछ भी ले आएं। दो में से कुछ भी लाएं। कहीं ऐसा न हो कि आप सोचते ही रहें, मुर्गी भी खो जाए, अंडा भी खो जाए। आप लक्षण साध लें, आप पाएंगे, उनके साथ ही साथ दिव्यता खिलने लगी। आप छोडे लक्षणों की चिंता। आप दिव्यता को साधने में लग जाएं।

दोनों संभावनाएं हैं। जो लोग लक्षणों को साधने चलते हैं, उन्हें आचरण से अपने को बदलना शुरू करना पड़ता है। आचरण आपकी बहिर परिधि है। आप क्या करते हैं, उसमें बदलाहट करेंगे, तो लक्षण सध जाएंगे। जो लोग दिव्यता साधना चाहते हैं, उन्हें अंतःकरण बदलने से शुरू करना पड़ता है। अंतःकरण आपका केंद्र है। आप बदल जाएंगे, आपका आचरण बदल जाएगा।

जहां से आपको सुगमता लगती हो, अगर आप बहिर्मुखी व्यक्ति हैं......।

मनसविद दो विभाजन करते हैं व्यक्तियों के बहिर्मुखी, एक्सट्रोवर्ट, और अंतर्मुखी, इंट्रोवर्ट। अगर आप बहिर्मुखी व्यक्ति हैं, कि आपको बाहर की चीजें ज्यादा दिखाई पड़ती हैं, तो आपके लिए उचित होगा कि आप लक्षण साधें। क्योंकि भीतर का आपको कुछ दिखाई ही नहीं पड़ता। अगर आपसे कोई कह भी दे कि आख बंद करो और भीतर

देखो, तो आप कहेंगे, भीतर क्या है देखने को? देखने को तो सब बाहर है। अगर भीतर आख भी बंद कर लें, तो भी बाहर की ही याद आएगी। मित्र दिखाई पड़ेंगे, मकान दिखाई पड़ेंगे, घटनाएं दिखाई पड़ेंगी, वह सब बाहर है।

वैज्ञानिक है, वह बहिर्मुखी है। क्षत्रिय है, वह बहिर्मुखी है। कवि है, चित्रकार है, वह अंतर्मुखी है। उसे सब भीतर है।

प्रसिद्ध डच चित्रकार हुआ, वानगाग। उसके चित्र बिक नहीं सके, क्योंकि उसके चित्र बिलकुल समझ के बाहर थे। वह वृक्ष बनाएगा, तो इतने बड़े, कि आकाश तक चले जाएं। चांद वगैरह बनाएगा, तो छोटे—छोटे लटका देगा, और वृक्ष चांद के ऊपर चले जा रहे हैं! वृक्षों को ऐसे रंग देगा, जैसे वृक्षों में होते ही नहीं रंग। वृक्ष हरे हैं, उसके वृक्ष लाल भी हो सकते हैं।

तो लोग कहते, यह तुम क्या करते हो! वह कहता, जब मैं आख बंद करता हूं तो जो मुझे दिखाई पड़ता है, वह मैं.। क्योंकि जब भी मैं देखता हूं तो मुझे वृक्ष पृथ्वी की आकांक्षाएं मालूम पड़ते हैं, आकाश को छूने की आकांक्षाए। जब भी मैं आख बंद करता हूं तो मैं देखता हूं पृथ्वी कोशिश कर रही है वृक्षों के द्वारा आकाश को छूने की, इसलिए मेरे वृक्ष आकाश तक चले जाते हैं। जो काम पृथ्वी नहीं कर पाती, वह मैं करता हूं। पर वृक्षों को मैं ऐसे ही देखता हूं। यह एक अंतर्मुखी व्यक्ति की, जिसका जगत भीतर है......। यह अंतर्मुखी व्यक्ति अगर कोई हो, तो उसे दिव्यता से शुरू करना

पडेगा। बहिर्मुखी व्यक्ति कोई हो तो उसे आचरण से शुरू करना पड़ेगा।

तो आप लक्षण से शुरू करें या दिव्यता से; शुरू करें! दूसरी घटना अपने आप घट जाएगी। आचरण को बदलते—बदलते आप भीतर आने लगेंगे। क्योंकि आचरण की जड़ें तो भीतर हैं, सिर्फ शाखाएं बाहर हैं। अगर आप आचरण को बदलने लगे, तो आज शाखाएं बदलेंगे, कल आप जड़ों को पकड़ लेंगे, जड़ें भीतर हैं। अगर आप अंतःकरण को बदलते हैं, तो अंतःकरण में जड़ें तो भीतर हैं, लेकिन शाखाएं बाहर हैं। आप जड़ों से शुरू करेंगे, यात्रा करते—करते आज नहीं कल बाहर पहुंच जाएंगे।

बाहर और भीतर एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। न तो बाहर अलग है भीतर से, न भीतर अलग है बाहर से। बाहर और भीतर एक का ही विस्तार है। कहीं से भी शुरू करें, दूसरा छोर प्रकट हो जाएगा। लेकिन शुरू करें। जो शुरू नहीं करता...... बहुत लोग हैं, जो सोचते ही रहते हैं।

आज ही एक युवक मेरे पास आया। उसने कहा, मैं सोचता हूं सोचता हूं और सोचने में इतना खो जाता हूं कि निर्णय तो कुछ कर ही नहीं पाता। और जो भी निर्णय करता हूं उससे विपरीत भी मेरी समझ में आता है कि ठीक है। और जब तक तय न हो जाए, तब तक निर्णय कैसे करूं! और तय कुछ होता नहीं। और जितना सोचता हूं उतना ही तय होना मुश्किल होता जाता है।

अगर आप ज्यादा सोचेंगे, तो कठिनाई खड़ी होगी। अगर आप सोचते ही रहेंगे, तो धीरे— धीरे सारी ऊर्जा सोचने में ही व्यतीत हो जाएगी। उसका कोई कृत्य नहीं बन पाएगा। और ध्यान रहे, जीवन की संपदा कृत्य से उपलब्ध होती है, सिर्फ विचार से नहीं!

विचार सपनों की भांति हैं। जैसे समुद्र पर झाग और फेन उठती है, ऐसे चेतना की झाग और फेन की भांति विचार है। उनका कोई मूल्य नहीं है। समुद्र की लहर पर लगता है, जैसे शिखर आ रहा है फेन का; लगता है, हाथ में ले लेंगे। लेकिन हाथ में पकड़ते हैं, तो पानी के बबूले फूट जाते हैं, कुछ हाथ आता नहीं। ऐसा ही फेन और झाग है विचार आपकी चेतना का। वह लहर पर दूर से बड़ा कीमती दिखाई पड़ता है। सूरज की किरणों में बड़ी चमक मालूम होती है। घर में तिजोरी में सम्हालकर रखने जैसा लगता है। लेकिन हाथ में लेते ही पता चलता है, वहा कुछ भी नहीं है, पानी के बबूले हैं।

इस झाग से थोड़ा नीचे उतरना जरूरी है। उस लहर को पकड़ना जरूरी है जिस पर यह झाग है। और लहर के नीचे छिपे सागर को पकड़ना जरूरी है, जिसकी यह लहर है। और तभी जीवन में कोई रूपांतरण, कोई क्रांति संभव है।

अब हम सूत्र को लें।
और हे पार्थ, पाखंड, घमंड और अभिमान तथा क्रोध और कठोर वाणी एवं अज्ञान, ये सब आसुरी संपदा को प्राप्त हुए पुरुष के लक्षण हैं। उन दोनों प्रकार की संपदाओं में दैवी संपदा तो मुक्ति के लिए और आसुरी संपदा बांधने के लिए मानी गई है। इसलिए हे अर्जुन, तू शोक मत कर, क्योंकि तू दैवी संपदा को प्राप्त हुआ है।

और हे अर्जुन, इस लोक में भूतों के स्वभाव दो प्रकार के माने गए हैं, एक तो देवों के जैसा और दूसरा असुरों के जैसा। उनमें देवों का स्वभाव ही विस्तारपूर्वक कहा गया, इसलिए अब असुरों के स्वभाव को भी विस्तारपूर्वक मेरे से सुन।

पाखंड, हिपोक्रेसी.......।

पाखंड का अर्थ है, जो आप नहीं हैं, वैसा स्वयं को दिखाना। जो आपका वास्तविक चेहरा नहीं है, उस चेहरे को प्रकट करना। हम सबके पास मुखौटे हैं। जरूरत पर हम उन्हें बदल लेते हैं। सुबह से सांझ तक बहुत बार हमें नए—नए चेहरों का उपयोग करना पड़ता है। जैसी जरूरत हो, वैसा हम चेहरा लगा लेते हैं। धीरे— धीरे यह भी हो सकता है कि इस पाखंड में चलते—चलते आपको भूल ही जाए कि आप कौन हैं।

यही हो गया है। अगर आप अपने से पूछें कि मैं कौन हूं तो कोई उत्तर नहीं आता। क्योंकि आपने इतने चेहरे प्रकट किए हैं, आपने इतने रूप धरे हैं, आपने इतनी भांति अपने को प्रचारित किया है, कि अब आप खुद भी दिग्भ्रम में पड़ गए हैं कि मैं हूं कौन! क्या है सच मेरा! मेरी कोई सचाई है, या बस मेरा सब धोखा ही धोखा है! सुबह से सांझ तक, हम जो नहीं हैं, वह हम अपने को प्रचारित कर रहे हैं।

कृष्ण ने दैवी संपदा में गिनाया, सत्य, प्रामाणिकता, आथेंटिसिटी, व्यक्ति जैसा है, बस वही उसका होने का ढंग है, चाहे कोई भी परिणाम हो। आसुरी संपदा में उसके अनेक चेहरे हैं।

हम रावण की कथा पढ़ते हैं, लेकिन शायद आपको अर्थ पकड़ में नहीं आया होगा। कि रावण दशानन है, उसके दस चेहरे हैं। राम का एक ही चेहरा है। राम आथेंटिक हैं, प्रामाणिक हैं। उन्हें आप पहचान सकते हैं, क्योंकि कोई धोखा नहीं है। रावण को पहचानना मुश्किल है। उसके बहुत चेहरे हैं। दस का मतलब, बहुत। क्योंकि दस आखिरी संख्या है। दस से बडी फिर कोई संख्या नहीं है। फिर

सब संख्याएं दस के ऊपर जोड़ हैं।

दस चेहरे का मतलब है, बस आखिरी। उसका असली चेहरा कौन है, यह पहचानना मुश्किल है। रावण असुर है। और हमारे चित्त की दशा जब तक आसुरी रहती है, तब तक हमारे भी बहुत चेहरे होते हैं। हम भी दशानन होते हैं। इससे हम दूसरे को धोखा देते हैं, वह तो ठीक है, इससे हम खुद भी धोखा खाते हैं। क्योंकि हमें खुद ही भूल जाता है कि हमारा स्वरूप क्या है।

पाखंड का अर्थ है, दूसरे को धोखा देना और अंततः उस धोखे से खुद को भी धोखे में डाल लेना।

झूठ का स्वभाव है, एक झूठ को बचाना हो, तो फिर हजार झूठ बोलने पड़ते हैं। फिर इतनी अनंत श्रृंखला है झूठों की कि हमें याद भी नहीं रहता कि पहला झूठ क्या था, जो हमने बोला था।

झूठ का एक दूसरा स्वभाव है, अगर बार—बार उसे पुनरुक्त किया जाए, तो निरंतर पुनरुक्ति के कारण हम आटो— हिप्नोटाइज्ड हो जाते हैं, हम सम्मोहित हो जाते हैं। और हमें खुद ही लगने लगता है कि यह ठीक है। आप एक झूठ बार—बार दोहराते रहें, फिर आपको खुद ही शक होने लगेगा कि यह सच है या झूठ है! क्योंकि आपने इतनी बार दोहराया है कि उसकी छाप आपके ऊपर पड़ गई। मैं पढ़ रहा था, एक आदमी ने हत्या की थी, और उस पर मुकदमा चल रहा था। वर्षों तक कार्यवाही चली। बड़ा जटिल उलझा हुआ मामला था। वकीलों के बयान हुए, गवाहों

के बयान हुए, अदालत चलती रही। अंत में मजिस्ट्रेट भी थक गया, क्योंकि सब स्थिति बिलकुल कनफ्यूज्ड थी। कुछ साफ नहीं होता था। कोई दो वक्तव्यों में मेल नहीं होता था। कोई दो गवाहों का बयान मिलता नहीं था। कुछ निर्णय होना मुश्किल था। आखिर जज ने थककर उस हत्यारे को पूछा कि तू कृपा कर और तू स्वयं कह दे कि बात क्या है?

तो उसने कहा कि जब शुरू—शुरू में मैं आया था, तब मुझे भी साफ था। अब मुश्किल है। मैं भी कनफ्यूज्ड हो गया हूं। अब मैं साफ—साफ कह नहीं सकता कि मैंने की हत्या या नहीं की। क्योंकि जब मैं अपने वकील की दलीलें सुनता हूं तो मुझ को भी भरोसा आता है कि मैंने की नहीं। यह कुछ गलती हो गई। या मैंने कोई सपना देखा। इसलिए अब मेरी बात का कोई मूल्य नहीं है। अब तो आप ही तय कर लें।

यह स्थिति है। आप भी अगर एक झूठ कई वर्ष तक बोलते रहें, तो आपको पीछे पक्का होना मुश्किल हो जाता है कि आप झूठ बोले थे कि यह सच है। झूठ का यह दूसरा स्वभाव है कि उसको आप पुनरुक्त करें, तो वह सच जैसा मालूम होने लगता है। और हर झूठ को और झूठों की जरूरत है।

मैंने काशी में एक दुकान पर एक तख्ती लगी हुई देखी। घी की दुकान थी। उस पर तख्ती लगी है, असली घी की दुकान। नीचे लिखा है, हरियाणा, उत्तर प्रदेश, पंजाब का शुद्ध देशी घी यहां मिलता है। नकली सिद्ध करने वाले को पांच सौ रुपया नकद इनाम। और उसके नीचे लिखा है लाल अक्षरों कि इस तरह के इनाम यहां कई बार बांटे जा चुके हैं।

ऐसी हमारे चित्त की दशा हो जाती है।

पाखंड का अर्थ है, आप कुछ हैं, कुछ दिखाने की कोशिश कर रहे हैं। लेकिन जो आप हैं, वह आपकी सब कोशिश के भीतर से भी झांकता रहेगा। आप उसे बिलकुल छिपा भी नहीं सकते। उसे बिलकुल मिटाया नहीं जा सकता, वह आपके भीतर छिपा है। इसलिए भला आपको न दिखाई पड़े, दूसरों को दिखाई पड़ता है। अक्सर यह होता है कि आपके संबंध में दूसरे लोग जो कहते हैं, वह ज्यादा सही होता है, बजाय उसके, जो आप अपने संबंध में कहते हैं। नब्बे प्रतिशत मौका इस बात का है कि दूसरे जो आप में देख पाते हैं, वह आप नहीं देख पाते। क्योंकि आप अपने धोखे में इस भांति लीन हो गए हैं। लेकिन दूसरा आपको देखता है, तो आपकी जो झीनी पर्त है धोखे की, उसके पीछे से आपका असली हिस्सा भी दिखाई पड़ता है।

पाखंडी व्यक्ति की कई परतें हो जाएंगी। जितना पाखंडी होगा, उतनी परतें हो जाएंगी। और इन सारी परतों का कष्ट है। और हर पर्त को बचाने के लिए नई परतें खडी करनी पड़ेगी।

सत्य की एक सुविधा है, उसे याद रखने की जरूरत नहीं, उसको स्मरण रखने की जरूरत नहीं। झूठ को याद रखना पड़ता है। झूठ के लिए काफी कुशलता चाहिए। सत्य तो सीधा आदमी भी चला लेता है, क्योंकि याद रखने की कोई जरूरत नहीं। सत्य सत्य है। उससे दस साल बाद पूछेंगे, वह कह देगा। लेकिन झूठ आदमी को दस साल तक याद रखना पड़ेगा कि उसने एक झूठ बोला, फिर उसको सम्हालने के लिए कितने झूठ बोले।

तो झूठ के लिए बड़ी स्मृति चाहिए। इसलिए छोटी—मोटी बुद्धि के आदमी से झूठ नहीं चलता। झूठ चलाने के लिए काफी फैलाव चाहिए। इसलिए जितना आदमी शिक्षित हो, तार्किक हो, गणित का जानकार हो, उतना ज्यादा झूठ बोलने में कुशल हो सकता है।

दुनिया में जितनी शिक्षा बढ़ती है, उतना झूठ बढ़ता है इसीलिए, क्योंकि लोगों की स्मृति की कुशलता बढ़ती है। वे याद रख सकते हैं, वे मैनिपुलेट कर सकते हैं, वे नए झूठ गढ़ सकते हैं।

मुल्ला नसरुद्दीन अपने बेटे से कह रहा है, तेरे झूठ को अब हम बरदाश्त ज्यादा नहीं कर सकते। तू गजब के झूठ बोल रहा है! उस लड़के ने कहा, मैं और झूठ! नसरुद्दीन ने सिर्फ उसको दिखाने के लिए, मित्र एक साथ खड़ा था, तो उसको कहा कि अच्छा तू एक झूठ अभी बोलकर बता, यह एक रुपया तुझे इनाम दूंगा। उसके लड़के ने कहा, पांच रुपए कहा था!

वह कह रहा है, एक रुपया तुझे दूंगा, तू झूठ बोलकर बता। वह लड़का कह रहा है, पांच रुपया कहा है आपने! झूठ बोलने की आगे कोई जरूरत नहीं है।

यह जो हमारी चित्त की स्थिति है, इस स्थिति में अगर आप परमात्मा को खोजने निकले, तो खोज असंभव है। अगर परमात्मा भी आपको खोजने निकले, तो भी खोज असंभव है। क्योंकि आपको खोजेगा कहां? आप जहां—जहां दिखाई पड़ते हैं, वहां—वहां नहीं हैं। जहां आप हैं, उस जगह का आपको भी पता नहीं है। और किसी को आपने पता बताया नहीं।

यहूदियों में एक सिद्धात है कि आदमी तो परमात्मा को खोजेगा कैसे? कमजोर, अज्ञानी! यहूदी मानते हैं, परमात्मा ही आदमी को खोजता है। यहूदी फकीर बालशेम से किसी ने पूछा कि यह सिद्धात बड़ा अजीब है। अगर परमात्मा आदमी को खोजता है, तो अभी तक हमें खोज क्यों नहीं पाया? हम खोजते हैं, नहीं खोज पाते, यह तो समझ में आता है। परमात्मा खोजता है, तो हम अभी तक क्यों भटक रहे हैं?

बालशेम ने कहा कि तुम्हें खोजे कहा? तुम जहां भी बताते हो कि तुम हो। वहां पाए नहीं जाते। वहा जब तक वह पहुंचता है, तुम कहीं और! वह तुम्हारा पीछा कर रहा है। लेकिन तुम पारे की तरह हो, तुम छिटक—छिटक जाते हो। तुम्हारा कोई पता—ठिकाना नहीं है, कोई आइडेंटिटी नहीं है। तुम्हारी कोई पहचान नहीं है। तुम्हें कैसे पहचाना जाए?

मैंने सुना है, एक बैंक में बड़े कैशियर की जगह खाली थी। बहुत—से लोगों ने इंटरव्यू दिए। बड़ी पोस्ट थी, बड़ी तनख्वाह थी पोस्ट की। और बड़े दायित्व का काम था, बहुत बड़ी बैंक थी। फिर जब डायरेक्टर्स की बैठक हुई और उन्होंने मैनेजिंग डायरेक्टर को पूछा कि किस आदमी को चुना है? तो जिस आदमी को खड़ा किया, सारे डायरेक्टर परेशान हुए। उसकी दोनों आंखें दो तरफ जा रही थीं, दात बाहर निकले हुए थे, नाक तिरछी थी, चेहरा भयानक था, लंगड़ाकर वह आदमी चलता था।

उन्होंने पूछा, तुम्हें कोई और आदमी नहीं मिला? उसने कहा कि यही बिलकुल ठीक है। क्योंकि कभी भी यह भागे, तो इसको पकड़ने में दिक्कत नहीं होगी। चीफ कैशियर! यह बिलकुल ठीक है। इसकी आइडेंटिटी कहीं भी, दुनिया के किसी कोने में भी जाए, इसे हम पकड़ लेंगे।

आपकी कोई आइडेंटिटी नहीं है। परमात्मा भी पकड़ना चाहे, तो आपको कहां पकड़े!

पाखंड का जो सबसे बड़ा उपद्रव है, वह यह है कि आपकी पहचान खो जाती है, प्रत्यभिज्ञा मुश्किल हो जाती है। और आसुरी व्यक्ति का वह पहला लक्षण है।

घमंड और अभिमान......।

यह थोड़ा सोचकर मुश्किल होगी, क्योंकि हम तो घमंड और अभिमान का एक—सा ही उपयोग करते हैं। घमंड और अभिमान का एक ही अर्थ लिखा है शब्दकोशों में। पर कृष्ण उनका दो उपयोग करते हैं।

घमंड उस अभिमान का नाम है, जो वास्तविक नहीं है। और अभिमान उस घमंड का नाम है, जो वास्तविक है। लेकिन दोनों पाप हैं और दोनों आसुरी हैं। मतलब यह कि एक आदमी, जो सुंदर नहीं है और अपने को सुंदर समझता है और अकड़ा रहता है। सुंदर है नहीं, सुंदर समझता है, अकड़ा रहता है। यह घमंड है। दूसरा आदमी सुंदर है, सुंदर समझता है और अकड़ा रहता है। वह अभिमान है। पर दोनों ही आसुरी हैं।

पहला तो हमें समझ में आ जाता है, क्योंकि वह गलत है ही; लेकिन दूसरा हमें समझ में नहीं आता, वह सही होकर भी गलत है। इससे क्या फर्क पड़ता है कि आप सुंदर हैं या नहीं! असली फर्क इससे पड़ता है कि आप अपने को सुंदर समझते हैं। जो आदमी बुद्धिमान है, वह अगर अकड़े कि मैं बुद्धिमान हूं तो उतना ही पाप हो रहा है, जितना बुद्ध अकड़े और सोचे कि मैं बुद्धिमान हूं। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता, क्योंकि असली बात अकड़ की है।

और एक और खतरा है कि वह जो गलत ढंग से, जो है नहीं बुद्धिमान, अपने को बुद्धिमान समझ रहा है, वह तो शायद किसी दिन चेत भी जाए; लेकिन वह जो बुद्धिमान है और अपने को बुद्धिमान समझ रहा है, उसका चेतना बहुत मुश्किल है। क्योंकि आप उसको गलत भी सिद्ध नहीं कर सकते। उसका खतरा भारी है। और खतरा तो यही है कि मैं अपने को कुछ समझूं और उसमें अकड़ जाऊं।

आसुरी वृत्ति का व्यक्ति सदा अपने को कुछ समझता है, समबडी। वह हो या न हो। रावण का घमंड घमंड नहीं है, अभिमान है। क्योंकि वह आदमी कीमती है, इसमें कोई शक नहीं है। उस जैसा पंडित खोजना मुश्किल है। उसकी अकड़ झूठ नहीं है। उसकी अकड़ में सचाई है। लेकिन इससे क्या फर्क पड़ता है! अकड़ में सचाई है, तो अकड़ और मजबूत हो गई। और अकड़ के कारण ही आदमी परमात्मा से मिलने में असमर्थ हो जाता है।

रावण का संघर्ष हो गया राम से। ये तो प्रतीक हैं, क्योंकि अकड़ का संघर्ष हो ही जाएगा परमात्मा से। जहां भी अकड़ है, वहा आप राम से संघर्ष में पड़ जाएंगे।

जहां अकड़ गई, वहां आप तरल हो जाते हैं। फिर आपकी लहर पिघल जाती है, उस पिघलेपन में आपका सागर से मिलन हो जाता है।

तो यह आप मत सोचना कभी कि मेरी अकड़ सही है या गलत है। अकड़ गलत है। उस अकड़ के दो नाम हैं। अगर वह गलत हो तो घमंड, अगर सही हो तो अभिमान। पर कृष्ण कहते हैं, दोनों ही आसुरी संपदा के लक्षण हैं।

क्रोध और कठोर वाणी......।

संयुक्त हैं, क्योंकि कठोर वाणी क्रोध का ही रूप है। भीतर क्रोध हो, तो आपकी वाणी में एक कठोरता, एक सूखापन प्रवेश हो जाता है। भीतर प्रेम हो, तो आपकी वाणी में एक माधुर्य, एक मिठास फैल जाती है।

वाणी आपसे निकलती है और आपके भीतर की खबरें ले आती है। वाणी आपके भीतर से आती है, तो आपके भीतर की हवाएं और गंध वाणी के साथ बाहर आ जाती हैं।

कठोर वाणी का केवल इतना ही अर्थ है कि भीतर पथरीला हृदय है, भीतर आप कठोर हैं। मधुर वाणी का इतना ही अर्थ है कि जहां से हवाएं आ रही हैं, वहां शीतलता है, वहां माधुर्य है।

क्रोध लक्षण होगा आसुरी व्यक्ति का, वह हमेशा क्रुद्ध है, हर चीज पर क्रुद्ध है। नाराज होना उसका स्वभाव है। उठेगा, बैठेगा, तो वह क्रोध से उठ—बैठ रहा है। जहां भी देखेगा, वह क्रोध से देख रहा है। वह सिर्फ भूल की तलाश में है कि कहीं भूल मिल जाए, कोई बहाना मिल जाए, कोई खूंटी मिल जाए, तो अपने क्रोध को टांग दे। अगर उसे कोई बहाना न मिले, तो वह बहाना निर्मित कर लेगा। अगर उसे कोई भी क्रोध करने को न मिले, तो वह अपने पर भी क्रोध करेगा। लेकिन क्रोध करेगा और उसकी वाणी में उसके क्रोध की लपटें बहती रहेंगी। वह जो भी बोलेगा, वह तीर की तरह हो जाएगा, किसी को चुभेगा और चोट पहुंचाएगा।

क्रोध और कठोर वाणी एवं अज्ञान, ये सब आसुरी संपदा को प्राप्त हुए पुरुष के लक्षण हैं।

अज्ञान का अर्थ ठीक से समझ लेना। अज्ञान का अर्थ यह नहीं है कि वह कम पढ़ा—लिखा होगा। वह खूब पढ़ा—लिखा हो सकता है। अज्ञान का यह मतलब नहीं है कि वह पंडित नहीं होगा। वह पंडित हो सकता है। रावण पंडित है, महापंडित है। जानकारी उसकी बहुत हो सकती है। लेकिन बस, वह जानकारी होगी, ज्ञान न होगा। ज्ञान का अर्थ है, जो स्वयं अनुभूत हुआ हो। जानकारी का अर्थ है, जो दूसरों ने अनुभव की हो और आपने केवल संगृहीत कर ली हो।

ज्ञान अगर उधार हो, तो पांडित्य बन जाता है। ज्ञान अगर अपना, निजी हो, तो प्रज्ञा बनती है।

अज्ञान का यहां अर्थ है कि वह चाहे जानता हो ज्यादा या न जानता हो, लेकिन स्वयं को नहीं जानेगा। सब जानता हो, सारे जगत के शास्त्रों का उसे पता हो, लेकिन स्वयं की उसे कोई पहचान न होगी, आत्म—ज्ञान न होगा।

और जो भी वह जानता है, वह सब उधार होगा। उसने कहीं से सीखा है, वह उसकी स्मृति में पड़ा है। लेकिन उसके माध्यम से उसका जीवन नहीं बदला है। वह उस ज्ञान में जला और निखरा नहीं है। उस ज्ञान ने उसको तोड़ा और नया नहीं किया। वह ज्ञान उसकी मृत्यु भी नहीं बना और उसका जन्म भी नहीं बना। वह ज्ञान धूल की तरह उस पर इकट्ठा हो गया है। उस ज्ञान की पर्त होगी उसके पास, लेकिन वह ज्ञान उसके हृदय तक नहीं पहुंचा है। वह ज्ञान को ढोएगा, लेकिन ज्ञान उसका पंख नहीं बनेगा कि उसको मुक्त कर दे। उसका ज्ञान वजन होगा, उसका ज्ञान निर्भार नहीं है।

अज्ञान का यहां अर्थ है, अपने को न जानना, अपने स्वभाव से अपरिचित होना।

उन दोनों प्रकार की संपदाओं में दैवी संपदा तो मुक्ति के लिए है और आसुरी संपदा बंधन के लिए मानी गई है।

आसुरी संपदा बांधेगी, आपको बंद करेगी। जैसे कोई कारागृह में पड़ा हो। और यह कारागृह ऐसा नहीं कि किसी दूसरे ने आपके लिए निर्मित किया है। कारागृह ऐसा, जो आपने ही अपने लिए बनाया है।

दैवी संपदा मुक्त करेगी; दीवारें गिरेंगी, खुला आकाश प्रकट होगा। पंख आपके पास हैं, लेकिन पंखों पर अगर आपने बंधन बांध रखे हैं, तो उड़ना असंभव है। और अगर बहुत समय से आप उड़े नहीं हैं, तो आपको खयाल भी मिट जाएगा कि आपके पास पंख हैं।

चील बड़े ऊंचे वृक्षों पर अपने अंडे देती है। फिर अंडों से बच्चे आते हैं। वृक्ष बड़े ऊंचे होते हैं। बच्चे अपने नीड़ के किनारे पर बैठकर नीचे की तरफ देखते हैं, और डरते हैं, और कंपते हैं। पंख उनके पास हैं। उन्हें कुछ पता नहीं कि वे उड़ सकते हैं। और इतनी नीचाई है कि अगर गिरे, तो प्राणों का अंत हुआ। उनकी मां, उनके पिता को वे आकाश में उड़ते भी देखते हैं, लेकिन फिर भी भरोसा नहीं आता कि हम उड़ सकते हैं।

तो चील को एक काम करना पड़ता है.। इन बच्चों को आकाश में उड़ाने के लिए कैसे राजी किया जाए! कितना ही समझाओ—बुझाओ, पकड़कर बाहर लाओ, वे भीतर घोंसले में जाते हैं। कितना ही उनके सामने उड़ो, उनको दिखाओ कि उडने का आनंद है, लेकिन उनका साहस नहीं पड़ता। वे ज्यादा से ज्यादा घोंसले के किनारे पर आ जाते हैं और पकड़कर बैठ जाते हैं।

तो आप जानकर हैरान होंगे कि चील को अपना घोंसला तोड़ना पड़ता है। एक—एक दाना जो उसने घोंसले में लगाया था, एक—एक कूड़ा—कर्कट जो बीन—बीनकर लाई थी, उसको एक—एक को गिराना पड़ता है। बच्चे सरकते जाते हैं भीतर, जैसे घोंसला टूटता है। फिर आखिरी टुकड़ा रह जाता है घोंसले का। चील उसको भी छीन लेती है। बच्चे एकदम से खुले आकाश में हो जाते हैं। एक क्षण भी नहीं लगता, उनके पंख फैल जाते हैं और आकाश में वे चक्कर मारने लगते हैं। दिन, दो दिन में वे निष्णात हो जाते हैं। दिन, दो दिन में वे जान जाते हैं कि खुला आकाश हमारा है, पंख हमारे पास हैं।

हमारी हालत करीब—करीब ऐसी ही है। कोई चाहिए, जो आपके घोंसले को गिराए। कोई चाहिए, जो आपको धक्का दे दे। गुरु का वही अर्थ है।'

कृष्ण वही कोशिश अर्जुन के लिए कर रहे हैं। सारी गीता अर्जुन का घर, घोंसला तोड्ने के लिए है। सारी गीता अर्जुन को स्मरण दिलाने के लिए है कि तेरे पास पंख हैं, तू उड़ सकता है। यह सारी कोशिश यह है कि किसी तरह अर्जुन को धक्का लग जाए और वह खुले आकाश में पंख फैला दे।

इन दोनों प्रकार की संपदाओं में दैवी संपदा तो मुक्ति के लिए और आसुरी संपदा बांधने के लिए मानी गई है। इसलिए हे अर्जुन, तू शोक मत कर, क्योंकि तू दैवी संपदा को प्राप्त हुआ है।

अर्जुन को भरोसा दिला रहे हैं कि तू घबडा मत, तू दुख मत कर, तू चिंता मत कर। तू दैवी संपदा को उपलब्ध हुआ है। बस, पंख खोलने की बात है, खुला आकाश तेरा है।

क्यों अर्जुन को वे कह रहे हैं कि तू दैवी संपदा को उपलब्ध हुआ है?

अर्जुन की जिज्ञासा दैवी है। यह भाव भी अर्जुन के मन में आना कि क्यों मारूं लोगों को, क्यों हत्या करूं, क्यों इस बड़े हिंसा के उत्पात में उतरूं! यह खयाल मन में आना कि इससे राज्य मिलेगा, साम्राज्य मिलेगा, बडी पृथ्वी मेरी हो जाएगी, पर उसका सार क्या है! लोभ के प्रति यह विरक्ति, साम्राज्य के प्रति यह उपेक्षा, हिंसा और हत्या के प्रति मन में ग्लानि!

अर्जुन कहता है, मैं यह सब छोड्कर जंगल चला जाऊं, संन्यस्त हो जाऊं, वही बेहतर है। अर्जुन कहता है, ये सब मेरे अपने जन हैं इस तरफ, उस तरफ। इन सबको मारकर, मिटाकर अगर मैंने राज्य भी पा लिया, तो वह खुशी इतनी अकेले की होगी कि खुशी न रह जाएगी, क्योंकि खुशी तो बांटने के लिए होती है। जिनके लिए मैं राज्य पाने की कोशिश कर रहा हूं जो मुझे राज्य पाया हुआ देखकर आनंदित और प्रफुल्लित होंगे, उनकी लाशें पड़ी होंगी। तो जिस सुख को मैं बांट न पाऊंगा, जो सुख मेरे अपने जो प्रियजन हैं उनके साथ साझेदारी में नहीं भोगा जा सकेगा, उसके भोगने का अर्थ ही क्या है?

यह भाव दैवी है। लेकिन इन दैवी भावों के पीछे जो कारण वह दे रहा है, वे अज्ञान से भरे हैं। स्वाभाविक है, क्योंकि पहली बार जब दैवी आकांक्षा जगती है, तो उसकी जड़ें तो हमारे अज्ञान में ही होती हैं। हम अज्ञानी हैं। इसलिए हममें अगर दैवी आकांक्षा भी जगती है, तो उस दैवी आकांक्षा में हमारे अज्ञान का हाथ होता है। उस दैवी आकांक्षा में हमारे अज्ञान की छाया होती है।

लेकिन कृष्ण पूरी कोशिश कर रहे हैं कि वह भरोसे से भर जाए; वह अज्ञान को भी छोड़ दे। वह जिन कारणों को बता रहा है, उनको भी गिरा दे। क्योंकि वे कारण अगर सही हैं, तो अर्जुन कठिनाई में पड़ जाएगा। क्योंकि वह यह कह रहा है कि मेरे प्रियजन हैं, इसलिए इनको मारने से मैं डरता हूं। यह आधी बात तो दैवी है और आधी अज्ञान और आसुरी से भरी है।

दैवी तो इतनी बात है कि हिंसा के प्रति उनके मन में उपेक्षा पैदा हुई है, हिंसा में रस नहीं रहा। लेकिन कारण है, क्योंकि ये मेरे हैं। अगर ये पराए होते, तो अर्जुन उनको, जैसे किसान खेत काट रहा हो, ऐसे काट देता। वह कोई नया नहीं था काटने में। जीवन में कई बार उसने हत्याएं की थीं और लोगों को काटा था। काटना उसे सहज काम था। कभी उसने सोचा भी नहीं था कि आत्मा का क्या होगा, स्वर्ग, मोक्ष—कुछ सवाल न उठे थे। लेकिन वे अपने नहीं थे, ये सब अपने लोग हैं। उस तरफ गुरु खड़े हैं, भीष्म खड़े हैं, सब चचेरे भाई—बंधु हैं। ये मेरे हैं!

यह ममत्व अज्ञान है। न काटू? यह तो बड़ी दैवी भावना है। हिंसा न करूं, यह तो बड़ा शुभ भाव है। लेकिन मेरे हैं, इसलिए न करूं, यह अशुभ से जुड़ा हुआ भाव है। वह अशुभ मिट जाए, फिर भी अर्जुन दिव्यता की तरफ बढ़े, यह कृष्ण की पूरी चेष्टा है।

वह भाव मेरे का पाप है। तो कौन मेरा है, कौन मेरा नहीं है? या तो सब मेरे हैं, या कोई भी मेरा नहीं है! फिर अर्जुन कहता है, इनको मारूं, यह उचित नहीं है, यह बात तो दैवी है। लेकिन मैं इनको मार सकता हूं यह बात अज्ञान से भरी है। यह थोड़ा जटिल है।

मैं किसी को न मारूं, यह भाव तो अच्छा है, लेकिन मैं किसी को मार सकता हूं, आत्मा की हत्या हो सकती है, यह भाव अज्ञान से भरा है। मैं चाहूं तो भी मार नहीं सकता, ज्यादा से ज्यादा आपकी देह को नुकसान पहुंचा सकता हूं। और देह को क्या नुकसान पहुंचाया जा सकता है! देह तो मुरदा है। उसको मारने का कोई उपाय नहीं। वह तो मिट्टी है। उसको काटने से कुछ कटता नहीं। देह के भीतर जो छिपा है, उस चिन्मय को तो काटा नहीं जा सकता। वह तो कोई मिट्टी नहीं है। उस अमृत को तो मारने का कोई उपाय नहीं है।

अर्जुन कहता है कि हिंसा बुरी है। लेकिन क्या हिंसा हो सकती है? यह भाव अज्ञान से भरा है। हिंसा तो हो ही नहीं सकती, हिंसा का कोई उपाय नहीं है। हिंसा का भाव किया जा सकता है, हिंसा नहीं की जा सकती। हिंसा का भाव पापपूर्ण है। हिंसा की जा सकती है, यह भाव अज्ञान से भरा है।

अर्जुन में दिव्यता का जागरण हुआ है, लेकिन वह दिव्यता अभी आसुरी बिस्तर पर ही लेटी है। आख खुली है, करवट बदली है, लेकिन बिस्तर अभी उसने छोडा नहीं है। वह बिस्तर भी छूट जाए,

यह घोंसला भी हट जाए और अर्जुन खुले आकाश में मुक्त होकर उड़ सके.......।

हे अर्जुन, तू शोक मत कर, क्योंकि तू दैवी संपदा को प्राप्त हुआ है। और हे अर्जुन इस लोक में भूतों के स्वभाव दो प्रकार के माने गए हैं, एक तो देवों के जैसा और दूसरा असुरों के जैसा। उनमें देवों का स्वभाव ही विस्तारपूर्वक कहा गया है, इसलिए अब असुरों के स्वभाव को भी विस्तारपूर्वक मेरे से सुन।

दो स्वभाव, एक ही चेतना के। एक आदमी बंधन में पड़ा है, हाथ में जंजीरें हैं, पैर में बेड़ियां हैं। फिर हम इसके बंधन काट देते हैं; हाथ की बेड़ियां छूट जाती हैं, पैर की जंजीरें गिर जाती हैं, अब यह मुक्त खड़ा है। क्या यह आदमी दूसरा है या वही? क्षणभर पहले बेडिया थीं, जंजीरें थीं; अब जंजीरें नहीं, बेड़ियां नहीं। क्षणभर पहले एक कदम भी उठाना इसे संभव न था। अब यह हजार कदम उठाने के लिए मुक्त है। क्या यह आदमी वही है या दूसरा है?

एक अर्थ में यह आदमी वही है, कुछ भी बदला नहीं। क्योंकि बेडियां इस आदमी का स्वभाव न थीं, इसके ऊपर से पड़ी थीं। हाथ से बेड़ियां हट जाने से इसका हाथ तो नहीं बदला। इसकी पैर से जंजीरें टूट जाने से इसका व्यक्तित्व नहीं बदला। यह आदमी तो वही है।

एक अर्थ में आदमी वही है, दूसरे अर्थ में आदमी वही नहीं है। क्योंकि जंजीरों के गिर जाने से अब यह मुक्त है। यह चल सकता है, यह दौड़ सकता है, यह अपनी मरजी का मालिक है। अब इसकी दिशा कोई तय न करेगा। अब इसे कोई रोकने वाला नहीं है। अब एक स्वतंत्रता का जन्म हुआ है।

ये दोनों स्थितियां एक ही आदमी की हैं। ठीक वैसे ही स्वभाव की दो स्थितियां हैं। आसुरी, कृष्ण उसे कह रहे हैं, जो बांधती है; दैवी उसे कह रहे हैं, जो मुक्त करती है। ये दोनों ही एक ही चेतना की अवस्थाएं हैं। और हम पर निर्भर है कि हम किस अवस्था में रहेंगे।

यह बात सदा ही समझने में कठिन रही है कि हम अपने ही हाथ से बंधन में पड़े हैं। यह कठिन इसलिए रही है कि हम में से कोई भी चाहता नहीं कि बंधन में रहे। हम सब स्वतंत्र होना चाहते हैं। तो यह बात समझना मन को मुश्किल जाती है कि हमने बंधन अपने निर्मित खुद ही किए हैं। लेकिन थोड़ा समझना जरूरी है।

हम चाहते तो स्वतंत्र होना हैं, लेकिन हमने कभी गहराई से खोजा नहीं कि स्वतंत्रता का क्या अर्थ होता है। एक तरफ हम चाहते हैं, स्वतंत्र हों; और एक तरफ भीतर से हम चाहते हैं कि परतंत्र बनें। क्योंकि परतंत्रता के कुछ सुख हैं; उन सुखों को हम छोड़ नहीं पाते हैं। परतंत्रता की कोई सुरक्षा है।

कारागृह में जितना आदमी सुरक्षित है, कहीं भी सुरक्षित नहीं है। बाहर दंगा भी हो रहा है, बलवा भी हो रहा है, हिंदू—मुसलमान लड़ रहे हैं, गोली चल रही है, पुलिस है, सरकार है—सब उपद्रव बाहर चल रहा है। कारागृह में कोई उपद्रव नहीं है। वहां जो आदमी हथकड़ी में बैठा है, वहा न कोई दुर्घटना होती है, न मोटर एक्सिडेंट होता है, न हवाई जहाज गिरता है, न ट्रेन उलटती है, कुछ नहीं होता। वहां वह बिलकुल सुरक्षित है। कारागृह की एक सुरक्षा है, जो बाहर संभव नहीं है।

सुरक्षा हम सब चाहते हैं। सुरक्षा के कारण हम कारागृह बनाते हैं। स्वतंत्रता का खतरा है, क्योंकि खुला जगत जोखम से भरा है। स्वतंत्रता हम चाहते हैं, लेकिन खतरा उठाने की हमारी हिम्मत नहीं है।

एक बहुत बड़े पश्चिम के विचारक इरिक फोम ने एक किताब लिखी है, फिअर आफ फ्रीडम। बड़ी कीमती किताब है।

एक भय है स्वतंत्रता का। हम सबके भीतर है; हम सब डरते हैं। हम कहते हैं कि स्वतंत्रता हम चाहते हैं, लेकिन हम डरते हैं, हम कंपते हैं। हम भी अपने घोंसले को वैसे ही पकड़ते हैं, जैसे चील का बच्चा पकड़ता है। उसको लगता है कि मर जाएंगे, इतना लंबा खड्ड है, इतना बड़ा आकाश, हम इतने छोटे हैं; अपने पर भरोसा नहीं आता।

इसलिए हम सब तरह की परतंत्रताएं खोजते हैं। परिवार की, देश की, जाति की, समाज की परतंत्रताएं खोजते हैं। हम किसी पर निर्भर होना चाहते हैं। कोई हमें सहारा दे दे। हम किसी के कंधे पर हाथ रख लें। कोई हमारे कंधे पर हाथ रख दे। हो सकता है, हम दोनों ही कमजोर हों और एक—दूसरे का सहारा खोज रहे हों। लेकिन दोनों को भरोसा आ जाता है कि कोई साथ है; हम अकेले नहीं हैं।

स्वतंत्रता को हम अपने ही हाथ से खोते हैं, परतंत्रता को हम अपने ही हाथ से खोजते हैं।

मैंने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन और उसकी पत्नी में एक दिन विवाद चल रहा था। और पत्नी बहुत नाराज हो गई, तो उसने कहा कि तुमसे कहा किसने था कि तुम मुझसे विवाह करो! मैं तुम्हारे पीछे नहीं दौड़ रही थी। नसरुद्दीन ने कहा, वह तो जाहिर है, क्योंकि चूहे को पकड़ने वाला पिंजड़ा कभी चूहे के पीछे नहीं दौड़ता। चूहा खुद ही उसमें आता है, वह तो साफ है। पिंजड़े को कभी किसी ने चूहे के पीछे भागते तो देखा नहीं!

जिंदगी में जितने पिंजड़े हैं आपके, वे कोई आपके पीछे नहीं भागे। आप खुद ही उनकी तलाश किए हैं। और कोई कारण है, जिसकी वजह से पिंजड़ा अच्छा लगता है। कुछ सुरक्षा है उसमें। भय वहां कम है, सहारा वहां ज्यादा है, खतरा वहां कम है, जोखम वहां बिलकुल नहीं है। एक बंधा हुआ जीवन है। एक परिधि है, उस परिधि के भीतर प्रकाश है, परिधि के बाहर अंधकार है। उस अंधकार में जाने में भय लगता है। फिर अपने ही पैरों पर खड़ा होना होगा। स्वतंत्रता का अर्थ है, अपने ही पैरों पर खड़ा होना। और स्वतंत्रता का अर्थ है, अपने निर्णय खुद ही लेना।

दुनिया में जो इतने उपद्रव चलते हैं, उन उपद्रवों के पीछे भी कारण यही है कि बहुत—से लोग गुलामी खोजते हैं। सौ में निन्यानबे लोग ऐसे होते हैं कि बिना नेता के नहीं रह सकते। कोई नेता चाहिए। इस मुल्क में, सारी जमीन पर सब जगह नेता की बड़ी जरूरत है! नेता की जरूरत क्या है?

नेता की जरूरत यह है कि कुछ लोग खुद अपने पैरों से नहीं चल सकते। कोई आगे चल रहा हो, तो फिर उन्हें फिक्र नहीं है। फिर वह कहीं गड्ढे में ले जाए, और हमेशा नेता गड्ढों में ले जाते रहे हैं। लेकिन पीछे चलने वाले को यह भरोसा रहता है कि आगे चलने वाला जानता है। वह जहां भी जा रहा है, ठीक है। और कम से कम इतना तो पक्का है कि जिम्मेवारी हमारी नहीं है। हम सिर्फ पीछे चल रहे हैं।

दूसरे महायुद्ध के बाद जर्मनी के जो नेता बच गए, हिटलर के साथी, उन पर मुकदमे चले। तो जिस आदमी ने लाखों लोगों को जलाया था, आकमंड, जिसने वहां भट्टियां बनाईं, जिसमें हजारों लोग जलाए गए। कोई तीन करोड़ लोगों की हत्या का जिम्मा उसके ऊपर था, आकमंड के ऊपर।

पर आकमंड बहुत भला आदमी था। अपनी पत्नी को छोड़कर कभी किसी दूसरी स्त्री की तरफ देखा नहीं। रविवार को नियमित चर्च जाता था, बाइबिल का अध्ययन करता था। शराब की आदत नहीं, सिगरेट पीता नहीं था। रोज ब्रह्ममुहूर्त में उठता था। कोई बुराई नहीं थी। मांसाहारी नहीं था। हिटलर में भी यही खूबियां थीं, मांसाहार नहीं करता था, शराब नहीं पीता था, सिगरेट नहीं पीता था। भले आदमी के सब लक्षण उसमें थे।

आकमंड पर जब मुकदमा चला, तो लोग चकित थे कि इस आदमी ने कैसे तीन करोड़ लोगों की हत्या का इंतजाम किया! जब उससे पूछा गया, तो उसने कहा कि मैं सिर्फ अनुयायी हूं और आज्ञा का पालन करना मेरा कर्तव्य है। जिम्मेवारी मुझ पर है ही नहीं। ऊपर से आज्ञा दी गई, मैंने पूरी की। मैं सिर्फ एक अनुयायी हूं एक सिपाही हूं।

दुनिया में लोगों की कमजोरी है कि उनको नेता चाहिए। फिर नेता कहां ले जाता है, इसका भी कोई सवाल नहीं है। नेता को भी कुछ पता नहीं कि वह कहा जा रहा है। अंधे अंधों का नेतृत्व करते रहते हैं। बस, नेता और अनुयायी में इतना ही फर्क है कि अनुयायी को कोई चाहिए जो उसके आगे चले, और नेता को कोई चाहिए जो उसके पीछे चले।

नेता भी निर्भर है पीछे चलने वाले पर। अगर पीछे कोई न चले, तो नेता को लगता है कि भटक गया। जब तक लोग पीछे चलते रहते हैं, उसे लगता है, सब ठीक चल रहा है। अगर मैं ठीक न होता, तो इतने लोग पीछे कैसे होते? जैसे ही पीछे से लोग हटते हैं, नेता का विश्वास चला जाता है। जैसे ही अनुयायी हट जाते हैं, नेता की आत्म— आस्था खो जाती है। उसे लगता है, बस, कहीं भूल हो रही है। अन्यथा लोग मेरे पीछे चलते। इसलिए जो बहुत बुद्धिमान नेता हैं, उनकी तरकीब अलग है।

मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन एक दिन अपने गधे पर भागा जा रहा है। कुछ मित्रों ने उसे रोका और पूछा कि कहां जा रहे हो इतनी तेजी से? उसने कहा, मुझसे मत पूछो, गधे से पूछो। क्योंकि मैं इसको चलाने की कोशिश करता हूं तो यह अड़चन डालता है, और चार आदमियों के सामने बाजार में भद्द होती है। मैं इसको कहता हूं बाएं चलो। तो यह चलेगा नहीं; दाएं जाएगा। तो लोग समझते हैं, इसका गधा भी इसकी नहीं मानता! तो मैंने एक तरकीब निकाली, गधा जहां जाता है, मैं उसके साथ ही जाता हूं। इससे इज्जत भी बनी रहती है और गधे को भी यह खयाल नहीं आता कि मालिक का विरोध कर सकता है।

सभी नेताओं की कुशलता यही है। वे हमेशा देखते रहते हैं, अनुयायी कहा को जा रहा है, अनुयायी कहां जाना चाहता है, इसके पहले नेता मुड़ जाता है। तो ही नेता अनुयायी को बचा सकता है, नहीं तो अनुयायी भटक जाएगा, अलग हो जाएगा।

सब नेता अपने अनुयायियों के अनुयायी होते हैं, एक विसियस सर्किल है। तो नेता तापमान देखता रहता है कि अनुयायी क्या चाहते हैं। अनुयायी समाजवाद चाहते हैं, तो समाजवाद। अनुयायी चाहते हैं गरीबी मिटे, तो गरीबी मिटे। अनुयायी जो चाहते हैं, वह कहता है। और अनुयायी सुनते हैं अपनी ही आवाज को उसके मुंह से, सोचते हैं कि ठीक है। अनुयायी पीछे चलते हैं।

कुछ लोग हैं, जब तक उनके आगे कोई न चले, तब तक वे चल नहीं सकते। कुछ लोग हैं, जब तक कोई उनके पीछे न चले, तब तक वे नहीं चल सकते। दोनों निर्भर हैं।

स्वतंत्र व्यक्ति वह है, जो न आगे देखता है और न पीछे देखता है, जो अपने पैर से चलता है। पर बड़ी कठिन है बात, क्योंकि तब किसी दूसरे पर भरोसा नहीं खोजा जा सकता, किसी दूसरे पर जिम्मेवारी नहीं डाली जा सकती। सब जिम्मेवारी अपनी है।

इतना जिसका साहस हो, वही केवल स्वतंत्र हो पाता है। नै नेता स्वतंत्र होते हैं, न अनुयायी स्वतंत्र होते हैं। स्वतंत्रता इस जगत में सबसे बड़ा जोखम है।

कृष्ण कहते हैं, जो आसुरी संपदा है वह बंधन के लिए और जो दैवी संपदा है वह मुक्ति के लिए मानी गई है। और हे अर्जुन, तू शोक मत कर, क्योंकि तू दैवी संपदा को प्राप्त हुआ है।

गीता दर्शन–(भाग–7)
अध्याय—16 (प्रवचन—चौथा) — आसुरी व्यक्ति की रूग्णताएं

सूत्र—
प्रवृत्तिं च निवृत्ति च जना न विदरासराः ।
न शौचं नापि चाचारो न सत्यं तेषु विद्यते।।7।।

असत्यमप्रतिष्ठं ते जगदाहुरनीश्वरम्।
अपरस्थरसंभूतं किमन्यत्काकैक्कुम्।।8।।
एंता द्दष्मिवष्टथ्य नष्टमानोऽल्पबुद्धयः।
प्रभवन्ज्युक्कर्माणः क्षयाय जगतीऽहिताः।।9।।
और हे अर्जुन, आसुरी स्वभाव वाले मनुष्य कर्तव्य—कार्य में प्रवृत्त होने को और अकर्तव्य—कार्य से निवृत्त होने को भी नहीं जानते हैं। इसलिए उनमें न तो बाहर—भीतर की शुद्धि है, न श्रेष्ठ आचरण है और न सत्य भाषण ही है।

तथा वे आसुरी प्रकृति वाले मनुष्य कहते हैं कि जगत आश्रयरहित है और सर्वथा झूठा है एवं बिना ईश्वर के अपने आप स्त्री—पुरुष के संयोग से उत्पन्न हुआ है। इसलिए जगत केवल भोगों को भोगने के लिए ही है। इसके सिवाय और क्या है?

हम प्रकार इस मिथ्या—ज्ञान को अवलंबन करके नष्ट हो गया है स्वभाव जिनका तथा मंद है बुद्धि जिनकी, ऐसे वे सब का अहित करने वाले क्रूरकर्मी मनुष्य केवल जगत का नाश करने के लिए ही उत्पन्न होते हैं।

पहले कुछ प्रश्न।
पहला प्रश्न :
आश्चर्य की बात है कि पशुओं में पाखंड या मिथ्याचरण नाममात्र भी नहीं है और आदिवासियों में भी अत्यल्प है, जब कि तथाकथित शिक्षित व सभ्य समाज में सर्वाधिक है। तो क्या बर्बरता से सभ्यता की ओर मनुष्य की लंबी व कठिन यात्रा व्यर्थ ही गई? और तब क्या आदिवासी व्यवस्था वरेण्य नहीं है?
पशुओ में मिथ्याचरण नहीं है, पाखंड नहीं है, इसलिए नहीं कि पशुओं की कोई उपलब्धि है, बल्कि इसलिए कि पशु असमर्थ हैं, पाखंडी हो नहीं सकते, होने का उपाय नहीं है, बुरे होने की कोई सुविधा नहीं है; पतित होने की कोई संभावना नहीं है। लेकिन चूंकि पशु पतित नहीं हो सकते, पशु दिव्यता का आरोहण भी नहीं कर सकते। जो गिर नहीं सकता, वह ऊपर भी उठ नहीं सकता। और जिसके जीवन में पाप की संभावना नहीं है, उसके जीवन में परमात्मा की संभावना भी नहीं है।

पशु मूर्च्छित है; प्रकृति उससे जैसा कराती है, वह करता है। यंत्रवत उसकी यात्रा है। उसकी कोई स्वेच्छा नहीं है। इसलिए बुरा भी पशु कर नहीं सकता, भला भी नहीं कर सकता। प्रकृति जो कराती है, वही करता है। पशु की अपनी कोई निजता नहीं है। इसलिए पशु न तो असाधु हो सकता है न साधु, न महापापी हो सकता है न महा संत। पशु पशु ही रहेगा।

पशु पूरा का पूरा पैदा होता है। उसकी कोई स्वतंत्रता नहीं है कि अपने को बदल ले, रूपांतरित कर ले। स्वभावतः, पशु पाखंडी नहीं है, लेकिन पशु को यह भी स्मरण नहीं हो सकता कि वह पाखंडी नहीं है। और पाखंड को छोड़ने से जो जीवन में गरिमा आती है, वह भी पशु को नहीं हो सकती।

मनुष्य की गरिमा यही है कि वह पाप कर सकता है, चाहे तो पाप करना छोड़ सकता है। छोड़ने की खूबी है, क्योंकि करने की सुविधा है। जहां आप कर ही न सकते हों, वहा छोड़ने का कोई अर्थ नहीं है। नपुंसक ब्रह्मचारी हो, इसकी कोई सार्थकता नहीं है। ब्रह्मचर्य की सार्थकता तभी है, जब काम में उतरने की क्षमता हो। तो मनुष्य के लिए संभावना है कि गिर सके, और मनुष्य के लिए संभावना है कि उठ सके; दोनों द्वार खुले हैं। मनुष्य परिपूर्ण स्वतंत्रता है। इसीलिए जिम्मेवारी आपकी है। अगर आप गिरते हैं, तो आप यह नहीं कह सकते कि प्रकृति ने मुझे गिराया। आप चाहते तो न गिरते। आप चाहते तो रुक जाते। आप चाहते तो जिस शक्ति से आपने पतन की यात्रा पूरी की, वही आपके स्वर्ग का मार्ग भी बन सकती थी। इसलिए मनुष्य स्वतंत्र है, और साथ ही जिम्मेवार है। पश्चिम का बहुत बड़ा आधुनिक विचारक सार्त्र मनुष्य के लिए दो शब्दों का उपयोग करता है, एक है फ्रीडम, और दूसरा है रिस्पासिबिलिटी। एक है परिपूर्ण स्वतंत्रता, और दूसरा है परिपूर्ण गहन दायित्व। जो स्वतंत्र है, उसका दायित्व भी है। जो स्वतंत्र नहीं, उसका कोई दायित्व भी नहीं है।

हम किसी पशु को अच्छा नहीं कह सकते, बुरा नहीं कह सकते। जो पशु की दशा है, वही छोटे बच्चों की भी दशा है। जो पशु की दशा है, उससे ही मिलती—जुलती दशा आदिवासियों की है। वे कितने ही भले हों, उनके भलेपन में बहुत

गौरव नहीं है। वे चोर न हों, तो भी हम उन्हें अचोर नहीं कह सकते। क्योंकि अचोर वे तभी हो सकते हैं, जब चोरी करने की उनको क्षमता हो, सुविधा हो, चोरी

करने का खयाल हो!

जीवन का जो विकास है, वह आंतरिक संयम से संभव होता है। आप एक सपाट जमीन पर चलते हैं। तो कोई भीड़ आपको देखने इकट्ठी नहीं होती, न ही लोग ढोल बजाकर आपका स्वागत करते हैं, न तालियां पीटते हैं। लेकिन आप दो छतों के बीच में एक रस्सी बांधें, फिर उस रस्सी पर चलें, तो सारा गांव इकट्ठा हो जाएगा। चलने में कोई भी फर्क नहीं है। जैसा आप जमीन पर चलते थे, उन्हीं पैरों से, उसी ढंग से रस्सी पर भी चलेंगे। लेकिन यह भीड़ देखने इकट्ठी किसलिए हो गई? क्योंकि अब गिरने की संभावना है। आप गिर सकते हैं। चलना कठिन है, गिरना आसान है। और गिरने की जो यह संभावना है कि हड्डी—पसली टूट जाए, कि जीवन भी समाप्त हो जाए, इस खतरे को लेकर आप जब रस्सी पर चलते हैं, तो इस चलने में गौरव और गरिमा आ जाती है।

मनुष्य चौबीस घंटे रस्सी पर है, पशु सदा समतल भूमि पर है। सभ्यता की खूबी यही है कि वह आपको मौका देती है, गिरने का भी, उठने का भी। तो आदिवासी भले हैं, लेकिन कोई बुद्ध तो आदिवासी पैदा नहीं कर पाते। कोई रावण भी पैदा नहीं होता, कोई राम भी पैदा नहीं होता। दोनों का उपाय नहीं है।

सभ्यता सुविधा है, नरक और स्वर्ग दोनों तरफ जाने की। जितना सभ्य समाज हो, उतनी सुविधा बढ़ती जाती है। यह दूसरी बात है कि आप सुविधा का उपयोग नरक जाने के लिए ही करते हैं। यह आपका निर्णय है।

पर शायद स्वर्ग जाने के लिए नरक जाना भी जरूरी है। नरक की पीड़ा का अनुभव न हो, तो स्वर्ग के आनंद का भी स्मरण नहीं आता। नरक की अंधेरी पृष्ठभूमि में ही स्वर्ग की शुभ रेखाएं खिंचती हैं, उभरती हैं और दिखाई पड़ती हैं। वह जो पीड़ा को भोगता है, उसे आनंद की खोज भी पैदा होती है।

इसलिए जिनको हम साधारणत: भले आदमी कहते हैं, उनके जीवन में कुछ नमक नहीं होता; उनके जीवन में कुछ स्वाद नहीं होता। स्वाद तो उस आदमी के जीवन में होता है, जिसने बुरा होना भी जाना है, और फिर भला होना भी जाना है। उसके जीवन में एक संगीत होता है, एक गहराई होती है, एक ऊंचाई होती है।

साधारणत: कोई आदमी भला है, न उसने कभी कुछ बुरा किया है, न कभी कोई पाप किया है, न कभी अपराध में उतरा है, न कभी भटका है रास्ते से, उस आदमी के जीवन में बहुत संगीत नहीं होता। उस आदमी के जीवन में इकहरा स्वर होता है। उसमें न रस होता है, न रहस्य होता है, न गहराई होती है, न ऊंचाई होती है।

उपन्यासकार कहते हैं कि साधारण अच्छे आदमी के जीवन पर कोई कहानी नहीं लिखी जा सकती। अच्छे आदमी की कोई कहानी होती ही नहीं। कहानी के लिए बुरा आदमी चाहिए। और कहानी गहरी हो जाती है, अगर बुरा आदमी बुराई को पार करके अच्छाई में उतर जाए। तब कहानी बड़ी रहस्यपूर्ण हो जाती है; और कहानी में एक स्वाद आ जाता है, एक चुनौती, एक उड़ा ऊंचाई, एक पुकार दूर की।

पापी के जीवन में कथा होती है। और अगर पापी संत हो जाए, तो उससे ज्यादा जटिल और रहस्यपूर्ण कथा फिर किसी के जीवन में नहीं होती

थामसमन ने एक अदभुत किताब लिखी है। किताब का नाम है, दि होली सिनर, पवित्र पापी।

तो जहां पवित्रता और पाप दोनों घट जाते हैं, उस तनाव में, रस्सी जैसे दो खाइयों के बीच खिंच जाती है, और उस रस्सी पर जो संतुलन को साध पाता है, वह गौरव के योग्य है। सभ्यता सुविधा देती है गिरने की, सभ्यता सुविधा देती है उठने की।

नहीं, आदिवासीपन वरेण्य नहीं है, वरेण्य तो सभ्यता ही है। लेकिन सभ्यता विकल्प देती है। सभ्यता वरेण्य है, और फिर सभ्यता के विकल्पों में स्वर्ग की तरफ जाने की यात्रा वरेण्य है। अगर आप साधारण भले आदमी हैं, तो आप यह मत समझना कि जीवन आपकी कोई उपलब्धि बन रहा है। आप कुनकुने— कुनकुने जी रहे हैं। जीवन में कोई अति नहीं है। और अति न होगी, तो जीवन में कोई आनंद की पुलक, कोई इक्सटैसी, कोई समाधि की दशा भी पैदा नहीं होगी।

नीत्से ने एक बहुत महत्वपूर्ण वचन लिखा है। उसने लिखा है, जिस वृक्ष को आकाश की ऊंचाई छूनी हो, उसे अपनी जड़ें पाताल की गहराई तक भेजनी पड़ती हैं। अगर वृक्ष डरता हो कि अंधेरी जमीन में कहां जड़ों को भेजूं तो फिर उसकी शाखाएं भी आकाश में न जा सकेंगी। जितनी ऊंचाई वृक्ष की ऊपर होती है, उतनी नीचाई वृक्ष की नीचे होती है; समान होता है। जड़ें उतनी ही गहरी जानी जरूरी हैं, जितना वृक्ष को ऊपर उठना हो। जो वृक्ष चार—चार सौ फीट ऊपर उठते हैं आकाश को छूने की आकांक्षा से, वे चार सौ फीट नीचे जमीन में अपनी जड़ों को भी भेजते हैं।

यही नियम मनुष्य का भी है। जितने दूर तक गिरने का रास्ता है, उतने ही दूर तक उठने का उपाय है। गिरने के रास्ता का यह अर्थ नहीं है कि आप गिरे ही। पर वह संभावना रहनी चाहिए। गिर सकते हैं। गिर सकते हैं, यह संभावना आपको संतुलन देगी। आप प्रतिपल अपने को सम्हालेंगे। उस सम्हालने में ही आपकी आत्मा का जागरण है। गिर ही न सकते हों, तो फिर सो जाएंगे, फिर न कोई चुनौती है, न कोई जागरण है।

दूसरा प्रश्न :
रात आपने बड़ी निराशाजनक बात कही कि संसार शायद सदा के लिए अज्ञान, दुख व संताप में जीने के लिए अभिशप्त है। तो क्या धर्म विरले व्यक्तियों के लिए संसार छोड्कर परमात्मा या शून्य में विलीन होने के लिए निमंत्रण मात्र है?
निराशाजनक मालूम हो सकती है, निराशाजनक है नहीं। अगर कोई कहे कि अस्पताल सदा ही बीमारों से भरा रहेगा, तो इसमें निराशाजनक बात क्या है? अस्पताल है ही इसलिए। निराशाजनक तो बात तब होगी, जब अस्पताल में हम स्वस्थ आदमियों को भरने लगें। और जैसे ही कोई व्यक्ति स्वस्थ हो जाएगा, अस्पताल से मुक्त होना पड़ेगा। अस्पताल का प्रयोजन यही है कि बीमार वहां हो। इसमें निराशा की कौन—सी बात है? इसमें अस्पताल की निंदा नहीं है। अस्पताल चिकित्सा की जगह है। वहा बीमार के लिए स्थान है, वहां स्वस्थ का कोई प्रयोजन नहीं है। और जैसे ही कोई स्वस्थ हुआ कि अस्पताल से बाहर हो जाएगा।

संसार को भारत अस्पताल से भिन्न नहीं मानता, वह अस्वस्थ चित्त की जगह है। वहां आत्मा हमारी बीमार है, इसलिए हम हैं। जैसे ही आत्मा स्वस्थ होगी, हमें संसार से बाहर हो जाना पड़ेगा। इसलिए यह कोई अभिशाप नहीं है कि संसार सदा ही विक्षिप्त रहेगा। जब तक विक्षिप्त आत्माएं हैं, तब तक संसार रहेगा, यह बात पक्की है। जब तक बीमार हैं, तब तक अस्पताल रहेगा। बीमार नहीं होंगे, अस्पताल खो जाएगा।

यह संसार के लिए कोई अभिशाप नहीं है, यह संसार का स्वभाव है; यह संसार की नियति है। हम गलत हैं, इसलिए हम वहां हैं। वह एक बड़ा शिक्षण का स्थल है, एक बड़ा विश्वविद्यालय है। वहां जैसे—जैसे हम ठीक होंगे, वैसे—वैसे हम बाहर फेंक दिए जाएंगे। जैसे—जैसे संतत्व उभरेगा, आप संसार में होकर भी संसार में नहीं होंगे। फिर जैसे—जैसे संतत्व पूर्णता को पहुंचेगा, आप पाएंगे कि अब संसार में होना आपका स्वप्नवत रह गया। अगर इस पूर्णता को उपलब्ध करके आप मर गए, मरेंगे, शरीर छूटेगा, तो फिर दुबारा लौटने का उपाय न रह जाएगा।

इसलिए बुद्ध पुरुष बुद्धत्व के बाद वापस नहीं लौट सकता। एक जन्म, जब वह बुद्धत्व को प्राप्त करता है, तब टिकेगा, लेकिन नए शरीर को ग्रहण करने का उपाय नहीं है। नए शरीर को ग्रहण करने का अर्थ होता है, संसार में वापस लौटने का उपाय। वह वाहन है, जिससे हम संसार में वापस आते हैं। उसका कोई प्रयोजन न रहा, क्योंकि शरीर से जो सीखा जा सकता था, सीख लिया गया। और संसार में जो जाना जा सकता था, वह जान लिया गया, और संसार में कुछ पाने को न बचा।

इसको ऐसा समझें कि विश्वविद्यालय अशिक्षित लोगों के लिए है। यह कोई अभिशाप नहीं है। क्योंकि जैसे ही कोई शिक्षित होगा, विश्वविद्यालय के बाहर हो जाएगा। अशिक्षित ही विश्वविद्यालय में होगा। जैसे ही शिक्षा पूरी हुई कि

विश्वविद्यालय का अर्थ खो जाता है। और अगर किसी विद्यार्थी को बार—बार विश्वविद्यालय में लौटना पड़ता है, तो उसका अर्थ ही यह है कि वह उत्तीर्ण नहीं हो पा रहा है।

निराशाजनक बात नहीं, संसार का तथ्य यही है।

दूसरी बात, तो क्या धर्म संसार छोड्कर परमात्मा या शून्य में विलीन होने के लिए कुछ विरले व्यक्तियों के लिए निमंत्रण मात्र है? नहीं, सभी के लिए निमंत्रण है, विरले उसको स्वीकार करते हैं, यह दूसरी बात है। निमंत्रण सार्वजनिक है। धर्म सभी के लिए है। स्वस्थ होने की संभावना सभी के लिए है। लेकिन जो स्वस्थ होने की प्रक्रिया से गुजरेंगे, जो साधना का पथ लेंगे, वे विरले मुक्त हो पाएंगे।

तीसरी बात, धर्म कोई पलायन नहीं है और न संसार को छोड्कर शून्य में खो जाना है। धर्म की दृष्टि में तो संसार शून्य है, स्वप्नवत है, पानी का बबूला है। इस शून्यवत को छोड्कर सत्य में प्रवेश कर जाने का निमंत्रण है।

लेकिन अगर हम बीमार आदमी से कहें कि जब तक तू सारी बीमारियां न छोड़ देगा, तब तक अस्पताल से बाहर न जाने देंगे। तो वह कहेगा आप मुझे शून्य होने के लिए मजबूर कर रहे हैं! सभी बीमारियां छोडनी पडेंगी? तो फिर मेरे पास बचेगा क्या? तो मैं शून्य हो जाऊंगा?

बीमार के पास बीमारियों के सिवाय और कोई संपदा नहीं है; उसने स्वास्थ्य कभी जाना नहीं है। निश्चित ही, बीमारियां छूटें, तो स्वास्थ्य का जन्म होगा।

धर्म की भाषा लगती है शून्यवादी है। क्योंकि धर्म कहता है, यह छोड़ो, यह छोड़ो, यह छोड़ो। क्योंकि हम बीमारियां पकड़े हुए हैं, इसलिए छोड़ने पर इतना जोर है, त्याग की इतनी उपादेयता है। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि हम शून्य में खो जाएंगे। बीमारियां शून्य में खो जाएंगी; हम तो पूर्ण को उपलब्ध हो जाएंगे। और जिस दिन आप सब छोड़ देते हैं वह जो गलत था, उस दिन जो सही है, उसका आपके भीतर उदय होता है। उस दिन दीया जलता है।

उस दिन आप यह न कहेंगे कि अंधेरा छोड़ दिया, अब शून्य हो गए। अंधेरा छोड़ा, प्रकाश जला। वह जो प्रकाश का जलना है, वह उपलब्धि है।

लेकिन जिसने अंधेरा ही जाना हो, वह शायद यही समझेगा कि सब छूट गया, सब खो गया, सब नष्ट हो गया, कुछ भी न बचा। हाथ में लकड़ी थी, अंधेरे में टटोलते थे, वह भी छूट गई, अंधेरा भी छूट गया। टकराते थे—उस टकराने को लोग जिंदगी समझते हैं—जगह—जगह ठोकर खाते थे। अब कोई ठोकर नहीं लगती; जगह—जगह टकराते नहीं। हाथ की लकड़ी छूटी, अंधेरा छूटा, सब छूट गया।

प्रकाश की जो उपलब्धि हुई है, वह धीरे से समझ में आएगी, कि जो छूटा, वह छूटने योग्य था, छोड़ने योग्य था, छोड़ ही देना था कभी का उसे। इतने दिन खींचा यही आश्चर्य है।

लेकिन प्राथमिक रूप से लगेगा कि धर्म शून्य में ले जाता है। जो आपके पास है, उसे छीनता है, इसलिए लगता है कि शून्य में ले जाता है। और जिसका आपको पता नहीं है, उस शून्यता से उस पूर्ण का उदय होता है।

धर्म आपको खाली करता है, ताकि आप परमात्मा से भर सकें। आपको मिटाता है, ताकि आपके भीतर जो नहीं मिटने वाला तत्व है, केवल वही शेष रह जाए। आपको जलाता है, ताकि कचरा जल जाए, केवल स्वर्ण बचे। आपकी मृत्यु में ही आपके परमात्म—स्वरूप का जन्म है।

और ध्यान रहे, यह निमंत्रण विरले लोगों के लिए नहीं है! निमंत्रण सबके लिए है, लेकिन विरले इसे स्वीकार करते हैं। क्योंकि निमंत्रण बड़ा कठिन है। यात्रा दुरूह है, बड़ी लंबी है। उतनी

देर तक सातत्य को बनाए रखना, धैर्य को रखना, बहुत थोड़े लोगों की क्षमता है।

मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं कि कितने दिन ध्यान करें तो आत्मा उपलब्ध हो जाएगी?

कितने दिन! और ऐसा लगता है उनकी बात से कि काफी कृपा कर रहे हैं! कितने दिन? और दो —चार दिन कोई ध्यान कर लेता है, तो वह मुझे लौटकर कहता है कि अभी तक परमात्मा के दर्शन नहीं हुए!

विरले स्वीकार कर पाते हैं, क्योंकि धैर्य की कमी है। और सातत्य थोड़े दिन भी बनाए रखना मुश्किल है। आज करते हैं, कल छूट जाता है। दो—चार दिन करते हैं, हजार बहाने मन खोज लेता है न करने के। और दो—चार दिन में मन कहने लगता है, इतना समय नष्ट कर रहे हो! इतने में तो न मालूम कितना कमाया जा सकता था। न मालूम क्या—क्या कर लेते। यह प्रार्थना, यह पूजा, यह ध्यान, यह समय का अपव्यय मालूम होता है।

हमारी दशा उन छोटे बच्चों जैसी है, जो आम की गुठली को जमीन में गड़ा देते हैं। फिर घडीभर बाद जाकर उघाड़कर देखते हैं, पौधा आया या नहीं? फिर घडीभर बाद जाकर खोदकर देखते हैं। अगर हर घड़ी गुठली को खोदकर देखा गया, तो पौधा कभी भी न आएगा। क्योंकि गुठली को मौका ही नहीं मिल रहा है कि वह जमीन के साथ एक हो जाए, टूट जाए, मिट जाए, खो जाए। गुठली मिटे, तो पौधे का जन्म हो।

और जो उसे हर घड़ी खोदकर देख रहा है, वह मौका ही नहीं दे रहा है। गुठली गुठली ही बनी रहेगी। और तब उसका तर्क कहेगा, फिजूल है यह बात। महीनों से देख रहा हूं गुठली गड़ा रहा हूं उखाड़ रहा हूं? कुछ पौधा—वौधा आता नहीं। झूठी हैं ये बातें। ये कृष्ण और बुद्ध और क्राइस्ट जो कहते हैं, सब कपोल—कल्पित है। यह गुठली पत्थर है, इसमें कुछ पौधा है नहीं, इससे पौधा कभी आ नहीं सकता।

और तब यह तर्क ठीक भी मालूम पड़ता है। क्योंकि महीनों का अनुभव यह कहता है कि रोज तो देख रहे हैं, कहीं से जरा—सी भी तो अंकुर के फूटने की कोई संभावना नहीं दिखाई पड़ती। गुठली वैसी की वैसी है। यह पत्थर है। न कोई आत्मा है भीतर, न कोई पौधा है, न कोई फूल छिपे हैं। तब हम गुठली को फेंक देते हैं। धीरज की जरूरत है। और जब आम की गुठली के लिए महीनों की प्रतीक्षा करनी पड़ती है, तो आपकी गुठली तो जन्मों—जन्मों से सख्त है। वह पथरीली हो गई है। उसे पिघलाने में वक्त लगेगा, श्रम लगेगा, सतत चोट करनी पड़ेगी। और तभी आपको पता चलेगा कि कृष्ण और बुद्ध कल्पना की बात नहीं कर रहे हैं, वह उनका अनुभव है। उनकी गुठली टूटी और उन्होंने वृक्ष को बढ़ता हुआ देखा। उस वृक्ष की सुगंध उन्होंने अनुभव की, उस वृक्ष के फूल उन्होंने पाए। उनका जीवन कृतकृत्य हुआ है।

लेकिन चूंकि बहुत थोड़े लोग इतनी दूर तक जाने को राजी होते हैं, इसलिए धर्म विरले लोगों के लिए रह जाता है। आमंत्रण सभी के लिए है।

तिब्बत में एक बहुत प्राचीन कथा है। एक दूर पहाड़ों में छिपा हुआ नया आश्रम निर्मित हुआ। तो जिस प्रधान आश्रम से उस आश्रम का संबंध था, उस लामासरी का संबंध था, उस लामासरी ने सौ लोगों का चुनाव किया जो जाकर उस आश्रम को सम्हालेंगे। तो एक युवक शिष्य ने पूछा, लेकिन सौ की वहां जरूरत नहीं है। वहां तो पांच से काम चल जाएगा। तो गुरु ने कहा, सौ को बुलाओ, तो दस तो आते हैं। दस को भेजो, तो पांच पहुंच पाते हैं। और इतने भी पहुंच जाएं, तो भी काफी है।

धर्म तो सभी को बुलाता है। लेकिन सौ को बुलाओ, तो नब्बे को तो सुनाई ही नहीं पड़ता निमंत्रण। क्योंकि हमें वही सुनाई पड़ता है, जिसे सुनने को हम आतुर हैं। हमें सभी चीजें सुनाई नहीं पड़ती।

अभी मैं यहां बोल रहा हूं। यदि आप मुझमें आतुर हैं, तो मैं जो कह रहा हूं वह सुनाई पड़ता है। लेकिन और बहुत—सी आवाजें चारों तरफ चल रही हैं, वे आपको सुनाई नहीं पड़ती। टेप रिकार्डर उनको भी पकड़ लेगा, क्योंकि टेप रिकार्डर का कोई चुनाव नहीं है। जब आप टेप सुनेंगे, तब आप हैरान होंगे कि ये इतनी आवाजें—कोई पक्षी बोला,

कुत्ता भौंका, हवाई जहाज गया, ट्रेन आई—यह सब पकड़ रहा है। उसका कोई चुनाव नहीं है। और अगर आप भी सब पकड़ रहे हैं, तो उसका मतलब यह है कि आप भी चुन नहीं रहे हैं।

जो हम चुनते हैं, वह हमें सुनाई पड़ता है; जो हम चुनते हैं, वह हमें दिखाई पड़ता है। अगर आप चोर हैं, तो रास्ते से गुजरते वक्त आपको कुछ और दिखाई पड़ेगा, जो साहूकार को दिखाई नहीं पड़ सकता। अगर आप चमार हैं, तो रास्ते से गुजरते वक्त आपको लोगों के जूते दिखाई पड़ेंगे, उनकी टोपियां दिखाई नहीं पड़ सकतीं। अगर आप दर्जी हैं, तो उनके कपड़े दिखाई पड़ेंगे, उनके चेहरे दिखाई नहीं पड़ सकते। आपकी जो रुझान है, वही दिखाई पड़ता है।

वैज्ञानिक कहते हैं कि सौ घटनाएं घट रही हैं, उनमें से हम केवल दो को पकड़ते हैं, अट्ठानबे छूट जाती हैं। उनसे हमारा कुछ लेना—देना नहीं है। हमारा कोई प्रयोजन नहीं है।

आप एक रास्ते से गुजरें; सैकड़ों वृक्ष लगे हैं। एक चित्रकार गुजरे उसी रास्ते से, तो उसे हर वृक्ष की हरियाली अलग दिखाई पड़ती है। क्योंकि हर वृक्ष अलग ढंग से हरा है। हरा कोई एक रंग नहीं है, हरे में हजार रंग हैं। पर वह सिर्फ चित्रकार को दिखाई पड़ता है, जिसको रंगों की सूझ है, जिसको रंगों में झुकाव है, जिसे रंगों में रस है। आपको सब वृक्ष एक जैसे हरे हैं।

आपको वही दिखाई पड़ता है, जो आप देखने चले हैं। जो आप खोजने निकले हैं, उसकी पुकार आपको सुनाई पड़ जाती है।

एक रास्ते से दो फकीर गुजर रहे थे। चर्च में घंटियां बजने लगीं। तो एक फकीर ने कहा..। बाजार था, बड़ा शोरगुल था। चीजें ली जा रही हैं, खरीदी जा रही हैं, बेची जा रही हैं, गाड़ियों से उतारी जा रही हैं, चढ़ाई जा रही हैं। बड़ा शोरगुल था वहा; चर्च की घंटी का सुनाई पड़ना मुश्किल था। एक फकीर ने चर्च की घंटी सुनते ही कहा, हम जल्दी चलें, प्रार्थना का समय हो गया, घंटी बज रही है। उस दूसरे फकीर ने कहा, तुम भी अदभुत हो, इस शोरगुल में, इस उपद्रव में तुम्हें चर्च की घंटी सुनाई पड़ गई! यहां किसी को सुनाई नहीं पड़ रही है। उसने कहा, यहां भी कुछ चीजें सुनाई पड़ती हैं। उसने एक रुपया खीसे से निकाला और सड़क पर गिरा दिया। खन्न की आवाज हुई, पूरा बाजार देखने लगा।

वे सब रुपए को सुनने को आतुर लोग हैं। चर्च की घंटी बज रही थी, किसी के कान पर चोट न पड़ी। सब चौंक गए; सब ने आस—पास देखा। वे सब रुपए की तलाश में निकले हुए लोग हैं। रुपए की आवाज सुनाई पड़ जाएगी, चर्च की घंटी खो जाएगी। चाहे चर्च की घंटी जोर से बज रही हो, तो भी खो जाएगी।

एक मां सो रही हो, रात तूफान हो, बादल गरज रहे हों, उसे सुनाई नहीं पड़ेगा। उसका छोटा—सा बेटा रात जरा—सा कुनमुना दे, जरा—सा रो दे, वह जग जाएगी।

सौ को बुलाओ, नब्बे को सुनाई नहीं पड़ता। जिन दस को सुनाई पड़ता है, उनमें से भी शायद पाच समझ न पाएंगे। सुन भी लेंगे, तो भी पकड़ न पाएंगे। सुन भी लेंगे, तो भी उनकी आत्मा के भीतर कोई झंकार पैदा न होगी, कोई प्रतिध्वनि न होगी। सुनेंगे कान से, बात खो जाएगी; कोई चोट न पड़ेगी कि जो सुना है, वह उन्हें रूपांतरित कर दे। पांच सुनेंगे, समझेंगे। शायद उनमें से एक, जो

उसने सुना है और समझा है, उसे करेगा भी। चार सुन लेंगे, समझ लेंगे, पंडित हो जाएंगे। सौ के साथ मेहनत करो, कभी कोई एक यात्रा पर जा पाता।

धर्म का निमंत्रण सबके लिए है, लेकिन विरले उसे सुन पाते हैं।

तीसरा प्रश्न :
गीता कहती है कि दैवी संपदा मुक्त करती है और आसुरी संपदा बांधती है। इस संदर्भ में क्या बताएंगे कि बंधन क्या है और मुक्ति क्या है?
चित्त की ऐसी दशा, जहां कोई संताप न हो, जहां कोई सीमा का अनुभव न हो, जहां कोई सीमांत न आता हो; चित्त की ऐसी दशा, जैसे खुला आकाश हो, कोई दीवारें चारों तरफ से घेरने को नहीं, कोई पीड़ा की रेखा नहीं, क्योंकि सब पीड़ा की रेखाएं घेरती हैं, बंद करती हैं; आनंद खोलता है, फैलाता है, जहां चित्त की दशा फैलती हो।

हमारा जो शब्द है, इस देश में जो हम उपयोग करते हैं परम स्थिति के लिए, वह ब्रह्म है। ब्रह्म का अर्थ होता है, जो फैलता ही चला जाता है, एक्सपैंडिंग, इनफिनिटली एक्सपैंडिंग, जो फैलता ही चला जाता है, विस्तार जिसका गुणधर्म है।

एक कंकड़ को फेंक दें पानी में, लहर उठती है, फैलती चली —जाती है। अगर पानी असीम हो, तो वह लहर फैलती ही चली जाएगी; किनारा होगा, तो टूट जाएगी, किनारे पर जाकर बिखर जाएगी। अगर कोई किनारा न हो, तो फैलती ही चली जाएगी। आनंद का कोई किनारा नहीं है, क्योंकि इस अस्तित्व का कोई किनारा नहीं है।

यह जो आकाश हमें दिखाई पड़ता है, यह कहीं है नहीं, यह सिर्फ हमारी आंखों की देखने की क्षमता कम है। जहां तक आंखें देख पाती हैं, वहीं आकाश हमें बंद होता मालूम होता है, अन्यथा आकाश कहीं भी नहीं है। आकाश का अर्थ है, जो है ही नहीं। अनंत फैलाव है। इस फैलाव की कोई सीमा नहीं है।

जब चेतना ऐसी अवस्था में होती है कि उसमें उठते हुए आनंद की तरंगें फैलती ही चली जाती हैं, कहीं कोई किनारा नहीं है, तब मुक्त क्षण है, तब मुक्ति है। और जब चेतना तड़फड़ाती है, और एक भी लहर नहीं फैल पाती, और सब तरफ दीवारें आ जाती हैं; जहां बढ़ते हैं, वहीं बंधन आ जाता है, वहीं लगता है पैर में जंजीरें हैं, आगे नहीं जा सकते, उस दशा का नाम बंधन है।

कई प्रकार से हमें बंधन का अनुभव होता है। कितने ही प्रसन्न होते हों हम, शरीर की सीमा बंधी है। शरीर कभी स्वस्थ है, कभी अस्वस्थ है, कभी जवान है, कभी बूढ़ा है, कभी प्रफुल्लित है, कभी उदास है। उसकी सीमा आपके ऊपर बंधी है। अगर शराब डाल दी जाए शरीर में, तो आपकी चेतना भी उसी के साथ बेहोश हो जाती है। शरीर से रक्त निकाल लिया जाए, तो उसी के साथ आपकी चेतना भी दीन—हीन हो जाती है। शरीर जीर्ण—जर्जर, का हो जाए, उसी के साथ आप भी भीतर झुक जाते हैं और टूट जाते हैं। शरीर की सीमा खड़ी है।

दूर जरा आगे देखें, तो मौत की सीमा खड़ी है। मरना होगा, मिटना होगा। और प्रतिपल हजार तरह की सीमाएं हैं। क्रोध की, घृणा की, मोह की, लोभ की सीमाएं हैं। सब तरफ से बांधे हुए हैं। यह जो अवस्था है, यह बंधन की अवस्था है।

कृष्ण कहते हैं, आसुरी संपदा का अर्थ है, इस तरह की संपत्ति को बढ़ाना और इकट्ठा करना, जिसमें हम बंधते हैं, जिसमें हम खुलते नहीं, उलटे उलझते हैं। दैवी संपदा का अर्थ है, ऐसी संपदा, जो इन बंधनों को तोड़ती है।

ध्यान करें, अगर आप लोभ से भरे हैं, तो आपको हर जगह सीमा मालूम पड़ेगी। कितना ही धन आपके पास हो, लगेगा कम है। लोभी मन को कभी ऐसा लग ही नहीं सकता कि मेरे पास ज्यादा है।

सोचें इसको आप, लोभी मन को कभी लग ही नहीं सकता कि मेरे पास ज्यादा है; उसे सदा लगेगा, मेरे पास कम है। कितना ही हो, तो लोभ सीमा बन जाएगी। अरब रुपए आपके पास हों, तो भी लगेगा कम हैं, क्योंकि दस अरब हो सकते थे।

अलोभ की कोई सीमा नहीं है। क्योंकि अलोभी व्यक्ति को सदा लगेगा कि जो भी मेरे पास है, वह भी ज्यादा है, वह भी न हो, तो भी कुछ हर्ज न था। अगर अलोभ पूरा हो जाए, तो आपकी सीमा मिट गई।

तो लोभ आसुरी संपदा है, अलोभ दैवी संपदा है।

क्रोधी व्यक्ति को प्रतिपल सीमा है; जहां देखेगा, वहीं से क्रोध पकड़ता है। जो करेगा, वहीं उपद्रव, झगड़ा और कलह खड़ा हो जाता है। अक्रोधी व्यक्ति के लिए कोई सीमा नहीं है। वह जहां से भी गुजरता है, वहीं मैत्री पैदा हो जाती है। तो क्रोध आसुरी हो जाएगा, अक्रोध दैवी हो जाएगा।

भयभीत व्यक्ति को हर पल खतरा है।

मैं एक गांव में रहता था। तो मेरे सामने एक सुनार रहता था, बहुत भयभीत आदमी। मैं अक्सर अपने दरवाजे पर बैठा रहता, तो उसको बड़ी अड़चन होती। क्योंकि शाम को वह घर से निकलता, अकेला ही था, तो ताला लगाएगा; हिलाकर ताले को देखेगा दो—चार बार। चूंकि मैं सामने बैठा रहता, तो उसको बड़ा संकोच लगता। तो मैं आंख बंद कर लेता। वह हिलाकर देखेगा। फिर वह दस कदम जाएगा, फिर लौटेगा। पसीना—पसीना हो जाएगा : क्योंकि उसको लग रहा है कि मैं देख रहा हूं। फिर आएगा, फिर ताले को खटखटाका।

मैंने उससे पूछा कि तू एक दफे इसको ठीक से खटखटाकर देखकर क्यों नहीं जाता? कभी दो दफा, कभी तीन दफा! वह कहता, शक आ जाता है। दस कदम जाता हूं, फिर यह होता है, पता नहीं, मैंने ठीक से हिलाकर देखा कि नहीं देखा!

अब यह भयभीत आदमी है। यह बाजार भी चला जाएगा, तो भी बाजार पहुंच नहीं पाएगा, इसका मन इसके ताले में अटका है। जो चार दफा लौटकर देखता है हिलाकर, वह कितनी ही बार देख जाए, क्योंकि जो संदेह एक बार हिलाने के बाद आ गया, वह दुबारा क्यों न आएगा? तिबारा क्यों न आएगा?

यह जो भयभीत चित्त है, यह न रात सो सकता है, न दिन ठीक से जग सकता है। यह चौबीस घंटे डरा हुआ है, सारा जगत दुश्मन है।

तो भय आसुरी संपदा है, बांधती है। अभय मुक्त करता है, तो वह दैवी संपदा है।

मुक्त करने से केवल इतना ही अर्थ है कि जिससे आप पर सीमा न पड़ती हो, आप खुले आकाश में पक्षी की तरह उड़ सकते हों।

जिन—जिन चीजों से आपके चित्त पर सीमा पड़ती है, वहीं से आपका कारागृह निर्मित होता है। और हम ऐसे पागल हैं कि हम उनकी जड़ों को सींचते हैं, हम मजबूत करते हैं। क्योंकि जो जंजीरें हैं, शायद हम सोचते हैं कि वे आभूषण हैं। हम उन्हें बचाते हैं। कोई अगर तोड़ना चाहे, तो हम नाराज होंगे। कोई हमारी जंजीरें हटाना चाहे, तो हम उसे दुश्मन समझेंगे। क्योंकि उन्हें हमने जंजीरें कभी समझा नहीं; वे कीमती आभूषण हैं, जो हमने बड़ी कठिनाई से अर्जित किए हैं।

जब तक कोई व्यक्ति अपनी जंजीरों को आभूषण समझता है, तब तक उसकी मुक्ति का द्वार बंद ही रहेगा। जब आप अपने आभूषणों को भी बंधन समझने लगेंगे, तभी मुक्ति के द्वार पर पहली चोट पड़ती है।

तो प्रत्येक व्यक्ति को निरीक्षण करते रहना चाहिए, उठते—बैठते, सुबह—सांझ, कौन—सी चीज मेरी सीमा बन रही है। सीमा के अतिरिक्त और कोई आपका दुश्मन नहीं है और असीम के अतिरिक्त कोई और आपका मित्र नहीं है। तो अपने को असीम बनाने की चेष्टा ही ध्यान है; असीम बनाने की चेष्टा ही प्रार्थना है, असीम बनाने की चेष्टा ही साधना है।

शरीर बांधता है, तो साधक अपने को शरीर से मुक्त करता है। तो वह निरंतर अनुभव करने की कोशिश करता है, क्या मैं शरीर हूं? क्या सच में ही मैं शरीर हूं या शरीर से भिन्न हूं?

धीरे— धीरे, निरंतर चोट से यह अनुभव होना शुरू हो जाता है कि मैं शरीर नहीं हूं। जिस दिन यह पता चलता है, मैं शरीर नहीं हूं फिर शरीर जवान हो, का हो; जिंदा हो, मरे, स्वस्थ हो, अस्वस्थ हो; तो बंधन नहीं बांधता। जो मैं नहीं हूं उससे मेरे ऊपर कोई बंधन नहीं है। और जैसे ही यह स्मरण आ गया कि मैं शरीर नहीं हूं वैसे ही आपकी आत्मा इस खुले आकाश के साथ एक हो गई। फिर कोई परदा न रहा।

मन बांधता है। तो साधक खोजता है, क्या मैं मन हूं? और निरंतर एक ही तलाश में लगा रहता है कि मन से संबंध कैसे टूट जाए! वह संबंध टूट जाता है। क्योंकि जो हमारे भीतर साक्षी है, वह न तो शरीर है, न मन है, न भाव है। हम इन सब के साक्षी हो सकते हैं। शरीर को भी देख सकते हैं अलग अपने से, मन को भी देख सकते हैं; विचार को भी देख सकते हैं। और जिसको हम देख सकते हैं, वह हमसे अलग हो गया, हम द्रष्टा हो गए।

जिसको भी मैं देख सकता हूं—यह गणित है—वह मैं नहीं हूं। मैं स्वयं को कभी भी नहीं देख सकता हूं। मैं सदा देखने वाला ही रहूंगा। दृश्य बनने का कोई उपाय नहीं है, मैं द्रष्टा ही रहूंगा। द्रष्टा होना मेरा स्वभाव है। इसलिए मैं अपने आपको अपने सामने रखकर देख नहीं सकता। सब देख लूंगा मैं, सिर्फ मेरा होना पीछे रह जाएगा। और जब मैं सब देखी जाने वाली चीजों को छोड़ दूंगा, सिर्फ वही बच रहेगा जो देखने वाला है, उस क्षण मेरी कोई सीमा न होगी, उस क्षण मैं मुक्त हो जाऊंगा।

बंधन वाला चित्त हर चीज से अपने को जोड़ता है। वह कहता है, यह शरीर मैं हूं; सीमा खड़ी कर ली। वह कहता है, यह धन मैं हूं; धन की सीमा खड़ी हो गई। अमीर ही नहीं बंधते, भिखमंगे भी धन से बंधे होते हैं।

एक रास्ते से मैं गुजर रहा था, अचानक एक भिखमंगे की आवाज मेरे कानों में पड़ी। बात ही कुछ ऐसी थी कि मैं रुक गया, और सुनने जैसी बात थी। एक सज्जन गुजर रहे थे, भिखमंगा उनसे भीख देने का आग्रह कर रहा था कि कुछ भी दे जाओ, दो पैसे सही। भले आदमी थे, खीसे में हाथ डाला, लेकिन घूमने निकले थे शाम को, कोई पैसे खीसे में थे नहीं। तो कहा, माफ करना, पैसे खीसे में हैं नहीं; दुबारा जब आऊंगा, तो खयाल से पैसे ले आऊंगा। तो उस भिखमंगे ने कहा, मार जा, तू भी मार जा मेरे पैसे! इसी तरह वायदा कर—करके लोग लाखों रुपए मार चुके हैं।
भिखमंगा है! वह कह रहा है, लाखों रुपए लोग मार चुके हैं इसी तरह वायदा कर—करके कि फिर आ जाएंगे, फुटकर पैसे नहीं हैं, अभी छुट्टे पैसे नहीं हैं, अभी कुछ खीसे में नहीं है। वह जो लाखों उसके पास कभी नहीं रहे हैं, वह उनका दुख है उसको कि लोग मार गए हैं उससे।
अमीर धन से बंधा हो, समझ में आ जाता है। गरीब भी धन से बंधा है। और धन से हम ऐसे चिपट जाते हैं, जैसे वह हमारी आत्मा है। फिर इसी भाति हम सब तरह की चीजों से जुड़ जाते हैं, तादात्म्य, आइडेंटिटी बना लेते हैं, यह मैं हूं। और जिससे भी हम जुड़ जाते हैं, वह हमारी सीमा बन गया।
तो अपने को जितनी ज्यादा चीजों से कोई जोड़ेगा, उतने बंधन में होगा; और जितना चीजों से अपने को तोजो, उतना मुक्त होगा। और जिस दिन सिर्फ यही अनुभव रह जाएगा कि मैं किसी से भी बंधा नहीं हूं कुछ भी मेरा नहीं है, सिर्फ मैं ही हूं, मेरा स्वभाव ही बस मेरा होना है, उस दिन मुक्ति है।
दैवी संपदा उस जगह ले जाती है, जहां आप अकेले बचते हैं। आसुरी संपदा वहां ले जाती है, जहां आपको छोड्कर और सब कुछ बच जाता है।

अब हम सूत्र को लें।
और हे अर्जुन, आसुरी स्वभाव वाले मनुष्य कर्तव्य—कार्य में प्रवृत्त होने को और अकर्तव्य—कार्य से निवृत्त होने को भी नहीं जानते हैं। इसलिए उनमें न तो बाहर— भीतर की शुद्धि है, न श्रेष्ठ आचरण है और न सत्य भाषण ही है।

तथा वे आसुरी प्रकृति वाले मनुष्य कहते हैं कि जगत आश्चर्यरहित और सर्वथा झूठा है एवं बिना ईश्वर के अपने आप स्त्री—पुरुष के संयोग से उत्पन्न हुआ है। इसलिए जगत केवल भोगों को भोगने के लिए ही है। इसके सिवाय और क्या है?

इस प्रकार इस मिथ्या—ज्ञान को अवलंबन करके नष्ट हो गया है स्वभाव जिनका तथा मंद है बुद्धि जिनकी, ऐसे वे सबका अहित करने वाले क्रूरकर्मी मनुष्य केवल जगत का नाश करने के लिए ही उत्पन्न होते हैं।

बहुत—सी बातें इस सूत्र में समझने जैसी हैं और गहरे में जाने जैसी हैं।

आसुरी स्वभाव वाले मनुष्य कर्तव्य में प्रवृत्त होने और अकर्तव्य से निवृत्त होने को नहीं जानते हैं.......।

क्या करने जैसा है, क्या करने जैसा नहीं है, इसका उन्हें कुछ भेद नहीं होता, वे जो आसुरी संपदा वाले लोग हैं। क्या कर्तव्य है? कर्तव्य की क्या परिभाषा है? किसे हम कहें कि यह करने जैसा है? योग कर्तव्य की परिभाषा करता है, जिससे भी आनंद बढ़ता हो, वही कर्तव्य है। और मजे की बात यह है कि जिससे हमारा आनंद बढ़ता है, उससे हमारे आस—पास जो हैं, उनका भी आनंद बढ़ता है। जिससे हमारे आस—पास जो हैं, उनका आनंद बढता है, उससे हमारा भी आनंद बढ़ता है। आनंद एक संयुक्त घटना है।

दुख भी संयुक्त घटना है। जिससे हमारा दुख बढता है, उससे हमारे आस—पास भी दुख बढ़ता है। जिससे हमारे आस—पास दुख बढ़ता है, उससे हमारा दुख भी बढ़ता है। दुख भी एक संयुक्त घटना है।

आप किसी दूसरे को दुखी करके सुखी नहीं हो सकते। चाहे क्षणभर को आप अपने को धोखा दें कि मैं सुखी हो रहा हूं? लेकिन यह असंभव है। यह नियम नहीं है। यह हो नहीं सकता। आप दूसरे को दुखी करके सिर्फ दुखी ही हो सकते हैं।

यह तो हो भी सकता है कि आप दूसरे को दुखी करें और वह दुखी न हो; लेकिन आप तो दुखी होंगे ही। क्योंकि अगर वह आदमी जानी हो, बोधपूर्ण हो, बुद्ध पुरुष हो, तो आपके दुखी करने से दुखी नहीं होगा। लेकिन आपकी दुखी करने की जो चेष्टा है, वह आपको तो निश्चित ही दुखी कर जाएगी।

जगत एक प्रतिध्वनि है। हम जो करते हैं, वह हम ही पर आकर बरस जाता है, चाहे थोड़ी देर—अबेर हो जाती हो। उसी देर—अबेर के कारण ही हम इस भाति में पड़ जाते हैं कि इससे कोई संबंध नहीं है। लोग मेरे पास आते हैं, वे कहते हैं कि हम कुछ भी बुरा नहीं कर रहे हैं, फिर भी दुखी हैं।

उनकी गलती है। यह असंभव है। वे जरूर कुछ कर रहे हैं; वे जरूर कुछ करते रहे हैं। शायद वे सोचते हैं कि वह बुरा नहीं है, जो वे कूर रहे हैं।

एक पिता मेरे पास आए। अपने बेटे से दुखी हैं। और कहते हैं कि मैं तो बेटे के भले के लिए सब—कुछ कर रहा हूं पर वह मुझे दुख दे रहा है। सारी कथा मैंने जानी। तो पिता ठीक कहते हैं कि भले के लिए कर रहे हैं; इसमें कुछ झूठ नहीं है। लेकिन करने का जो ढंग है, वह ऐसा है कि वे बंद ही कर दें यह भला काम करना, तो अच्छा है। करने का ढंग इतने दंभ से भरा है, करने का ढंग ऐसा है कि खुद को वे देवता और बेटे को शैतान समझते हैं। करने का ढंग इतना अहंकारपूर्ण है कि बेटे के अहंकार को चोट लगती है। चाहते वे भला करना हैं, लेकिन बुरा हो रहा है।

और इतने दंभ से जब कोई दूसरे व्यक्ति को बदलने की कोशिश करता है, तो दूसरे पर चोट पहुंचती है। वह चोट संघातक हो जाती है; उस चोट से बदला लेने की वृत्ति पैदा होती है। और करने में उनको जो मजा आ रहा है, वह मजा यह नहीं है कि वे बेटे का भला कर रहे हैं। वह मजा यह है कि मैं भला बाप हूं और बेटे के लिए सब कुर्बान कर रहा हूं। वह भी अहंकार का ही मजा है।

मैंने उनसे कहा कि कभी आपने यह सोचा कि अगर बेटा सच में ही भला हो जाए, तो आप दुखी हो जाएंगे! उन्होंने कहा, आप क्या कहते हैं! कभी नहीं। तो मैंने कहा, आप बैठें आंख बंद करके और सोचें। आपका तो सारा जीवन का अर्थ ही खो जाएगा। एक ही अर्थ है, वह बेटे को ठीक करना। आप बिलकुल अनआकुपाइड हो एकदम, कोई काम न बचेगा; मरने के सिवाय कुछ काम न बचेगा। वह बेटा आपको काम दे रहा है, रस दे रहा है। चौबीस घंटे आप उसी के पीछे पड़े हैं, उसी की कथा कह रहे हैं, और जगह—जगह प्रचार कर रहे हैं कि आप इतना कर रहे हैं और बेटा आपको दुख दे रहा है। अगर बेटा सच में आज भला हो जाए, तो आपको कल मरने के सिवाय कोई काम नहीं है।

थोड़े चौंके, धक्का खाया, लेकिन फिर सोचा। और कहने लगे कि शायद बात ठीक ही हो!

अगर आप दुख पाते हैं, तो आपको जान लेना चाहिए कि आप दुख दे रहे हैं। अगर आपको आनंद की कोई भी किरण मिलती है, तो जान लेना चाहिए कि जाने या अनजाने आपने कुछ आनंद दिया है, बांटा है। जो हम बांटते हैं, वही हमें मिलता है।

कर्तव्य क्या है? कर्तव्य निर्भर होगा लक्ष्य से। लक्ष्य तो एक है सभी का कि जीवन आनंद से भरपूर हो जाए। तो जिससे भी आनंद बढ़े, वही कर्तव्य है। और जिससे आनंद घटे, वही अकर्तव्य है। आनंद को हम कसौटी बना सकते हैं। जैसे सोने को पत्थर पर कसकर देख लेते हैं कि सही या गलत, शुद्ध या अशुद्ध, वैसे आनंद पर आप कसकर देखते रहें आपने कर्मों को।

और जिस कर्म से आनंद बढ़ता हो, समझना वह कर्तव्य है। फिर उसको ज्यादा सींचे, बढ़ाए, जीवन की सारी ऊर्जा उसमें लग जाने दें। जिस कर्म से दुख मिलता हो, उसे छोड़े, उससे अपने को हटाए, उसकी तरफ जीवन की ऊर्जा को मत बहने दें।

लेकिन कृष्ण कहते हैं, आसुरी संपदा वाला व्यक्ति जानता ही नहीं कि क्या करने योग्य है, न जानता है कि क्या करने योग्य नहीं है। न कर्तव्य में उसकी प्रवृत्ति है, न अकर्तव्य से निवृत्ति है। वह अंधे आदमी की तरह कुछ भी किए चला जाता है। उस सब कनफ्यूजन, उस सब उपद्रव को जैसे वह अपने जीवन में खड़ा कर लेता है। कभी बाएं, कभी दाएं भागता है; कभी सीधा, कभी उलटा।

मैंने सुना है, दक्षिण में एक कथा है। दक्षिण का एक कवि हुआ, तेनालीराम। कुछ उलटी खोपड़ी का आदमी रहा होगा। कवि अक्सर होते हैं। पर भक्ति का भी भाव था। तो उसने बड़ी साधना की। काली का पूजक था। बड़ी साधना की। वर्षों के बाद काली का दर्शन हुआ, अनंत हाथों वाली, अनंत मुख वाली। सालों की मेहनत के बाद तेनालीराम ने पूछा क्या!

उसने पूछा कि बस, मुझे यही पूछना है; एक नाक हो, सर्दी हो जाए, तो आदमी पोंछ— पोंछकर थक जाता है। तुम्हारी क्या गति होती होगी?

काली भी चौंकी होगी। कहते हैं, काली ने कहा कि तुम्हें, तेनालीराम, आज से विकट कवि कहा जाएगा। यह तुम्हारा नाम हुआ; और यही मेरा उत्तर है। तेनालीराम ने सुना तो उसने कहा कि बिलकुल ठीक। यह बिलकुल मुझसे मेल खाता है। विकट कवि को उलटा पढ़ो या सीधा, एक—सा है। और मैं उलटा खड़ा होऊं या सीधा, बिलकुल एक —सा है।

यह वर्षों की साधना बस, इस चर्चा पर समाप्त हो गई!

अगर मन उलझा हो, क्या करने योग्य है, क्या करने योग्य नहीं है, इसका बोध भी न हो, तो आपके सामने परमात्मा भी खड़ा हो, तो भी हल न होगा। आप स्वर्ग में भी पहुंच जाएं, तो कोई न कोई उपद्रव खड़ा कर लेंगे। आप जहां भी होंगे, वहा गलती अनिवार्य है।

सवाल यह नहीं है कि आप कहा हैं। सवाल यह है कि आपके पास देखने की दृष्टि तीक्ष्ण, स्पष्ट है; विवेकपूर्ण है, बांट सकती है या नहीं कि क्या सार है, क्या असार है; क्या कर्तव्य है, क्या अकर्तव्य है।

अक्सर लोग जीवनभर दौड़ते रहते हैं, बिना इसका ठीक से उनको पक्का पता हुए कि वे कहां जा रहे हैं, क्यों जा रहे हैं। अगर लोग थोड़ी देर रुक जाएं इसके पहले कि कदम उठाएं, चलें, सोच लें कि कहा जाना है और सारी जीवन ऊर्जा को वहां नियोजित कर दें, तो जीवन में फल लग सकते हैं।

अधिक लोग बेफल मर जाते हैं, निष्फल मर जाते हैं। ऐसा भी नहीं कि श्रम कम करते हैं। श्रम बहुत करते हैं। आसुरी संपदा वाले लोग दैवी संपदा वाले लोगों से ज्यादा श्रम करते हैं। बुद्ध ने क्या श्रम किया है! जो श्रम हिटलर और तैमूरलंग और चंगेज खां करते हैं! बुद्ध का श्रम क्या है! एक झाडू के नीचे बैठे हैं, यही श्रम है!

तैमूरलंग को देखें, लंगड़ा है। वह लंग लंगड़े का ही हिस्सा है। तैमूर दि लेम। लंगड़ा है, लेकिन सारी जमीन को जीतने की कोशिश में लगा है। और कोई आधी जमीन उसने जीत भी डाली। कितने लाखों लोग उसने काट डाले। श्रम उसका भारी है, लेकिन परिणाम क्या है? हिटलर के श्रम को कोई कम नहीं कह सकता। फल क्या है?

ठीक साफ न हो कि क्या कर्तव्य है, क्या मैं करूं, क्यों करूं, और इसका क्या अंत होगा, इसकी ठीक—ठीक रूप—रेखा साफ न हो, तो आदमी करता बहुत है और पाता कुछ भी नहीं।

आसुरी वृत्ति के लोग बड़ा श्रम उठाते हैं, पर उनकी सब साधना निष्फल जाती है।

इसलिए उनमें न तो बाहर— भीतर की शुद्धि है, न श्रेष्ठ आचरण है, और न सत्य भाषण ही।

आसुरी संपदा वाला व्यक्ति शुद्धि का विचार ही नहीं करता। वह उसके चिंतन में ही कभी नहीं आता, कि शुद्धि का भी कोई रस है, कि शुद्धि का भी कोई सुख है। जीवन उसका एक घोलमेल है, उसमें सभी कुछ मिला—जुला है। वह प्रार्थना भी करता रहेगा, दुकान की बात भी सोचता रहेगा। वह मंदिर में भी बैठा रहेगा, और वेश्याघर उसे पहुंच जाना है शीघ्रता से, उसकी योजना बनाता रहेगा। उसके जीवन में शुद्धि नहीं है। उसके जीवन में सब मिला हुआ है, कचरे की तरह सब इकट्ठा है। कोई एक स्वर नहीं है। बहुत स्वर हैं, विपरीत स्वर हैं।

शुद्धि का अर्थ इतना ही है कि जीवन की धारा एक स्वर से भरी हो, एक समस्वरता हो। और जब भी मैं जो कर रहा हूं, उस करने में मेरी निष्ठा इतनी पूरी हो कि दूसरा स्वर बीच में डावाडोल न करता हो।

अगर व्यक्ति का जीवन एक—एक क्षण भी इस भांति शुद्ध होने लगे, तो परमात्मा का मंदिर ज्यादा दूर नहीं है। लेकिन आप कुछ भी कर रहे हों, एक काम कभी भी नहीं कर रहे हैं, हजार काम साथ कर रहे हैं! कुछ भी सोच रहे हों, एक विचार कभी नहीं है, हजार विचार विक्षिप्त की तरह भीतर दौड़ रहे हैं। आप एक बाजार हैं, एक भीड़। और भीड़ भी पागल। इस स्थिति का नाम अशुद्धि है।

कृष्ण कह रहे हैं, उसमें न तो बाहर की शुद्धि है, न भीतर की। न श्रेष्ठ आचरण है, न सत्य भाषण है। तथा वे आसुरी प्रवृत्ति वाले मनुष्य कहते हैं, जगत आश्चर्यरहित है।

यह वचन बड़ा क्रांतिकारी है।

आसुरी वृत्ति वाला व्यक्ति मानता है कि जगत में कोई रहस्य नहीं है; मानता है कि जगत एक तथ्य है, जिसमें न कोई आश्चर्य है, न कोई रहस्य है, कोई मिस्ट्री नहीं है। अगर हम विचार करें, तो बहुत—सी बातें साफ हो सकती हैं।

धार्मिक और अधार्मिक व्यक्ति में यही फासला है। धार्मिक व्यक्ति जीवन को एक रहस्य की भांति अनुभव करता है। यहां जो प्रकट है, वह सिर्फ सतह है, इस सतह के पीछे अप्रकट छिपा है। और वह अप्रकट ऐसा है कि कितना ही प्रकट होता जाए, तो भी शेष रहेगा।

रहस्य का अर्थ होता है, जिसे हम पूरा कभी न जान पाएंगे, जिसका अंतस्तल सदा ही अनजाना रहेगा। हम कितना ही जान लें, हमारी सब जानकारी बाहर ही बाहर रहेगी। भीतर की अंतरात्मा सदा अनजानी छूट जाएगी।

अगर इसे ठीक से खयाल में लें, तो विज्ञान आसुरी मालूम पड़ेगा। क्योंकि विज्ञान मानता है, जगत में सभी कुछ जाना जा सकता है—कम से कम मानता था। अभी नए कुछ वैज्ञानिक, आइंस्टीन के बाद, इस मान्यता को स्वीकार नहीं

करते। अन्यथा विज्ञान की दृष्टि थी, सभी कुछ जाना जा सकता है। जो हमने जान लिया वह, और जो नहीं जाना है, वह भी अशेय नहीं है, अननोएबल नहीं है। अज्ञात है, उसको भी हम कल जान लेंगे, परसों जान लेंगे। समय की बात है। सौ, दो सौ वर्षों में हम सब जान लेंगे, या हजार, दौ हजार वर्षों में। लेकिन धारणा यह थी विज्ञान की कि जगत पूरा का पूरा जाना जा सकता है।

अगर पूरा का पूरा जाना जा सकता है, तो परमात्मा की कोई जगह नहीं बचती। क्योंकि जिस दिन आप परमात्मा को भी जान लें प्रयोगशाला में और पदार्थों की भांति, जैसा आक्सीजन और हाइड्रोजन को जानते हैं, ऐसा परमात्मा को जान लें; जैसे आक्सीजन और हाइड्रोजन को मिलाकर पानी बनाते हैं, ऐसा परमात्मा का विश्लेषण कर लें, मेल—जोल करके टधूब में उसको तैयार कर दें, जिस दिन आप परमात्मा को जान लेंगे पदार्थ की तरह—विज्ञान की यही धारणा है कि सभी कुछ हम जान लेंगे—उस दिन जानने को कुछ भी शेष नहीं बचेगा।

कृष्ण कहते हैं, आसुरी संपदा वाला व्यक्ति जगत में कोई रहस्य नहीं मानता। और दैवी संपदा वाला व्यक्ति मानता है कि जगत एक अनंत रहस्य है, एक पहेली, जिसे हम हल करने की कितनी ही कोशिश करें, हम हल न कर पाएंगे।

और वह जो सदा हल के बाहर छूट जाता है, वही परमात्मा है। वह जो हमारी सब कोशिश के बाद भी अज्ञेय, अननोएबल रह जाता है, जिसके पास जाकर हम अवाक हो जाते हैं, जिसके पास जाकर हमारा हृदय ठक से रुक जाता है, जिसके पास जाकर हमारे विचार की परंपरा एकदम टूट जाती है, जिसके पास हम अपना सुध—बुध खो देते हैं, जिसके पास हम मस्ती से तो भर जाते हैं, लेकिन जानकारी बिलकुल खो जाती है, उस तत्व का नाम ही परमात्मा है। वही है मिस्टीरियम, रहस्यमय।

तो कृष्ण कहते हैं, आसुरी संपदा वाला व्यक्ति मानता है, कोई रहस्य नहीं है। जगत तथ्यों का एक जोड़ है, सब जाना जा सकता है।

इसलिए आसुरी संपदा वाले व्यक्ति को न तो जीवन में कोई काव्य दिखाई पड़ता, न कोई सौंदर्य दिखाई पड़ता, न कोई प्रेम दिखाई पड़ता; क्योंकि ये सभी तत्व रहस्यपूर्ण हैं। आसुरी संपदा वाला व्यक्ति जीवन को गणित से नापता है, सभी चीजों को नापता—तौलता है। और सभी चीजों को पदार्थ की तरह व्यवहार करता है। इस जगत में उसे कोई व्यक्तित्व नहीं दिखाई पड़ता। यह जगत जैसे एक मिट्टी का जोड़ है, पदार्थ का जोड़ है। और यहां जो भी घट रहा है, यह सांयोगिक है, एक्सिडेंटल है।

पश्चिम के एक बड़े नास्तिक दिदरो ने लिखा है कि जगत का न तो कोई बनाने वाला है, न जगत के भीतर कोई रचना की प्रक्रिया है, न इस जगत का कोई सृजनक्रम है। जगत एक संयोग, एक एक्सिडेंट है। घटते—घटते, अनंत घटनाएं घटते—घटते यह सब हो गया है। लेकिन इसके होने के पीछे कोई राज नहीं है।

अगर दिदरो की बात सच है, उसका तो अर्थ यह हुआ कि अगर हम कुछ ईंटों को फेंकते जाएं, तो कभी रहने योग्य मकान दुर्घटना से बन सकता है। सिर्फ फेंकते जाएं! या एक प्रेस को हम बिजली से चला दें और उसके सारे यंत्र चलने लगें, तो केवल संयोग से गीता जैसी किताब छप सकती है।

दैवी संपदा वाला व्यक्ति देखता है कि जगत में एक रचना—प्रक्रिया है। जगत के पीछे चेतना छिपी है। और जगत के प्रत्येक कृत्य के पीछे कुछ राज है। और राज कुछ ऐसा है कि हम उसकी तलहटी तक कभी न पहुंच पाएंगे, क्योंकि हम भी उस राज के हिस्से हैं; हम उसके स्रोत तक कभी न पहुंच पाएंगे, क्योंकि हम उसकी एक लहर हैं।

मनुष्य कुछ अलग नहीं है इस रहस्य से। वह इस विराट चेतना में जो लहरें उठ रही हैं, उसका ही एक हिस्सा है। इसलिए न तो वह इसके प्रथम को देख पाएगा, न इसके अंतिम को देख पाएगा। दूर खड़े होकर देखने की कोई सुविधा नहीं है। हम इसमें डूबे हुए हैं। जैसे मछली को कोई पता नहीं चलता कि सागर है। और मछली सागर में रहती है, फिर भी सागर का क्या रहस्य जानती है! वैसी ही अवस्था मनुष्य की है।

जितना ही ज्यादा दैवी संपदा की तरफ झुका हुआ व्यक्ति होगा, उतना ही तर्क पर उसका भरोसा कम होने लगेगा, उतना ही काव्य पर उसकी निष्ठा बढ़ने लगेगी, उतना ही वह जगत में सब तरफ उसे रहस्य की पगध्वनि सुनाई पड़ने लगेगी। फूल खिलेगा, तो उसे परमात्मा का इंगित दिखाई पड़ेगा।

वैज्ञानिक के सामने भी फूल खिलता है, तो वैज्ञानिक उसमें कुछ तथ्यों की खोज करता है। वह देखता है कि फूल में जरूर कोई कारण है! क्यों खिला है? तो फूल की केमिकल परीक्षा करता है, जांच—पड़ताल करता है, उसके रसों की जांच—पड़ताल करता है, और एक नियम तय करता है कि इसलिए खिला है।

धार्मिक व्यक्ति, दैवी संपदा का व्यक्ति फूल का विश्लेषण नहीं करता, लेकिन फूल का जो संकेत है, जो सौंदर्य है, फूल का जो खिलना है, वह जो जीवन का प्रकट होना है, उस इशारे को पकड़ता है। और तब एक फूल उसके लिए परमात्मा का प्रतीक हो जाता है। तब एक छोटी—सी हिलती हवा में पत्ती भी उसके लिए परमात्मा का कंपन हो जाती है। तब यह सारा जगत परमात्मा का नृत्य हो जाता है।

परमात्मा से अर्थ है, रहस्य। परमात्मा से आप यह मत सोचना कि कहीं आकाश में कोई बैठा हुआ व्यक्ति। परमात्मा का अर्थ है, यह जगत रहस्यपूर्ण है। और जैसे ही यह जगत रहस्यपूर्ण होता है, वैसे ही हमारे हृदय में एक नया स्पंदन शुरू होता है।

आज अगर दुनिया में इतनी ऊब, इतनी उदासी, इतनी बोर्डम है, तो उसका कारण आसुरी संपदा वाली विचार—धारा का प्रभाव है। क्योंकि जीवन में जब कोई रहस्य न हो, तो रस भी न होगा। और जब सब चीजें मिट्टी—पत्थर का जोड़ हों..।

अगर दो व्यक्तियों में प्रेम हो जाए, वैज्ञानिक से पूछें, बायोलाजिस्ट से पूछें, तो वह कहता है कि कुछ खास बात नहीं, सिर्फ हार्मोन्स की ही बात है। इन दोनों व्यक्तियों में जो भीतर शरीर में हार्मोन्स बन रहे हैं, वह जो रासायनिक प्रक्रिया हो रही है, उसमें आकर्षण है। उस आकर्षण की वजह से इनको प्रेम वगैरह का खयाल पैदा हो रहा है। प्रेम सिर्फ खयाल है, असली चीज हार्मोनल आकर्षण है।

विज्ञान सभी चीजों को समझा देता है। यह जानकर आपको आश्चर्य होगा कि हम इस मुल्क में विज्ञान को अविद्या कहते थे। पुराने दिनों में ऋषियों ने ज्ञान के दो हिस्से किए हैं, विद्या और अविद्या। विद्या उस जान को कहा है, जो दैवी संपदा की तरफ ले जाता है। और अविद्या उस ज्ञान को कहा है, जो आसुरी संपदा की तरफ ले जाता है।

विज्ञान अविद्या है। जानना तो वहा बहुत होता है, लेकिन फिर भी जानने का जो परम लक्ष्य है, वह चूक जाता है।

अगर हम वैज्ञानिक को कहें, भीतर आदमी के आत्मा है। तो वह शरीर को काटने को तैयार है, वह काटकर शरीर को देखने को तैयार है। काटने पर आत्मा मिलती नहीं। यह वैसे ही है, जैसे कि पिकासो का एक सुंदर चित्र हो, और हम कहें, बहुत सुंदर है। और वैज्ञानिक उसको काटकर, प्रयोगशाला में ले जाकर, सब रंगों को अलग करके, विश्लिष्ट करके और कह दे कि ये सब रंग अलग—अलग रखे हुए हैं, सौंदर्य कहीं भी नहीं है।

चित्र को काटकर सौंदर्य नहीं खोजा जा सकता। क्योंकि चित्र का सौंदर्य चित्र की परिपूर्णता में है, वह उसकी होलनेस में था, वह रंगों के जोड़ में था। जैसे ही तोड़ लिया, जोड़ समाप्त हो गए, सौंदर्य खो गया।

आदमी की आत्मा उसके अंग—अंग को काटकर नहीं पकड़ी जा सकती। वह उसकी समग्रता में है, वह सौंदर्य की तरह उसकी समग्रता में छिपी है। उसकी समग्रता अखंडित रहे, तो ही आत्मा को पहचाना जा सकता है। उसकी खंडित स्थिति हो, आत्मा खो गई। यह जगत अखंडता है। इस अखंडता के भीतर जो छिपा हुआ रहस्य है, उसका नाम परमात्मा है।

आसुरी प्रकृति वाले मनुष्य कहते हैं, जगत आश्चर्यरहित और सर्वथा झूठा है और बिना ईश्वर के अपने आप स्त्री—पुरुष के संयोग से उत्पन्न हुआ है। इसलिए जगत केवल भोगों को भोगने के लिए है। इसके सिवाय और क्या है!

अगर कोई रहस्य नहीं, तो फिर कोई गंतव्य नहीं। अगर कोई छिपी हुई नियति नहीं, तो पहुंचने का कोई अर्थ नहीं, कहीं जाने को नहीं। फिर आप यहां हैं, और इस क्षण जिस बात में भी सुख मिलता हुआ मालूम पड़े, उसको कर लेना उचित है।

चार्वाकों ने कहा है कि उधार लेकर भी अगर घी पीना पड़े, तो चिंता मत करना, उधार लेना। क्योंकि मरने के बाद न लेने वाला बचता है, न देने वाला। तब चोरी में कोई बुराई नहीं, अगर सुख मिलता हो। तब किसी से छीनकर कोई चीज भोग लेने में कुछ हर्ज नहीं, अगर सुख मिलता हो। क्योंकि जीवन की कोई परम गति नहीं है और न कोई परम नियंत्रण है, और न जीवन का कोई अर्थ है, जो आपको आगे की तरफ खींचना है। इस क्षण जो भोगने योग्य लगता हो, उसे पागल की तरह भोग लेना ही आसुरी संपदा वाले व्यक्ति के जीवन का ढंग और शैली होगी।

इस सारी दौड़ के पीछे दौड़ता हुआ कोई सूत्र नहीं है। जैसे एक माला हम बनाते हैं, उसमें मनके हैं और भीतर हर मनके के दौड़ता हुआ एक धागा है। वह धागा दिखाई नहीं पड़ता, मनके दिखाई पड़ते हैं। वह धागा सब मनकों को बांधे है, पर अदृश्य है।

दैवी संपदा वाले व्यक्ति के जीवन का प्रत्येक कृत्य एक मनका है। और प्रत्येक मनके को वह भीतर के एक प्रयोजन से बांधे हुए है, एक लक्ष्य, एक जीवन की दिशा, एक जीवन की परिपूर्ण कृतकृत्यता का भाव। जीवन कहीं जा रहा है, एक नियति, वह उसका धागा है। तो वह जो भी कर रहा है, हर मनके को उस धागे में बांधता जा रहा है। कृत्य मनकों की तरह अलग—अलग हैं और उसका जीवन .एक धागे की तरह सारे मनकों को सम्हाले हुए है, एक इंटीग्रेशन।

आसुरी संपदा वाले व्यक्ति के जीवन में कोई धागा नहीं है। हर कृत्य टूटा हुआ मनका है। दो मनकों में कोई जोड़ नहीं है। इसलिए आसुरी संपदा वाला व्यक्ति करीब—करीब विक्षिप्त की तरह जीता है। उसकी न कोई दिशा है, न कोई गंतव्य है। बस, हर क्षण जहां हवाएं ले जाएं, जो सूझ जाए वासना को, जो भीतर का धक्का आ जाए, या परिस्थिति जिस तरफ झुका दे, या लोभ जिस तरफ आकर्षित कर ले, बस वह वैसा दौड़ता चला जाता है।

जैसे आपके सामने एक सितार रखा हो और आप उसको ठोंकते जाएं, तार खींचते जाएं; और आपको सितार के शास्त्र का कोई भी ज्ञान न हो, संगीत की कोई प्रतीति न हो, दो स्वरों के बीच जोड़ का कोई अनुभव न हो, स्वरों का एक प्रवाह बनाने की कोई कला न हो, स्वरों की सरिता निर्मित न कर सकते हों, तो आप सिर्फ एक उपद्रव मचाएंगे। शोरगुल होगा बहुत, संगीत नहीं हो सकता। क्योंकि संगीत तो सभी सुरों को मनके की तरह जब आप धागे में बांधते हैं, तब पैदा होता है।

दैवी संपदा वाला व्यक्ति जीवन में संगीत निर्मित करने की चेष्टा में लगा रहता है। वह जो काम भी करता है, सोचता है कि यह मेरे पूरे जीवन में कहां बैठेगा, यह मेरे पूरे जीवन को क्या रंग देगा, इससे मेरा आज तक का जीवन किस मोड़ पर मुड़ जाएगा, यह मेरे पूरे जीवन को मिलकर कौन—सा नया अर्थ, अभिव्यक्ति देगा। इसलिए प्रत्येक कृत्य एक अर्थ, एक अभिप्राय, एक प्रयोजन और एक नियति के साथ मेल बनाता है।

आसुरी संपदा वाला व्यक्ति इस क्षण में उसे जो सूझता है, कर लेता है। उसका कृत्य टूटा हुआ है, आणविक है। और उसका लक्ष्य सिर्फ इतना है, आज भोग लूं, कल का क्या भरोसा है!

उमर खय्याम की रुबाइयात, अगर उसके गहरे सूफी अर्थ आपको पता न हों, तो आसुरी संपदा वाले व्यक्ति का वक्तव्य मालूम पड़ेगा। उमर खय्याम की रुबाइयात में बड़ी मधुर कल्पना है। अगर आपको उसका सूफी रहस्य पता हो, तब तो वह एक अदभुत ग्रंथ है। सूफी रहस्य का पता न हो, तो आपको लगेगा, भोग का एक आमंत्रण है।

उमर खय्याम सुबह—सुबह ही पहुंच गया मधुशाला के द्वार पर। अभी कोई जागे भी नहीं; रात थके—मांदे नौकर सो गए हैं। सुबह ब्रह्ममुहूर्त में, अभी सूरज भी नहीं निकला, वह दरवाजा खटखटा रहा है। भीतर से कोई आवाज देता है कि अभी मधुशाला के खुलने में देर है।

तो वह कहता है, लेकिन देर तक प्रतीक्षा करना संभव नहीं। एक क्षण के बाद का भरोसा नहीं। और यह क्षण चूक जाए पीने का, तो कौन आश्वासन देता है कि अगले क्षण मैं बर्न और पीने की मुझे सुविधा रहेगी! इसलिए द्वार खोलो। देर मत करो। सूरज निकलने के करीब हो गया। और सूरज ने अपनी किरणों का जाल फेंक दिया जगत पर। और जब किरणों का जाल जगत पर सूरज फेंक देता है, तो संध्या होने में ज्यादा देर नहीं।

वह जो आसुरी संपदा वाला व्यक्ति है, उसे मृत्यु लगती है, बस आ रही है। क्षणभर हाथ में है, इसे भोग लूं? निचोड़ लूं? पी लूं। भोग ही लक्ष्य हो जाता है; योग बिलकुल खो जाता है।

ध्यान रहे, योग का अर्थ ही है, दो मनकों को जोड़ देना। जब जीवन के सारे मनके जुड़ जाएं, तो आप योगी हैं। और जीवन के मनकों का ढेर लगा हो, कोई धागा न हो जोड्ने वाला, तो आप भोगी हैं।

भोगी और योगी दोनों के पास मनके तो बराबर होते हैं। लेकिन योगी ने एक संगति बना ली, योगी ने सब मनकों को जोड़ डाला। उसके सब अक्षर जीवन के एक संयुक्त काव्य बन गए एक कविता बन गए। भोगी अक्षरों का ढेर लगाए बैठा है। उसके पास भाषाकोश है। सब अक्षरों का ढेर लगा हुआ है। लेकिन दो अक्षरों को उसने जोड़ा नहीं, इसलिए कोई कविता का जन्म नहीं हुआ है। और जीवन के अंत में, वह जो हमने धागा निर्मित किया है, वही हमारे साथ जाएगा, मनके छूट जाते हैं। मनके सब यहीं रह जाते हैं। इस प्रकार इस मिथ्या—ज्ञान को अवलंबन करके नष्ट हो गया है स्वभाव जिनका तथा मंद है बुद्धि जिनकी, ऐसे वे सबका अहित करने वाले क्रूरकर्मी मनुष्य केवल जगत का नाश करने के लिए ही उत्पन्न होते हैं।

इस मिथ्या—ज्ञान का अवलंबन करके—कि भोग ही सब कुछ है, योग जैसा कुछ भी नहीं, साधना कुछ भी नहीं है, पहुंचना कहीं भी नहीं है, जीवन का कोई गंतव्य, लक्ष्य नहीं है, जीवन एक संयोग है, एक दुर्घटना है, जिसके पीछे कोई अर्थ पिरोया हुआ नहीं है, शब्दों की एक भीड़ है, कोई सुसंगत काव्य नहीं—ऐसा जिसका मिथ्या—ज्ञान है और इसका अवलंबन करके नष्ट हो गया स्वभाव जिसका......।

इस तरह की धारणाओं में जो जीएगा, वह अपने स्वभाव को अपने हाथ से तोड़ रहा है, क्योंकि स्वभाव तो परम संगीत को उपलब्ध करने में ही छिपा है। स्वभाव तो परम नियति को प्रकट कर लेने में छिपा है। स्वभाव तो इस जगत का जो आत्यंतिक रहस्य है, उसके साथ एक हो जाने में छिपा है। मैं अपने स्वभाव को तभी उपलब्ध होऊंगा, जब मैं बिलकुल शून्य होकर, शांत होकर इस जगत के पूरे अस्तित्व के साथ अपने को एक कर लूं।

स्वभाव यानी परमात्मा। स्वभाव मिथ्या धारणाओं में नष्ट हो जाएगा, खो जाएगा।

और मंद हो गई है बुद्धि जिसकी.......।

और इस तरह की बातें जिस पर बहुत प्रभाव करेंगी, उसकी बुद्धि धीरे— धीरे मंद हो जाएगी। मंद होने का यह मतलब नहीं है कि उसका तर्क क्षीण हो जाएगा। अक्सर तो आसुरी संपदा वाला व्यक्ति बड़ा तार्किक होता है, बड़ी प्रखर उसके पास तर्क की व्यवस्था होती है।

लेकिन फिर भी कृष्ण कहते हैं, मंद हो गई है बुद्धि जिसकी..। क्योंकि तर्क को हमने इस देश में कभी बुद्धि नहीं माना। तर्क को हमने बच्चों का खेल माना है। बुद्धि से तो हमारा प्रयोजन उस क्षमता से है, जो जीवन को आर—पार देख लेती है; जो जीवन के छिपे हुए रहस्य—परतों में उतर जाती है; जो जीवन के अंतःस्तल को स्पर्श कर लेती है, उसे हम बुद्धि कहते हैं।

आधुनिक युग में जिसे हम बुद्धि कहते हैं, वह केवल तर्क की व्यवस्था है। अगर कोई व्यक्ति काफी तर्क कर सकता है, आर्ग्यू कर सकता है, विवाद कर? सकता है, तो हम कहते हैं, बड़ा बुद्धिमान है।

तुर्गनेव ने एक छोटी कहानी लिखी है। उसने लिखा है, एक गांव में एक मूढ़ आदमी था, निपट गंवार था, और सारा गांव उस पर हंसता था। उस गांव में एक फकीर का आगमन हुआ। तो उस मूढ़ आदमी ने फकीर से कहा कि मुझ पर सारा गांव हंसता है, लोग मुझे मूर्ख समझते हैं। मुझे कुछ रास्ता बताओ। थोड़ी बुद्धि मुझे दो। फकीर ने कहा, यह तो जरा कठिन काम है तुझे बुद्धि देना, लेकिन तुझे एक तरकीब बता देता हूं जिससे तू बुद्धिमान हो जाएगा। उसने कहा, वही दे दो बस, और मुझे कुछ चाहिए नहीं। तो उस फकीर ने उसके कान में कुछ मंत्र दिया, और कहा, बस, तू इसका उपयोग कर।

एक सप्ताह के भीतर गांव में ही नहीं, गांव के आस—पास, दूर—दूर तक, राजधानी तक खबर पहुंच गई कि वह आदमी बड़ा बुद्धिमान है। फकीर ने उससे क्या कहा? फकीर ने उससे कहा कि एक छोटा—सा सूत्र याद रख! अगर कहीं कोई कह रहा हो कि बाइबिल महान पुस्तक है, तो तू कहना, कौन कहता है, बाइबिल महान पुस्तक है! दो कौड़ी की है, उसमें कुछ भी नहीं है। अगर कोई कहे, यह चित्र बड़ा सुंदर है; तो तू कहना, क्या है इसमें, रंगों का पोतना, सौंदर्य कहीं भी नहीं है। कहां है? दिखाओ मुझे सौंदर्य!

जोर से कहना और इनकार करना, कोई कुछ भी कह रहा हो। वह हर चीज का खंडन करने लगा। और बड़ा मुश्किल है। आप कहें, यह चांद सुंदर है। मूढ़ आदमी भी खड़ा होकर कह दे कि सिद्ध करो! कैसे सिद्ध करिएगा कि चांद सुंदर है? क्या उपाय है? कोई उपाय नहीं है। अब तक दुनिया में कोई सिद्ध नहीं कर सका कि चांद सुंदर है। वह तो हम सुन लेते हैं चुपचाप, लोग कहते हैं। अगर आप न सुनें, बस कठिन हो गया काम।

उस आदमी ने सबको गलत सिद्ध करना शुरू कर दिया। क्योंकि जो भी कुछ कहे, ज्यादा कुछ कहने की जरूरत नहीं थी, मंत्र सीधा था। सिर्फ इनकार करना है तुझे, और तू कुछ सिद्ध करने की फिक्र ही मत करना। जो दूसरा कह रहा हो, उसको भर कहना कि सिद्ध करो।

न सौंदर्य सिद्ध होता है, न सत्य सिद्ध होता है, न परमात्मा सिद्ध होता है, सिद्ध तो कुछ किया नहीं जा सकता। लेकिन लोग समझे कि यह आदमी महान विद्वान हो गया है। इसकी बुद्धि बड़ी प्रखर है। हम इस युग में इसी तरह के बुद्धओं को बुद्धिमान कहते हैं। कृष्ण उनको बुद्धिमान नहीं कहते। कृष्ण उसको बुद्धिमान कहते हैं, जिसने अपनी चेतना—ऊर्जा में, जीवन के परम रहस्य में प्रवेश का मार्ग खोज लिया है। जिसने अपनी चेतना को मार्ग बना लिया है, वही बुद्धिमान है।

मिथ्या धारणाओं का अवलंबन करके नष्ट हो गया स्वभाव जिनका, मंद है बुद्धि जिनकी, ऐसे व्यक्तियों को कृष्ण ने कहा कि वे आसुरी संपदा वाले हैं।

इसकी अपने भीतर तलाश करना। और जहां भी आसुरी संपदा का थोड़ा—सा भी झुकाव मिले, उसे उखाड़कर फेंक देना।

मजे की बात यह है कि जैसे कोई लान लगाए दूब लगाए घर में, तो उसमें व्यर्थ का कूड़ा—कचरा भी पैदा होना शुरू होता है। उसे उखाड़—उखाड़कर फेंकना पड़ता है। मजे की बात यह है कि दूब लगाते हैं आप, कूड़ा—कचरा अपने आप आता है। और अगर दूब को आप न बचाएं तो वह मर जाएगी। और अगर कूड़े—कचरे को न फेंकें, तो वह बिना मेहनत किए बढ़ता जाएगा। धीरे—धीरे वह सारी दूब पर छा जाएगा, दूब को खा जाएगा। कूड़ा—कचरा ही रह जाएगा। आसुरी संपदा बड़ी सरलता से बढ़ती है। बढ़ने का कारण है। जैसे पानी नीचे की तरफ बहता है। ऊपर चढ़ाना हो, तो पंप करने की व्यवस्था बिठानी पड़ती है, मेहनत करनी पड़ती है। नीचे अपने आप जाता है।

वह जो आसुरी संपदा है, नीचे की तरफ उतरना है। उसमें चढ़ाव नहीं है, इसलिए श्रम नहीं पड़ता। हम सब उसमें ढलकते हैं अपने आप। और जब तक हम सचेत न हों, तब तक रुकना बहुत मुश्किल है। सचेत हों।

तो ध्यान रखना, जब भी नीचे उतरने का मन हो, तब अपने को रोकना। चाहे श्रम भी पड़े, तो भी दैवी संपदा की तरफ कदम रखना। वह पहाड़ की चढ़ाई है। पसीना उसमें आएगा, थकान भी होगी। लेकिन उसके मधुर फल हैं। और उसका अंतिम फल मोक्ष की मधुरता है।

गीता दर्शन–(भाग–7)
अध्याय—16 (प्रवचन—पांचवां) — शोषण या साधना

सूत्र
काममाश्रित्य दुष्पूरं दम्भमानमदान्विताः ।
मोहाङ्गहीत्वीसद्ग्राहागर्क्तन्तेउशुचिव्रताः ।।10।।
चिन्तामपरिमेयां च प्रलयान्तामुयश्रिताः ।
कामोयभोगपरमा एतावदिति निश्चिताः ।।11।।
आशापाशशातैर्बद्धाः कामक्रोधयरायणा ।
ईहन्ते कामभोगार्थमन्यायेनार्श्रसंचयान्।।12।।
और वे मनुष्य दंभ, मान और मद से युक्त हुए किसी प्रकार भी न पूर्ण होने वाली कामनाओं का आसरा लेकर तथा मोह से मिथ्या सिद्धांतों को ग्रहण करके भ्रष्ट आचरणों से युक्त हुए संसार में बर्तते हैं।

तथा वे मरणपर्यंत रहने वाली अनंत चिंताओं को आश्रय किए हुए और विषय— भोगों को भोगने के लिए तत्पर हुए, इतना मात्र ही आनंद है, ऐसा मानने वाले हैं।

इसलिए आशारूप सैंकड़ों फांसियों से बंधे हुए और काम— क्रोध के परायण हुए विषय—भोगों की पूर्ति के लिए अन्यायपूर्वक धनादिक बहुत— से पदार्थो को संग्रह करने की चेष्टा करते हैं।

पहले कुछ प्रश्न।
पहला प्रश्न :
कल के सूत्र में कहा गया कि आसुरी संपदा वाले कहते हैं कि जगत आश्चर्यरहित है और सर्वथा झूठा है। विज्ञान यह अवश्य सोचता था कि जगत में कुछ रहस्य नहीं है, लेकिन यह तो वह नहीं कहता कि जगत झूठा है। इसे समझाएं।
असुरी संपदा वाले लोग जगत को रहस्यशून्य और झूठा मानते हैं, ऐसा कहने का कृष्ण का प्रयोजन काफी गहरे से समझेंगे, तो ही समझ में आ सकेगा। साधारणत: तो धार्मिक, दैवी संपदा वाले पुरुष जगत को माया कहते हैं, जगत को झूठा कहते हैं। इसलिए बात थोड़ी उलझी हुई है। लेकिन दोनों के प्रयोजन अलग हैं।

शंकर या दूसरे अद्वैतवादी जब जगत को माया या असत्य कहते हैं, तो उनका प्रयोजन केवल इतना ही है कि इस जगत से भी सत्यतर कुछ और है। यह एक सापेक्ष वक्तव्य है। यह जगत ही सत्य नहीं है, इस जगत से ज्यादा सत्यतर कुछ और है। और उस सत्यतर की खोज की तरफ हम अग्रसर हो सकें, इसलिए वे इस जगत को झूठा कहते हैं। इस जगत को झूठा सिद्ध करने का इतना ही प्रयोजन है, ताकि हम इसी को सत्य मानकर इसी की खोज में न उलझ जाएं। सत्य कहीं और छिपा है। और इसे हम असत्य समझेंगे, तो ही उस सत्य की खोज में जा सकेंगे।

लेकिन कृष्ण यहां। कह रहे हैं कि आसुरी संपदा वाले लोग इस जगत को झूठा कहते हैं। इस वक्तव्य का प्रयोजन बिलकुल दूसरा है। आसुरी संपदा वाले लोग इस जगत को झूठा इसलिए नहीं कहते कि कोई और जगत है, जो सत्य है। वे कहते हैं, सत्य है ही नहीं। इसलिए जो भी है, वह झूठ है। इस फर्क को ठीक से समझ लें। शंकर कहते हैं, यह जगत मिथ्या है, असत्य है, माया है। क्योंकि सत्य कहीं और है और उस सत्य की तुलना में यह झूठा है। आसुरी संपदा वाले लोग कहते हैं, यह संसार झूठा है, क्योंकि सत्य कुछ है ही नहीं। यह किसी तुलना में असत्य नहीं है, क्योंकि सत्य है ही नहीं है, इसलिए जो भी है, वह असत्य है। उनका ऐसा मानने और कहने का प्रयोजन समझने जैसा है।

जगत को असत्य अगर कह दिया जाए, और कोई सत्य हो न, तो फिर जीवन में कोई मूल्य, जीवन में कोई लक्ष्य, कोई गंतव्य नहीं रह जाता, फिर बुरे और भले का कोई भेद नहीं रह जाता।

आप स्वप्न में देखें कि आप साधु हैं या स्वप्न में देखें कि असाधु हैं, क्या फर्क पड़ता है! दोनों ही स्वप्न हैं। स्वप्न में किसी की हत्या करें या स्वप्न में किसी को बचाएं, क्या फर्क पड़ता है! दोनों ही स्वप्न हैं। दो स्वप्नों के बीच कोई मूल्य का भेद नहीं हो सकता। सत्य और स्वप्न के बीच मूल्य का भेद हो सकता है। लेकिन अगर दोनों ही स्वप्न हैं, तो फिर कोई भी भेद नहीं।

आसुरी संपदा वाला व्यक्ति मानता है, यह सब असत्य है। सब असत्य का उसके कहने का प्रयोजन इतना ही है कि यह जगत एक संयोग है। यह जगत एक रचना—प्रक्रिया नहीं है। इस जगत के पीछे कोई प्रयोजन अंतर्निहित नहीं है। यह जगत कहीं जा नहीं रहा है। इस जगत की कोई मंजिल नहीं है। हम सिर्फ दुर्घटनाएं हैं। न कुछ पाने को है यहां, न कुछ खोने को है। हमारे होने का कोई मूल्य नहीं है। हमारा होना मीनिंगलेस है, सर्वथा मूल्यरहित है।

अगर जगत में थोड़ा भी सत्य है, तो मूल्य पैदा हो जाएगा; तब चुनाव करना होगा, असत्य को छोड़ना होगा, सत्य को पाना होगा। फिर असत्य और सत्य के बीच हमें यात्रा करनी पड़ेगी; साधना—पथ निर्मित होगा। लेकिन अगर सभी कुछ असत्य है, कुछ पाने योग्य नहीं, कुछ खोने योग्य नहीं; बुरा आदमी भी, भला आदमी भी, असाधु, साधु, संत, अज्ञानी या ज्ञानी सब बराबर हैं—फिर कोई भेद नहीं है।

और अगर बुरे और भले का भेद मिट जाए, तो आसुरी संपदा वाले व्यक्ति को जो सुख मिलता है, वह किसी और तरह से नहीं मिलता। क्योंकि आसुरी संपदा वाले व्यक्ति की यही पीड़ा है कि कहीं ऐसा न हो कि मैं जो कर रहा हूं वह गलत हो। कहीं ऐसा न हो कि जिस धारा के मैं विपरीत चल रहा हूं उस धारा में ही सत्य छिपा हो! कहीं ऐसा न हो कि प्रार्थना में, पूजा में, परमात्मा में कोई सत्य छिपा हो! मैं जैसा जीवन को चला रहा हूं यह अगर असत्य है, तो फिर मैं कुछ खो रहा हूं।

लेकिन अगर सभी कुछ असत्य है, तो फिर खोने—पाने का कोई सवाल नहीं है। तब महावीर कुछ पा नहीं रहे हैं, बुद्ध को कुछ मिल नहीं रहा है, वे भी भ्रम में हैं। जो धन कमाकर इकट्ठा कर रहा है, वह भी भ्रम में है। वह जो स्त्रियों के पीछे दौड़ रहा है, वह भी भ्रम में है। जो परमात्मा के पीछे दौड़ रहा है, वह भी भ्रम में है।

आसुरी संपदा वाला यह कहता है कि जो भी यहां मंजिल खोज रहा है, जो भी यहां जीवन में निहित किसी प्रयोजन की तलाश कर रहा है, जो भी सोचता है कि यहां कोई सत्य मिल जाएगा, अमृत मिल जाएगा, जीवन मिल जाएगा, कोई परम उपलब्धि होगी, कोई मोक्ष मिल जाएगा, वह भांति में है। यह पूरा जगत असत्य है। यहां कुछ पाने जैसा नहीं है।

एक बार यह साफ हो जाए कि सभी कुछ असत्य है, तो जीवन में साधना का कोई अर्थ नहीं रह जाता। साधना में अर्थ आता है तभी, जब जीवन में कुछ चुनने को हो। कुछ गलत हो, जो छोड़ा जा सके, कुछ सही हो, जो पकड़ा जा सके। कोई दिशा भ्रांत हो, जिस तरफ पीठ की जा सके, कोई दिशा सही हो, जिस तरफ मुख किया जा सके। कहीं पहुंचने की कोई मंजिल हो, कोई गंतव्य हो, कोई तारा हो—कितने ही दूर—लेकिन जिस तरफ हम चल सकें।

आसुरी संपदा वाला व्यक्ति कहता है, यहां चलने का कोई उपाय नहीं है। तुम यहां हो एक दुर्घटना की तरह। यह एक आकस्मिक घटना है। जगत को न कोई चला रहा है, न कोई जगत को सोच रहा है, न जगत के पीछे कोई चेतना है। जगत एक सांयोगिक घटना है। सांयोगिक घटना का अर्थ यह होता है कि इसमें कुछ भी प्रयोजन खोजना व्यर्थ है। प्रयोजन नहीं है, अर्थ नहीं है, कोई मूल्य नहीं है, इस बात की घोषणा करने के लिए आसुरी संपदा वाला व्यक्ति कहता है, जगत झूठा है।

दैवी संपदा वाला व्यक्ति भी जगत को मिथ्या कहता है। यहां यह बात खयाल में लेनी जरूरी है कि कभी—कभी हमारे एक से वक्तव्य भी बड़े भिन्न अर्थ रखते हैं। वक्तव्य का बहुत कम मूल्य है। वक्तव्य कौन देता है, इसी का मूल्य ज्यादा है। वही वक्तव्य राम के मुंह से अलग अर्थ रखेगा, वही वक्तव्य रावण के मुंह से अलग अर्थ रखेगा। वक्तव्य बिलकुल एक जैसे हो सकते हैं, लेकिन वक्तव्य के पीछे नजर क्या है?

अगर राम कहते हैं, जगत मिथ्या है, तो इसका अर्थ यह है कि इस पर रुको मत; सत्य कहीं और है, उसे खोजो। रावण अगर कहे, जगत मिथ्या है, तो वह यह कहता है कि कहीं जाने की कोई जरूरत नहीं, सत्य है ही नहीं, इसलिए यहां जो मिला है, उसे भोग लो। यह क्षणभर का भोग है, न इसके पीछे कुछ है, न इसके आगे कुछ है। और परिणाम की बिलकुल चिंता मत करो। क्योंकि परिणाम केवल सत्य जगत में ही घटित हो सकते हैं; असत्य जगत में कोई परिणाम घटित नहीं होते।

मैंने सुना है, एक आदमी ने रात स्वप्न देखा। फिर सुबह वह जब बाजार की तरफ चला, तो बड़ा उदास था। किसी मित्र ने उसे पूछा कि इतने उदास हो, बात क्या है? उसने कहा, मैंने एक स्वप्न देखा है। और स्वप्न में मैंने देखा कि मुझे बीस हजार रुपए पड़े हुए रास्ते पर मिल गए हैं। तो मित्र ने कहा, इसमें भी उदास होने की क्या बात है! यह तो सपना है। सपने के रुपयों की क्या चिंता करनी, क्या उदासी! उस आदमी ने कहा, उससे मैं परेशान नहीं हूं। मैंने यह पत्नी को बता दिया और वह सुबह से ही रो—पीट रही है। वह कहती है, उसी वक्त बैंक में जमा क्यों न कर दिए?

स्वप्न में भी मोह तो हमारा पकडता है। वह जो झूठ है, उसमें भी आसक्ति बनती है। वह जो नहीं है, उसको भी हम सम्हाल लेना चाहते हैं।

आसुरी संपदा वाला व्यक्ति यह कह रहा है कि ये स्वप्न में जो रुपए मिले हैं, इनको जमा कर ही देना। क्योंकि ये रुपए भी झूठ हैं, जमा करना भी झूठ है, बैंक भी झूठ है, जमा करने वाला भी झूठ है। स्वप्न ही झूठ नहीं है, जिसने स्वप्न देखा, वह भी झूठ है। जमा करने का मजा ले लेना। यद्यपि वह झूठ है; लेकिन नहीं जमा कर पाए, उसका दुख लेने की बजाय बेहतर है। दोनों झूठ हैं। यहां सुख भी झूठ है, दुख भी झूठ है। इसलिए क्षणभर की बात है; जो रुचिकर लगे, वह कर लेना।

इस भेद को खयाल में ले लें।

आसुरी संपदा वाला व्यक्ति कहता है, जो सुखपूर्ण मालूम पड़े, वह कर लेना, झूठ तो सभी कुछ है। दैवी संपदा वाला व्यक्ति कहता है कि सुख—दुख की फिक्र मत करना; जो सत्य हो, उसकी फिक्र करना, जो असत्य हो, उसको छोड़ना।

दैवी संपदा वाले के लिए सत्य कसौटी है। आसुरी संपदा वाले के लिए सुख कसौटी है। झूठ तो सभी है, इसलिए यह तो कोई उपाय ही नहीं है इसमें तौलने का कि कौन सा सच है, कौन सा झूठ है। एक ही उपाय है कि जिससे सुख मिलता हो।

नास्तिकों ने सदा एक दलील दी है, आस्तिक भी उस दलील का उपयोग करते हैं; पर दोनों के प्रयोजन बड़े भिन्न हैं। आस्तिक कहता है, यह कहा तुम दौड़ रहे हो स्त्री के पीछे, धन के पीछे, पद—प्रतिष्ठा के पीछे; ये सब झूठ हैं। नास्तिक भी कहता है कि ये सब झूठ हैं। लेकिन कहीं और दौड़ने को कोई जगह भी नहीं है। इस झूठ को भी छोड़ दें, तो कोई सत्य तो है नहीं, जिसको हम पकड़ लें। झूठ को हम खो सकते हैं, लेकिन सत्य को पा नहीं सकते—नास्तिक की दृष्टि में।

इसलिए खोने का भी क्या अर्थ है? सपना भी अगर मधुर देखा जा सकता है, तो देख लेना चाहिए। सिर्फ सपना होने से ही छोड़ने योग्य नहीं है। क्योंकि सत्य अगर कहीं होता, तो हम सपने को छोड़ भी देते। लेकिन सत्य कहीं है ही नहीं। इसलिए दो तरह के सपने हैं, सुखद और दुखद। जो सुखद सपनों को खोज लेता है, वह होशियार है। जो दुखद सपनों में पड़ा रहता है, वह नासमझ है। और सपने के अतिरिक्त कोई सत्य नहीं है। यह आसुरी संपदा वाले की वृत्ति है।

विज्ञान निश्चित ही आसुरी संपदा वाले से राजी है। दोनों कारणों से राजी है। एक तो इस कारण राजी है कि जगत में कोई रहस्य नहीं है, जगत में कोई छिपा हुआ राज नहीं है। जगत एक खुली किताब है। और अगर हम न पढ़ पाते हों, तो उसका केवल इतना ही अर्थ है कि हमें पढ़ने की कुशलता और बढ़ानी चाहिए।

विज्ञान जगत को दो हिस्सों में तोड़ता है, नोन और अननोन, ज्ञात और अज्ञात। वह जो अज्ञात है, वह कल ज्ञात हो जाएगा; जो आज ज्ञात है, वह भी कल अज्ञात था। एक दिन ऐसा आएगा, जब सब ज्ञात हो जाएगा; अज्ञात की कोटि नष्ट हो जाएगी।

धर्म जगत को तीन हिस्सों में तोड़ता है, ज्ञात, अज्ञात और अज्ञेय—नोन, अननोन और अननोएबल। वह जो अननोएबल है, अज्ञेय है, वह धर्म की विशिष्ट कोटि है। अज्ञात ज्ञात हो जाएगा; ज्ञात फिर अज्ञात हो सकता है। क्योंकि बहुत—से सत्य आदमी को ज्ञात हो गए, फिर खो गए।

अभी काबुल के करीब कोई पंद्रह वर्ष पहले एक छोटा—सा यंत्र मिला। समझना ही मुश्किल हुआ कि वह यंत्र क्या है। बहुत खोजबीन करने पर पता चला कि वह विद्‌युत पैदा करने की बैटरी है, और कोई पांच हजार वर्ष पुराना है। पांच हजार वर्ष पहले विद्‌युत पैदा करने का उपाय किन्हीं ने खोज लिया था, वह शांत हो गया था, फिर वह खो गया।

कुछ तीस वर्ष पहले पेरिस की एक लाइब्रेरी में सात सौ वर्ष पुराने पृथ्वी के नक्शे मिले। उन नक्यग्नें में पृथ्वी गोल बताई गई है, और उन नक्शों में अमेरिका भी अंकित है। तो यह खयाल गलत है कि कोलंबस ने अमेरिका खोजा। कोलंबस से बहुत साल पहले अमेरिका नक्‍शे पर अंकित है।

न केवल यही, बल्कि वह जो नक्शा मिला है सात सौ वर्ष पुराना, वह और भी अनूठा है। वह ऐसा है कि बिना हवाई जहाज के वह बन ही नहीं सकता। जब तक बहुत ऊंचाई से पृथ्वी न देखी जाए, तब तक पृथ्वी का वैसा नक्शा बनाने का कोई उपाय ही नहीं है।

तो न केवल वह नक्शा सिद्ध करता है कि अमेरिका पहले खोजा जा चुका था, फिर खो गया, वह यह भी सिद्ध करता है कि मनुष्य के पास वायुयान थे। तभी वह नक्शा बन सकता है। उसके बनने का कोई और रास्ता ही नहीं है। और वह नक्शा नब्बे प्रतिशत वैसा ही है, जैसा हम आज बनाते हैं। उसमें जरा—सा ही भेद है।

तो पहले तो यह खयाल था कि भेद भूल—चूक की वजह से हो गए होंगे। कुछ वैज्ञानिकों की धारणा है कि हो सकता है कि पृथ्वी में, जब वह नक्‍शा बनाया गया—क्योंकि सात सौ साल पहले जिसने बनाया, उसने उस पर नोट लिखा है कि वह किसी पुराने नक्‍शे की नकल कर रहा है—तो इस बात की संभावना ज्यादा है कि पृथ्वी में फर्क हो गए हैं, जब वह नक्‍शा बना होगा। इसलिए थोड़े से भेद हैं। लेकिन इतना तो बिलकुल ही स्पष्ट है कि वह बिना हवाई जहाज के, पृथ्वी का चक्कर न लगाया गया हो, तो उस नक्‍शे को बनाया ही नहीं जा सकता।

हिंदू तो बहुत समय से सोचते रहे हैं कि उनके पास पुष्पक विमान थे। और दुनिया की हर जाति के पास आकाश में उड़ने की कथाएं हैं।

जो ज्ञात है, वह अज्ञात हो जाता है; जो अज्ञात है, वह ज्ञात होता

रहता है। दिन और रात की तरह यह बदलाहट नोन और अननोन में होती रहती है। लेकिन धर्म कहता है, एक और चीज है, जो दोनों के पार है, वह अज्ञेय है। वह कभी ज्ञात भी नहीं होता, कभी अज्ञात भी नहीं होता।

हम परमात्मा को वही तत्व कहते हैं। वह सदा अज्ञेय ही बना रहता है। हम उसे जान भी लेते हैं, तब भी हम उसे पूरा जान नहीं पाते। और जो उसे जान लेता है, वह दावा नहीं कर पाता कि मैंने जान लिया। क्योंकि उसके जानने की एक अनिवार्य शर्त है कि जानने वाला उसे जानने में ही खो जाता है। इसलिए दावा करने को कोई पीछे बचता नहीं।

उपनिषदों ने कहा है, जो कहे कि मैं जानता हूं जानना कि उसे अभी कुछ पता नहीं। जानने वाले की शर्त ही यही है कि वह कह नहीं सकेगा कि मैं जानता हूं। क्योंकि वहां कोई मैं नहीं बचता। कबीर ने कहा है कि मैं खोजता था; और बहुत खोजा और तू न मिला। और जब तू मिला तब बड़ी अड़चन हुई, क्योंकि तब तक मैं खो चुका था।

अगर ठीक से समझें, तो मनुष्य और परमात्मा का मिलन कभी भी नहीं होता। क्योंकि जब तक मनुष्य होता है, तब तक परमात्मा से मिलना नहीं हो पाता। और जब परमात्मा प्रकट होता है, तब तक मनुष्य पिघलकर उसमें लीन हो गया होता है। इसलिए मिलन की घटना नहीं घटती दो के बीच। या तो मनुष्य होता है, या परमात्मा होता है।

एक अमेरिकी विचारक एलन वाट एक झेन फकीर के पास साधना कर रहा था। उस झेन फकीर ने एलन वाट को पूछा कि तुम क्या खोज रहे हो? ध्यान तुम कर रहे हो किस लिए? तो एलन वाट ने कहा कि परमात्मा की तलाश के लिए। तो वह झेन फकीर हंसने लगा। उसने कहा कि तुम बड़े अजीब काम में लगे हो। यह काम पूरा हो नहीं पाएगा।

एलन वाट हैरान हुआ। उसने कहा कि हम तो सोचते थे कि पूरब के लोग मानते हैं कि यही काम करने योग्य है। और तुम यह क्या कह रहे हो! उसने कहा कि यह नहीं होगा; या तो तुम न बचोगे या परमात्मा न बचेगा। मगर मिलन नहीं हो सकता। या तो तुम खो जाओगे, तो परमात्मा बचेगा, या परमात्मा खो जाएगा, तो तुम बचोगे।

जो उसे जानते हैं, वे जानने में ही शून्य हो जाते हैं। जितना जानते हैं, उतने ही शून्य हो जाते हैं। इसलिए दावा करने को कोई बचता नहीं। इसलिए वह तत्व सदा ही अज्ञेय बना रहता है, अननोएबल बना रहता है। जाना भी जाता है, फिर भी जाना नहीं जाता। जान भी लिया जाता है, फिर भी ज्ञान का हिस्सा नहीं बनता, जानकारी नहीं बन पाती।

इसीलिए तो हम विज्ञान की शिक्षा दे सकते हैं, लेकिन धर्म की कोई शिक्षा नहीं दे सकते।

एडिसन एक सत्य को जान लेता है, या न्यूटन एक सत्य को जान लेता है, या आइंस्टीन एक थिअरी खोज लेता है, एक सिद्धात खोज लेता है, फिर हर एक को खोजने की जरूरत नहीं है। एक दफा एक आदमी ने खोज लिया, फिर वह किताब में लिख गया, फिर उसे बच्चे पढ़ते रहेंगे। जिस काम को करने में आइंस्टीन को वर्षों लगेंगे, उसे कोई भी व्यक्ति दो घंटे में समझ लेगा, घंटे में समझ लेगा। फिर साधारण बच्चे, जिनमें बुद्धि नहीं है, वे भी उसे समझ लेंगे और परीक्षा देकर उत्तीर्ण होते रहेंगे। फिर दुबारा उसे खोजने की जरूरत नहीं। एक दफा विज्ञान जो जान लेता है, वह ज्ञान का हिस्सा हो जाता है।

लेकिन धर्म के मामले में बड़ी अजीब बात है। हजारों लोगों ने परमात्मा को जाना, फिर भी हम किताब में लिखकर उसको दूसरे को नहीं जना सकते। कृष्ण ने जाना होगा, बुद्ध ने जाना होगा, क्राइस्ट ने जाना होगा, मोहम्मद ने जाना होगा। लेकिन फिर उस जानने से कोई फर्क नहीं पड़ता। आप सिर्फ पढ़कर नहीं जान सकते। आपको भी जानना है, तो उसी जगह से गुजरना होगा, जहां से कृष्ण गुजरते हैं। और जब तक आप कृष्ण जैसे न हो जाएं कृष्ण—चैतन्य का जन्म न हो आपके भीतर, तब तक आप न जान सकेंगे।

आइंस्टीन की थिअरी आफ रिलेटिविटी समझने के लिए आइंस्टीन होना जरूरी नहीं है, न आइंस्टीन की बुद्धि चाहिए। कोई आवश्यकता नहीं है। एक दफा सिद्धात जान लिया गया, वह ज्ञान का हिस्सा हो गया। लेकिन धर्म के सत्य जाने भी जाते हैं, तो भी कभी ज्ञान के हिस्से नहीं होते। वे सदा ही अज्ञेय बने रहते हैं।

इसलिए विज्ञान आसुरी संपदा वाले व्यक्ति से राजी है। या हम ऐसा कह सकते हैं कि अभी जो विज्ञान है, वह आसुरी संपदा के ही वर्तुल में काम कर रहा है। मनुष्य अगर और विकसित होगा, तो हम दैवी संपदा वाले विज्ञान को भी विकसित करेंगे। तब विज्ञान एक नए आयाम में गति करेगा।

और दूसरी बात में भी विज्ञान राजी है आसुरी संपदा वाले व्यक्ति से। क्योंकि विज्ञान भी मानता है कि जगत में कोई प्रयोजन नहीं है, कोई परपज नहीं है। यह सिर्फ घटनाओं का जोड़ है। इसलिए यहां प्रार्थना—पूजा व्यर्थ है। यहां ध्यान करने से कुछ भी न होगा। यहां प्रार्थना किससे करिएगा? यहां कोई है नहीं, जो प्रार्थना सुनेगा। और मनुष्य केवल संघात है, कुछ वस्तुओं का जोड़ है। अगर उन वस्तुओं को हम अलग कर लें, तो पीछे कोई आत्मा बचेगी नहीं। विज्ञान जैसा आज तक विकसित हुआ है, वह आसुरी संपदा के अंतर्गत ही विकसित हुआ है। भविष्य में द्वार खुल सकता है; दैवी संपदा का वितान भी विकसित हो सकता है। या आप ऐसा समझ सकते हैं कि आसुरी संपदा की जो विद्या है, उसका नाम विज्ञान है। और दैवी संपदा की जो विद्या है, उसका नाम धर्म है।

धर्म विज्ञान है अंतर्जगत का, उस रहस्य लोक का, जिसे प्रयोगशाला में नहीं परखा जा सकता, जिसे हम अपने ही भीतर खोज सकते हैं। वह भीतर की डुबकी है।

विज्ञान पदार्थों की खोज है और धर्म परमात्मा की खोज है।

दूसरा प्रश्न :
प्रज्ञावान पुरुष को हमारे जीवन का जो आसुरीपन दिखाई देता है, वह हमें भी दिखे, इसके लिए हम क्या करें?
प्रश्न महत्वपूर्ण है; सभी के काम का है। जिन्हें भी जीवन में थोड़ा—बहुत रूपांतरण करना हो, उन्हें इस पर काफी सोच—विचार करना होगा।

प्रज्ञावान पुरुष को हमारे जीवन का आसुरीपन दिखाई पड़ता है, हमें भी दिखाई पड़े, इसके लिए हम क्या करें?

पहला काम तो यह है कि प्रज्ञावान पुरुष का सानिध्य खोजें। शास्त्र काफी नहीं है, क्योंकि शास्त्र मुर्दा है। शास्त्र बहुमूल्य है, लेकिन पर्याप्त नहीं है। और शास्त्र में आप वही पढ़ लेंगे, जो आप पढ़ सकते हैं। शास्त्र को आप धोखा दे सकते हैं, शास्त्र आपको रोक नहीं सकता। शास्त्र की आप व्याख्या कर सकते हैं, वह व्याख्या आपकी अपनी होगी। शास्त्र यह नहीं कह सकता कि यह व्याख्या गलत है। और अर्थ और व्याख्या तो आप करेंगे। तो शास्त्र तो आपके हाथ में आप ही जैसा हो जाता है। कितना ही कीमती शास्त्र हो, पढ़ने वाले के हाथ में पड़ते ही पढ़ने वाले के ढंग का हो जाता है।

आप बाइबिल पढ़ेंगे, तो बाइबिल में जो अर्थ निकलेगा, वह आपकी ही मनोदशा का होगा। गीता पड़ेंगे, जो अर्थ निकलेगा, वह अर्थ आपका होगा, कृष्ण का नहीं हो सकता। तो शास्त्र में कितना ही छिपा हो, वह आपको प्रकट नहीं होगा।

प्रज्ञावान पुरुष की सन्निधि खोजें। इसलिए गुरु का इस पूर्वीय परंपरा में इतना मूल्यवान स्थान रहा है। उसका केवल इतना अर्थ है कि आप जीवंत सत्य को खोजें। क्योंकि उसे आप धोखा न दे सकेंगे, और उसकी आप व्याख्या अपने हिसाब से न कर सकेंगे। वह आपको रोक सकेगा। जहां भूल होगी, वहा चेता सकेगा।

प्रज्ञावान पुरुष की सन्निधि का नाम ही सत्संग है। उसका केवल इतना अर्थ है कि जो जानता है, उसके पास होना। क्योंकि बहुत—सी चीजें हैं, जो केवल संक्रमण से ही अनुभव में आती हैं, उन्हें कोई दे भी नहीं सकता। वे कोई भौतिक वस्तुएं नहीं कि उठाकर कोई आपको दे दे। चुपचाप पास होने पर धीरे— धीरे उनका संक्रमण होता है।

तो पहली बात तो आपको भी कैसे आसुरीपन दिखाई पड़े, उसके लिए जरूरी है कि आप सन्निधि खोजें प्रज्ञावान पुरुष की, तो धीरे— धीरे उसकी आंखों से आपको भी देखने का मौका मिलेगा। उसके साथ उठते—बैठते, चलते—फिरते आपको एक नए जीवन की प्रतीति होनी शुरू होगी। तभी तुलना पैदा होती है। नहीं तो तुलना भी कैसे पैदा हो! आप जहां जी रहे हैं, जिनके बीच जी रहे हैं, जिनके साथ जी रहे हैं, वे सब एक से हैं। इसलिए पहचानना बहुत मुश्किल है।

एक पागलखाने में सभी पागल हैं, वहा कोई पागल यह कभी भी नहीं समझ सकता कि मैं पागल हूं। वहां सारे पागल उसके ही जैसे हैं। अगर एक पागलखाने में ठीक आदमी पहुंच जाए, तो उस ठीक आदमी को लगेगा कि मुझे कुछ गड़बड़ हो, क्योंकि भीड़ और बहुमत पागलों का होगा।

ऐसा अक्सर हुआ है। इसलिए हमने बुद्ध को, क्राइस्ट को, सुकरात को पागल कहा है। वह हमारे पागलों की भीड़ में एक आदमी अगर ठीक हो जाए, तो हमें उस पर शक आता है बजाय हम पर शक आने के। हम काफी हैं; हमारी संख्या बड़ी है। और संख्या हमें बड़ी सत्य मालूम पड़ती है। हम सभी चीजों को संख्या से तौलते हैं। करोड़—करोड़ लोग जिस बात को मानते हैं, वही हमें ठीक मालूम पड़ती है। तो हमने जीसस को सूली पर लटका दिया, सुकरात को जहर दिया, यही सोचकर कि ये पागल हो गए हैं, विक्षिप्त हो गए हैं।

इस भीड़ में आपको पहचान ही नहीं हो पाएगी, क्योंकि तुलना कैसे पैदा हो! कहते हैं, ऊंट जब तक पहाड़ के नीचे न जाए, तब तक उसे पता ही नहीं चलता कि मुझसे ऊंचा भी कुछ है, तब तक ऊंट पहाड़ है।

आप जब तक अपने से बिलकुल भिन्न जीवन चेतना के करीब न जाएं, तब तक आपको अपना आसुरीपन दिखाई पड़ेगा नहीं। उसके पास जाते ही आपको झलक होनी शुरू हो जाएगी, क्योंकि विपरीत पृष्ठभूमि में आप दिखाई पड़ने शुरू हो जाएंगे।

तो प्रज्ञावान पुरुष की सन्निधि खोजें।

दूसरी बात, प्रज्ञावान पुरुषों ने जो—जो कहा है—गीता है, उपनिषद हैं, लाओत्से का ताओ तेह किंग है, महावीर के वचन हैं, बुद्ध का धम्मपद है, और हजारों—हजारों वक्तव्य हैं सारी जमीन पर फैले हुए—प्रज्ञावान पुरुषों ने जो कहा है, उस पर तर्क मत करें, उस पर प्रयोग करें। वही तर्क है। उस पर सोच—विचार मत करें, क्योंकि सोच—विचार करने का कोई उपाय नहीं है। जिस बात की आपको कोई प्रतीति नहीं है, आप सोच—विचार भी कैसे करिएगा? उस पर प्रयोग करें, और प्रयोग करके देखें।

प्रयोग ही तर्क है। क्योंकि प्रयोग से आपको लगेगा कि वे ठीक कह रहे हैं। उसका स्वाद आएगा, तो ही लगेगा कि वे ठीक कह रहे हैं। और जब तक आपको आपसे अन्यथा कोई चीज ठीक न लगने लगे, तब तक आप अपने को गलत न मान पाएंगे। गलत के लिए तुलना चाहिए।

सुना है मैंने कि अकबर के समय में एक धार्मिक व्यक्ति तीर्थयात्रा पर गया। उन दिनों बड़े खतरे के दिन थे। संपत्ति को पीछे छोड़ जाना और अकेला ही आदमी था, बच्चे—पत्नी भी नहीं थे, काफी संपदा थी। तो एक मित्र के पास रख गया, जिस पर भरोसा था। और कहा कि अगर जीवित लौट आया, तो मुझे लौटा देना, अगर जीवित न लौटूं, तो इसका जो भी सदुपयोग बन सके कर लेना। यात्रा कठिन भी थी पुराने दिनों में, तीर्थ से बहुत लोग नहीं भी लौट पाते थे।

वह लंबी मानसरोवर तक की यात्रा पर गया था। पर भाग्य से जीवित वापस लौट आया। मित्र ने तो मान ही लिया था कि लौटेगा नहीं। लेकिन जब वह लौट आया, तो अड़चन हुई। संपत्ति काफी थी और देना मित्र को भी मुश्किल हुआ। मित्र नट गया। उसने कहा कि रख ही नहीं गए! कैसी बातें करते हो? तुम्हारा दिमाग तो खराब नहीं हो गया कोई गवाह भी नहीं था। वह बात अकबर की अदालत तक पहुंची। एक भी गवाह नहीं, उपाय भी नहीं कोई। यह आदमी कहता है, रख गया। और दूसरा आदमी कहता है, नहीं रख गया। अब कैसे निर्णय हो?

अकबर ने बीरबल से सलाह ली। बीरबल ने, जो आदमी रुपए रख गया था, उससे कहा कि कोई भी तो गवाह हो! उसने कहा, गवाह तो कोई भी नहीं है; सिर्फ जिस वृक्ष के नीचे बैठकर मैंने इसे संपत्ति दी थी, वह वृक्ष ही गवाह है। बीरबल ने कहा, तब काम चल जाएगा। तुम जाओ, वृक्ष को कहो कि बुलाया है अदालत ने। लगा तो उस आदमी को कि यह पागलपन का मामला है, लेकिन कोई और उपाय भी नहीं है। सोचा, पता नहीं इसमें कुछ राज. हो। उसने कहा, मैं जाता हूं प्रार्थना करूंगा।

वह आदमी गया। दूसरा, जिसके पास रुपए जमा थे, वह बैठा रहा, बैठा रहा। बड़ी देर हो गई। तो बीरबल ने कहा, बड़ी देर हो गई, यह आदमी लौटा क्यों नहीं! तो उस आदमी ने कहा कि जनाब, वह वृक्ष बहुत दूर है। तो बीरबल ने कहा, मामला हल हो गया। तुमने रुपए लिए हैं, अन्यथा तुम्हें उस वृक्ष का पता कैसे चला कि वह कितने दूर है!

हमारे भीतर भी हमें पता चलने के लिए कुछ संकेत चाहिए, परोक्ष। प्रत्यक्ष तो कोई उपाय नहीं है। प्रत्यक्ष तो आप जैसे हैं, उससे भिन्न होने का कोई उपाय नहीं है। परोक्ष कोई उपाय चाहिए।

प्रज्ञावान पुरुष की सन्निधि में आपको परोक्ष झलकें मिलना शुरू होंगी और लगेगा कि आप गलत हैं। क्योंकि जैसे ही आपको लगेगा कि प्रज्ञावान पुरुष सही है, वैसे ही आपको लगेगा कि मैं गलत हूं।

और यहां एक बड़ी महत्वपूर्ण बात समझ लेनी जरूरी है। अगर आप बहुत चालाक हैं, तो आप प्रज्ञावान पुरुष के पास भी बैठकर यही सोचते रहेंगे कि वह गलत है। क्योंकि अपने को बचाने का वही एक उपाय है, और कोई उपाय नहीं है।

इसलिए लोग गुरुओं के पास भी जाते हैं और गुरुओं की गलती देखकर वापस लौट आते हैं। उन्होंने अपनी सुरक्षा कर ली। क्योंकि दो ही रास्ते थे। अगर गुरु ठीक था, तो उनको गलत होना पड़ता। और अगर उनको ठीक ही बने रहना है जैसे वे हैं, तो गुरु को गलत सिद्ध कर लेना जरूरी है।

लेकिन गुरु को गलत सिद्ध करने से गुरु का तो कुछ भी खोता नहीं; आपको एक परोक्ष मौका मिला था—सोचने का, विमर्श का, तुलना का—वह खो गया।

अगर प्रज्ञावान जीवित पुरुष मिल सके, तो भाग्यशाली हैं। और प्रज्ञावान पुरुषों की कभी भी कमी नहीं है। अगर नहीं मिलता, तो आप आंख बंद किए हैं, इसलिए नहीं मिलता। अगर नहीं मिलता, तो आप कुछ चालाकी अपने साथ कर रहे हैं, कुछ धोखा कर रहे हैं, इसलिए नहीं मिलता। अन्यथा प्रज्ञावान पुरुष की कोई भी कमी नहीं है। उनकी एक निश्चित मात्रा हमेशा पृथ्वी पर है। उस मात्रा में कोई अंतर नहीं पड़ता। एक प्रज्ञावान पुरुष खोता है, तो तत्क्षण दूसरा प्रज्ञावान पुरुष उसकी जगह हो जाता है।

एक यहूदी फकीर मेरे पास आया। वह बड़ा चिंतित और परेशान था। और बहुत जगह घूमकर आया था, और अनेक लोगों को कुछ कहना चाहता था, लेकिन कोई उसे मिला नहीं जिससे वह कहे या कोई उसका भरोसा करेगा! उसने मुझसे संन्यास लिया, दीक्षा ली, ध्यान में लगा। फिर बाद में एक दिन उसने कहा कि अब मैं आपसे कह सकता हूं।

उस यहूदी ने मुझे कहा कि मुझे धर्म में कोई भी रुचि न थी और मैं धार्मिक आदमी भी न था। इतना ही नहीं, बल्कि मेरा स्पष्ट विरोध भी रहा है। तो मैं कभी यहूदियों के मंदिर में, सिनागाग में कभी गया नहीं। मैंने कभी तालमुद पढ़ी नहीं। और कभी कोई धर्म की बात करे, तो मुझे सिर्फ ऊब ही पैदा होती थी। किसी रबाई, किसी फकीर को मैंने कभी सुना नहीं।

यहूदियों के उत्सव का दिन था एक, धार्मिक उत्सव का दिन, और यह युवक लौट रहा था बाजार से घर की तरफ अचानक उसे एकदम बेचैनी हुई, और उसे लगा कि मुझे सिनागाग जाना चाहिए। उसे खुद भी हैरानी हुई। कुछ ऐसा लगा, जैसे कोई खींचता हो, जैसे परवश हो गया। भाग। हुआ घर गया, अपनी प्रार्थना की शाल उठाई, जिसको सिर पर डालकर यहूदी प्रार्थना करते हैं...।

यह प्रार्थना की शाल यहूदियों की बड़ी कीमती है। दूसरे धर्मों के लोगों को भी इसका उपयोग करना चाहिए। पूरे शरीर को ढंक लेते हैं एक चादर से और भीतर प्रार्थना की धुन, आप चाहें ओंकार की धुन या कोई भी धुन को भीतर पैदा करते हैं। वह धुन न केवल शरीर के भीतर गूंजती है, बल्कि उस चादर के भीतर भी एक वातावरण निर्मित करती है, और शरीर के चारों तरफ एक ऑरा निर्मित हो जाता है। और वह धुन शरीर को चारों तरफ से घेर लेती है और आप जगत के साधारण वातावरण से बिलकुल कट जाते हैं। उस प्रार्थना की शाल के भीतर जितनी आसानी से प्रार्थना में लीन हुआ जा सकता है, उतनी आसानी से बिना अपने को ढंके लीन होना कठिन है।

भागा हुआ घर गया, प्रार्थना की शाल उठाई, जाकर सिनागाग पहुंचा। लेकिन उत्सव का दिन था और उस उत्सव के दिन नास्तिक से नास्तिक यहूदी भी मंदिर आता है। बिलकुल भरा हुआ था। कोई आशा नहीं थी उसे कि भीतर जगह मिल जाएगी। लेकिन वह चकित हुआ कि द्वार पर ही उसका स्वागत किया गया और उसे ले जाकर विशिष्ट अतिथियों के स्थान पर बिठाया गया। वह और भी हैरान हुआ कि यह क्या हो रहा है! उसने अपनी चादर ओढ ली और चादर ओढ़ते ही उसे सुनाई पड़ा..।

अभी कोई बीस साल पहले की घटना है, जब उसे सुनाई पड़ा। सालभर पहले आकर उसने मुझे सारा ब्योरा दिया।

उसे सुनाई पड़ा कि तू चुना गया है! छत्तीस में से एक मर गया है, उसकी जगह तुझे चुना गया है। वह कई लोगों से बताना चाहता है कि क्या मामला है! छत्तीस कौन हैं! कौन मर गया है! मुझे किस लिए चुना गया है! लेकिन बस, उस आवाज के बाद उसका जीवन बदल गया।

यहूदियों में पुराना एक नियम है। छत्तीस यहूदी सदा ही प्रज्ञावान पुरुष होंगे। उनमें से जब भी एक समाप्त होगा, तब तत्क्षण बाकी पैंतीस एक व्यक्ति को चुन लेंगे। तो छत्तीस की संख्या उनकी सदा पूरी रहेगी।

सभी धर्मों के भीतर उस तरह के अंतर्वतुल हैं, इनर सीक्रेट सर्किल्स हैं। उनकी संख्याओं में कभी कोई कमी नहीं होती। वे हमेशा मौजूद हैं। और जब भी कहीं कोई साधक उनको खोजने को तैयार हो, तब वे खुद उस साधक की तलाश में आ जाते हैं।

तो जरूरत भी नहीं कि आप हिमालय जाएं। अगर आकांक्षा प्रबल हो, तो जहां आप हैं, वहीं जिस प्रज्ञावान पुरुष से आपको सन्निधि चाहिए, वह मौजूद होगा; वह वहीं चला. आएगा।

लेकिन हम अपने ही हाथ से दरिद्र बने रहते हैं। हम हाथ भी नहीं फैलाते। अगर स्वर्ण की वर्षा भी हो रही हो, तो हमारी झोली बंद रहती है।

यह जो प्रज्ञावान पुरुष की सन्निधि खोजने की बात है, इसके लिए हमें अपनी सुरक्षा की, बचाव की पुरानी आदतें छोड़ना जरूरी हैं, अपने को थोड़ा खोलना जरूरी है। जोखिम तो है, खतरा तो है। लेकिन बिना खतरे के जीवन में कोई क्रांति भी नहीं होती।

फिर प्रज्ञावान पुरुषों का साहित्य है, उनके वचन हैं, जिनको हम वेद कहते हैं। वेद कोई किताब नहीं है; सभी प्रज्ञावान पुरुषों के वचन वेद हैं। इन वचनों को अगर हम मनन करें, विचार नहीं! और विचार और मनन का फर्क ठीक से समझ लेना चाहिए।

विचार का तो मतलब होता है, मैं अपनी बुद्धि लगाऊं कि क्या ठीक है, क्या गलत है; पक्ष—विपक्ष में सोचूं। मेरे पास बुद्धि ही होती, तो फिर क्या था! और मैं जानता कि क्या ठीक है और क्या गलत है, तो वेद की कोई जरूरत न थी। फिर मैं खुद ही प्रज्ञावान था। वह मेरे पास नहीं है।

मनन! मनन बड़ी अलग बात है। मनन का अर्थ है, प्रज्ञावान पुरुष के वचन को अपने हृदय में उतार लेना, उसका रस चूसना, उसका स्वाद लेना। सोचना नहीं कि ठीक है कि गलत है। उसको पीना। इसको हम पाठ कहते हैं।

इसलिए एक आदमी रोज गीता का पाठ करता है। पश्चिम के लोग पूछते हैं कि यह क्या पागलपन है! एक दफा किताब पढ़ ली, बात खतम हो गई। और किताब को दुबारा पढ़ने का क्या अर्थ है! तिबारा पढ़ने का क्या अर्थ है! और फिर जिंदगीभर रोज सुबह उठकर पढ़ने का तो कोई भी अर्थ नहीं है। वही किताब है, उसको बार—बार पढ़कर क्या फायदा? इससे तो बुद्धि और जड़ हो जाएगी!

उनकी बात थोड़ी दूर तक सही है। अधिक लोगों की बुद्धि जड़ हो गई है। लेकिन जड़ हो जाने का कारण है कि उन्हें पाठ का रहस्य मालूम नहीं है। गीता रोज सुबह पढ़ने का अर्थ पढ़ना है ही नहीं। वह तो जैसे रोज आदमी भोजन करता है, पानी पीता है, श्वास लेता है, ऐसे रोज सुबह प्रज्ञावान पुरुष के वचनों को आत्मसात करना है, अपने में डुबाना है, उनको अपने में फेंकना है, उलीचना है। क्योंकि वे वचन बीज की तरह भीतर पड़ जाएंगे और किसी सम्यक क्षण में—और हम नहीं जानते वह सम्यक क्षण कब आएगा, इसलिए रोज करना है—किसी भी दिन वह सम्यक क्षण आ जाएगा, तो बीज ठीक जगह पहुंच जाएंगे। उनसे अंकुरण होगा। और उस अंकुरण में हमको पहली बार दिखाई पड़ना शुरू होगा कि क्या आसुरी है, क्या दैवी है। उसके पहले दिखाई नहीं पड़ सकता।

तो दो उपाय हैं। अगर हिम्मत हो, तो जीवित प्रज्ञावान पुरुष की शरण में चले जाना चाहिए। अगर कमजोर आदमी हो, हिम्मत न हो, तो शास्त्र की शरण में चले जाना चाहिए। आपको उलटा लगेगा। आप अक्सर सोचते हैं कि जो ताकतवर है, वह किसी की शरण में नहीं जाता। और मैं आपसे कह रहा हूं कि ताकत हो, तो शरण में चले जाना चाहिए।

कमजोर शरण में जा ही नहीं सकता, क्योंकि वह डरता है कि शरण में गए तो दूसरा कब्जा कर लेगा। वह कमजोरी का डर है। शक्तिशाली चला जाता है। शक्तिशाली ही समर्पण करता है। कमजोर तो सदा डरता है, भयभीत रहता है कि कहीं किसी के हाथ में अपने को सौंप दिया, फिर पता नहीं, क्या हो। सिर्फ शक्तिशाली सौंपने की हिम्मत करता है कि सौंप दिया, अब जो भी हो।

और ध्यान रहे, जो सौंपने की हिम्मत जुटाता है, उसके पास प्रज्ञावान पुरुष अनिवार्य रूप से प्रकट हो जाते हैं। अगर तुमने गलत आदमी के भी चरणों में अपने को सौंपा और सौंपना बेशर्त रहा, तो गलत आदमी हट जाएगा और ठीक आदमी प्रकट हो जाएगा। और अगर तुम ठीक आदमी के पास भी अपने को सिकोड़कर बैठे रहे, बचाते रहे, तो ठीक आदमी भी तुम्हारे लिए गलत आदमी ही है।

यह न हो सके, मन बहुत कमजोर हो, निर्बल हो, तो फिर शास्त्र खोजना चाहिए। गुरु शक्तिशाली के लिए, शास्त्र कमजोर के लिए। मगर हिम्मत तो वहा भी जुटानी पड़ेगी। क्योंकि वहा भी शास्त्र को मौका देना होगा कि आपके भीतर जा सके, रोएं—रोएं में डूब जाए, उतर जाए, श्वास—श्वास में समा जाए, जगह—जगह आपके कण—कण में उसकी ध्वनि गूंजने लगे।

स्वामी राम अमेरिका से वापस लौटे, तो पंजाब के एक बहुत बड़े विचारक सरदार पूर्णसिंह उनके साथ थे। तो एक ही कोठरी में एक रात हिमालय में सोए थे। चारों तरफ सन्नाटा था, हिमालय का सन्नाटा। न कोई पास गांव, न कोई आवाज, न कोई शोरगुल।

अचानक पूर्णसिंह को लगा कि कोई राम—राम की रट लगाए हुए है। तो नींद न आए। उठकर वे बाहर गए बराडे में चारों तरफ घूमकर देखा, सन्नाटा है। कोई नहीं है वहा। हैरानी तो तब हुई कि जब बाहर गए, तो आवाज कम आने लगी। और जरा दूर जाकर बराडे में घूमे, तो और कम आने लगी। नीचे के कंपाउंड में उतरकर दरवाजे तक गए तो आवाज बिलकुल खो गई। फिर जैसे वापस लौटे करीब, आवाज बढ़ने लगी। कोठरी में आए, तो आवाज फिर सुनाई पड़ने लगी। तब वे चकित हुए। क्योंकि सिवाय राम और उनके कोई नहीं है। राम तो सो रहे हैं।

तो राम की खाट के पास गए। जैसे पास गए, तो आवाज और बढ़ने लगी। तब उन्हें खयाल आया कि यह तो कुछ अनूठा घट रहा है! राम के शरीर के अंग—अंग से राम की आवाज निकल रही है। तो पैर के पास कान रखकर देखा, तो आवाज; हाथ के पास कान रखकर देखा, तो आवाज; सिर के पास कान रखकर देखा, तो आवाज।

जब कोई व्यक्ति ठीक से स्मरण करता है, पाठ करता है, वेद के वचन को अपने में डूब जाने देता है, तो रोएं—रोएं से वही प्रतिध्वनित होने लगता है। उस प्रतिध्वनि के क्षण में आपको समझ आएगा, क्या आसुरी है, क्या दैवी है। उसके पहले समझ नहीं आ सकता।

ये दो उपाय हैं। हिम्मत हो, तो जीवित पुरुष खोज लेना चाहिए; हिम्मत कमजोर हो, तो प्रज्ञावान पुरुषों के मरे हुए वचन शास्त्रों में संगृहीत हैं, उनकी शरण चले जाना चाहिए।

लेकिन फिर भी दोनों में हिम्मत की तो जरूरत है ही, क्योंकि शरण जाए बिना कोई भी उपाय नहीं है। कहीं अपने को खोना होगा, छोड़ना होगा; कहीं अपनी अस्मिता को हटाकर रख देना होगा। तब जैसे बिजली कौंध जाए और अंधेरे में रास्ता दिखाई पड़ने लगे, ठीक ऐसे ही, क्या दैवी है, क्या आसुरी है, उसकी प्रतीति होने लगती है।

और ध्यान रखें, जैसे ही प्रतीत होता है कि यह आसुरी और यह दैवी, वैसे ही जीवन में परिवर्तन शुरू हो जाता है। क्योंकि जिसको प्रतीत हो जाए कि यह आसुरी वृत्ति है, फिर उस वृत्ति में रहना असंभव है।

हम तभी तक आसुरी वृत्ति में रह सकते हैं, जब तक हमें लगता हो कि यह दैवी वृत्ति है। हम तभी तक असत्य में जी सकते हैं, जब तक हमें लगता हो कि यह सत्य है। और हम तभी तक दुख में जी सकते हैं, जब तक हमने दुख को सुख माना हो।

दुख दुख दिखाई पड़े, छुटकारा शुरू हो गया। असत्य असत्य मालूम पड़े, क्रांति शुरू हो गई। आसुरी है हमारी संपदा, ऐसा बोध हो जाए, उस संपदा से हमारे हाथ अलग होने लगे। हम उसे ही पकड़ते हैं, जिसे हम ठीक समझते हैं। वह गलत हो, पर हमारी समझ में ठीक है, तो हम पकड़ते हैं। जैसे ही समझ आ जाती है कि गलत है, छूटना शुरू हो जाता है।

सुकरात का प्रसिद्ध वचन है, नालेज इज वर्च्यू, ज्ञान सदाचरण !

जैसे ही कोई जान लेता है कि ठीक क्या है, ठीक करना शुरू हो जाता है। जब तक हम सोचते हैं कि हमें पता है कि ठीक क्या है; फिर भी क्या करें, हम गलत करते हैं! तब तक जानना कि हमें पता ही नहीं है कि ठीक क्या है।

मेरे पास लोग आते हैं। वे कहते हैं, हमें मालूम है कि क्रोध बुरा है; पर क्या करें, मजबूरी है, क्रोध हो जाता है। तो मैं उनसे कहता हूं तुम गलती कर रहे हो, तुम पूरी बात को ही उलटा समझ रहे हो। तुम्हें मालूम ही नहीं कि क्रोध बुरा है। यह तुमने सुना है, और तुम सोचते हो, सुना हुआ तुम्हारा ज्ञान हो गया। तुम्हें पता हो जाए कि क्रोध बुरा है, तो जैसे आग में हाथ डालना मुश्किल है, वैसे ही क्रोध में भी हाथ डालना मुश्किल हो जाएगा। शायद ज्यादा मुश्किल हो जाएगा, क्योंकि आग तो केवल शरीर को जलाती है, क्रोध तो भीतर तक झुलसा देता है।

आखिरी प्रश्न :
मंजिल पर पहुंचकर प्रज्ञावान पुरुष को यही पता चलता है कि स्वयं को जानना असंभव है, क्योंकि वहां ज्ञाता, ज्ञेय और ज्ञान सब एक हो जाते हैं। इस हालत में वे हमें क्यों समझाते हैं कि स्वयं को जानो? इसमें उनका अभिप्राय क्या है?
निश्चित ही, उस परम अवस्था में ज्ञाता भी खो जाता है, ज्ञान भी खो जाता है, ज्ञेय भी खो जाता है। यह जो त्रिवेणी है, यह खोकर एक ही धारा बन जाती है। गंगा, यमुना, सरस्वती तीनों खो जाती हैं, सागर ही रह जाता है। वह जो खोजने चला था, वह भी नहीं बचता; जिसे खोजने चला था, वह भी नहीं बचता। फिर भी कुछ बचता है। और जो बचता है, वह तीनों से बड़ा है। जो बचता है, वह तीनों से ज्यादा है। जो खो जाता है, वह तो कचरा था। जो बचता है, वही सार है।

फिर भी प्रज्ञावान पुरुष आपसे कहते हैं, स्वयं को जानो। क्या मिटाने के लिए आमंत्रण देते हैं?

अगर मिटना ही मिटना होता और कुछ पाना न होता, तो यह आमंत्रण न दिया जाता। एक तरफ से मिटना है और दूसरी तरफ से होना है। जो आप हैं, वह खो जाएगा। और जो आपका वास्तविक होना है, वह बचेगा। जो आपका झूठा—झूठा होना है, वह तिरोहित हो जाएगा। और जो आपकी शाश्वत सत्ता है, जो आपका सनातन स्वरूप है, वह बचेगा। आप खो जाएंगे, जैसा आप अपने को अभी समझते हैं। और जैसा आपने कभी अपने को नहीं समझा, लेकिन आप हैं, वह बच रहेगा।

तो प्रज्ञावान पुरुष आपको बुलाते हैं कि मिटो, ताकि हो सको। खो जाओ, ताकि बच सको। वे कहते हैं, बूंद सागर में गिर जाए, खो जाएगी। अगर आप बूंद की तरफ से देखें, तो खो जाएगी। लेकिन खोएगी कहां? खोना हो कैसे सकता है? जो भी है, वह खोएगा कैसे? अगर होने की तरफ से देखें, तो बूंद खोएगी नहीं, सागर हो जाएगी। एक तरफ से बूंद का क्षुद्रपन चला जाएगा, दूसरी तरफ से सागर की विराटता उसमें उतर आएगी।

कबीर ने कहा है कि पहले तो मैं सोचता था जब मिलन हुआ कि बूंद सागर में गिर गई और खो गई। प्रथम तो ऐसा ही अनुभव हुआ कि बूंद सागर में गिरकर खो गई। बाद में समझ में आया कि यह तो उलटा कुछ हुआ है, सागर बूंद में गिरकर खो गया।

ये दोनों बातें एक ही अर्थ रखती हैं। चाहे हम एक बूंद को सागर में गिराएं, चाहे एक सागर को बूंद में गिराएं; दोनों हालतों में घटना एक ही घटती है। तो चाहे आप कहें कि आप खो गए और चाहे आप कहें कि परमात्मा आप में खो गया, एक ही बात है। सिर्फ दो कोने से कहने की बात है।

बुद्ध ने पहली बात पसंद की। उन्होंने कहा, तुम खो जाओगे, निर्वाण हो जाएगा, सब शून्य हो जाएगा। शंकर ने दूसरी बात पसंद की,. ब्रह्म हो जाओगे, कुछ खोएगा नहीं, सब कुछ पा लिया जाएगा। चाहे कहो शून्य, चाहे कहो पूर्ण। शून्य का अर्थ है, बूंद खो गई। पूर्ण का अर्थ है, सागर बूंद में उतर आया। पर दोनों एक ही बात को कहने के दो ढंग हैं। एक विधेय का ढंग है, एक निषेध का ढंग है; जो भी प्रीतिकर हो।

प्रज्ञावान पुरुष बुलाते हैं कि मिटो, क्योंकि उन्होंने अपनी तरफ से अनुभव किया है कि जब तक वे मिटे नहीं, तभी तक दुख में रहे। जब वे मिटे, तब आनंद हो गया।

आपका होना ही कष्ट है। आप ही काटा हो, जो चुभता है। और जब तक आप हो, काटा चुभता ही रहेगा। आप लाख उपाय करो सुख की व्यवस्था के, वे असफल होंगे, क्योंकि काटा आप हो। आप कितना ही सुखद बिस्तर तैयार कर लो और सुंदर भवन बना लो, लेकिन वह काटा चुभता ही रहेगा।

महल बड़े होते जाते हैं, दुख नष्ट नहीं होता। संपत्ति के ढेर लगते जाते हैं, दुख नष्ट नहीं होता। संपदा, यश, कीर्ति मिलती जाती है, दुख नष्ट नहीं होता, बल्कि काटा चुभता ही चला जाता है। शायद और जोर से चुभता है। जितना सुख का आप इंतजाम करते हैं, कांटा उतने जोर से चुभता है। क्योंकि सुख में पृष्ठभूमि बन जाती है, और काटा और भी ज्यादा पीड़ादायी मालूम होता है।

एक गरीब आदमी के पैर में कांटा उतना नहीं चुभता; पैर उसके आदी है। अमीर आदमी के पैर में काटा बुरी तरह चुभता; पैर उसके आदी नहीं हैं। जैसे—जैसे आदमी अमीर होता है, वैसे—वैसे दुख एक घाव, एक नासूर भीतर हृदय में बनता चला जाता है।

प्रज्ञावान पुरुष बुलाते हैं आपको कि मिट जाओ, कहते हैं कि स्वयं को जान लो। क्योंकि स्वयं को जानते ही आप मिट जाओगे। यह जरा उलटा लगेगा, विरोधाभासी। क्योंकि जब हम कहते हैं, स्वयं को जान लो, तो हमें ऐसा लगता है कि अपने को हम बचा लेंगे।

स्वयं को जानने की शर्त ही यह है कि जब तक आप हो, तब तक आप स्वयं को जान न सकोगे। आप बाधा हो। वह जो अहंकार है कि मैं हूं, वही रुकावट है। वह मिटेगा, तो स्वयं का जानना हो जाएगा। स्वयं का मिटना ही स्वयं का ज्ञान है। और उसके साथ ही काटा खो जाता है।

बुद्ध को ज्ञान हुआ, तो उन्होंने पहला उदघोष किया कि अब मुझे दुख में कोई भी डाल न सकेगा। अब मुझे दुख में डालने का कोई उपाय न रहा। तो कथा है कि ब्रह्मा ने उनको पूछा कि आप ऐसा क्यों कहते हैं? तो बुद्ध ने कहा, चूंकि अब मैं हूं ही नहीं। मुझे दुःख में डालने का कोई उपाय नहीं, क्योंकि अब मैं हूं ही नहीं। जब तक मैं था, तब तक मुझे दुख में डाला जा सकता था।

बुद्ध शून्य की भाषा पसंद करते हैं। अगर आपको पूर्ण की भाषा पसंद हो, तो समझें पूर्ण की तरफ से। शून्य की भाषा पसंद हो, तो शून्य की तरफ से। लेकिन सिर्फ भाषा में मत खोए रहें, कुछ करें। या तो बूंद को मिटाएं सागर में या सागर को बुलाएं बूंद में। जब तक यह महामिलन न हो, तब तक दुख बना ही रहता है।

अब हम सूत्र को लें।
और वे मनुष्य दंभ, मान और मद से युक्त हुए किसी प्रकार भी न पूर्ण होने वाली कामनाओं का आसरा लेकर तथा मोह से मिथ्या सिद्धांतों को ग्रहण करके भ्रष्ट आचरणों से युक्त हुए संसार में बर्तते हैं।

तथा वे मरणपर्यंत रहने वाली अनंत चिंताओं को आश्रय किए हुए और विषय— भोगों के भोगने में तत्पर हुए इतना मात्र ही आनंद है, ऐसा मानने वाले हैं।

इसलिए आशारूप सैकड़ों फांसियों से बंधे हुए और काम—क्रोध के परायण हुए विषय— भोगों की पूर्ति के लिए अन्यायपूर्वक धनादिक बहुत—से पदार्थों को संग्रह करने की चेष्टा करते हैं।

आसुरी संपदा वाले व्यक्तियों के लक्षणों में कृष्ण और भी प्रवेश करते हैं।

दंभ, मान और मद से युक्त।

आसुरी संपदा वाला व्यक्ति सदा ही अपने को ठीक मानता है, सदा ही दूसरे को गलत मानता है। दूसरे का दूसरा होना ही उसकी गलती है। यह सवाल नहीं है कि सही क्या है, गलत क्या है। आसुरी संपदा वाले व्यक्ति को उसका स्वयं का वक्तव्य सही है, दूसरे का वक्तव्य गलत है।

कभी—कभी आपको भी खयाल आता होगा कि अगर दूसरा व्यक्ति वही बात कह रहा हो, जो कल आप कह रहे थे, तो भी आप विवाद करते हैं। क्योंकि सवाल यह है नहीं कि क्या सही है। सवाल तो यह है कि आप सही हैं और दूसरा गलत है। हमेशा आप इस कोशिश में होते हैं कि मैं सही हूं।

दुनिया में जो इतने विवाद चलते हैं, उन विवादों में सत्य की कोई तलाश नहीं है। उन विवादों में सिर्फ अहंकार की घोषणा है। चाहे कोई कुछ भी कहे, सही मैं ही हूं। और इस मैं के सही होने को हम हजार तरह से सिद्ध करने की कोशिश करते हैं। आसुरी संपदा वाले व्यक्ति का यह आंतरिक लक्षण है।

दैवी संपदा वाला व्यक्ति, इसके पहले कि दूसरे को गलत कहे, अपने को गलत सोचने की चेष्टा करता है। और इसीलिए दैवी संपदा वाला व्यक्ति सीख पाता है, आसुरी संपदा वाला व्यक्ति सीख नहीं पाता। क्योंकि सीखना तो तभी संभव है, जब हम गलत हों, दूसरा सही हो। जब हम सदा ही सही होते हैं और दूसरा गलत होता है, तो सीखने की कोई गुंजाइश नहीं है। शिष्यत्व, डिसाइपलशिप पैदा ही नहीं हो सकती।

इसलिए आसुरी संपदा का व्यक्ति कभी भी शिष्य नहीं बनता। हालांकि कहेगा वह यही कि कोई गुरु है ही नहीं। मिले कोई गुरु, तो हम शिष्यत्व ग्रहण करें। लेकिन वह शिष्यत्व ग्रहण नहीं कर सकता। वह बुद्ध के पास से भी कुछ भूल—चूक निकालकर आगे बढ़ जाएगा।

शिष्यत्व के लिए झुकना जरूरी है। और मैं गलत हूं दूसरा सही होगा, इसकी प्रतीति जरूरी है। मैं अज्ञानी हूं और दूसरा जानता होगा, इसकी प्रतीति जरूरी है। और जो व्यक्ति को ऐसा भाव हो कि मैं अज्ञानी हूं, वह एक छोटे —से बच्चे से भी सीख लेता है। वह पौधों, पक्षियों से भी सीख लेता है। उसके लिए सारा जगत गुरु हो जाता है।

और जो व्यक्ति सोचता है, मैं सही हूं उसके लिए इस जगत में सीखने का कोई उपाय नहीं। वह अटका रह जाता है, ठहरा रह जाता है। उसका हृदय पत्थर की तरह हो जाता है; फूल की तरह वह कभी भी खिल नहीं पाता है।

आप भी सोचें कि जब आप विवाद करते हैं कि यह ठीक है, तब सच में ही आपको सत्य की तलाश होती है? या आपका वक्तव्य है, तो उसके साथ आपका अहंकार जुड़ गया। वक्तव्य टूटेगा, तो अहंकार टूटेगा। तो आप लड—मर सकते हैं, विवाद कर सकते हैं, तर्क कर सकते हैं, हजार तर्क खोज ले सकते हैं। लेकिन उन तर्कों से आप कभी बदलेंगे नहीं। क्योंकि वे तर्क सत्य के लिए दिए ही नहीं गए।

सत्य का तलाशी हमेशा तैयार है कि वह गलत हो सकता है। और जो व्यक्ति जितना तैयार है अपनी गलती स्वीकार करने को, उसके जीवन में विकास की उतनी ही ज्यादा संभावना है। वह जीवन के अंतिम क्षण तक सीखता रहेगा, मरते क्षण तक सीखता रहेगा। उसके सीखने का कोई अंत नहीं है; उसके ज्ञान का कोई पारावार नहीं होगा।

आसुरी संपदा वाला अज्ञानी रह जाता है, क्योंकि सीख नहीं सकता। दैवी संपदा वाला सीखता चला जाता है, उसके पास सागर जैसा ज्ञान हो जाता है।

किसी भी प्रकार न पूर्ण होने वाली कामनाओं का आसरा लेकर...।

और आसुरी संपदा वाला व्यक्ति अपने जीवन की गति को उन वासनाओं के सहारे चलाता है, जिनका कभी कोई अंत नहीं है; जो कभी पूरी नहीं हो सकतीं, जो कभी पूरी हुई नहीं हैं, जिनका स्वभाव पूरा होना नहीं है।

बुद्ध ने कहा है, कामनाएं दुष्पूर हैं, उनको भरा ही नहीं जा सकता। इसलिए नहीं कि आपकी ताकत कम है, इसलिए भी नहीं कि जीवन का समय कम है, इसलिए भी नहीं कि दूसरे लोग बाधा डाल रहे हैं, बल्कि इसलिए कि उनका स्वभाव ही दुष्पूर है। वासना का स्वभाव दुष्पूर है; उसे पूरा नहीं किया जा सकता।

क्या कारण होगा कि वासना का स्वभाव दुष्पूर है? अगर आप वासना को पूरा न करें, दमन करें, दबाएं, तो वासना धक्के मारती है कि मुझे पूरा करो! और सदा धक्के मारती रहेगी जन्मों—जन्मों तक। अगर आप वासना को पूरा करें, तो हर बार पूरा करें, तो वासना की आदत बनती है। और जितनी आदत बनती है, उतनी मांग बढ़ती है।

बड़ी कठिनाई है, बड़ी दुविधा है। अगर वासना को दबाएं, तो पीछा करती है; अगर पूरा करें, तो आदत बनती है। दोनों स्थितियों में वासना उलझा देती है। और तीसरे का हम कभी प्रयोग नहीं करते, कि हम वासना को सिर्फ देखें; न तो दबाएं, न पूरा करें; न तो उससे लड़े, और न उसके गुलाम बनकर उसके पीछे चलें।

दो पंथ हैं जगत में। एक पंथ है वासना पूरे करने वालों का; उनको ही आसुरी संपदा वाले लोग कहा है। एक पंथ है वासनाओं से लड़ने वालों का, उनको दैवी संपदा वाले लोग नहीं कहा है, वे भी आसुरी संपदा वाले लोग हैं। फर्क इतना ही है कि कुछ आसुरी संपदा वाले लोग सीधे पैर के बल खड़े हैं; कुछ आसुरी संपदा वाले लोग सिर के बल खड़े हैं, शीर्षासन कर रहे हैं।

एक तीसरा वर्ग है दैवी संपदा वाले व्यक्ति का। वह लड़ता ही नहीं, वह वासना का सिर्फ साक्षी होता है। और जितना गहरा साक्षी— भाव होता है, वासना उसी तरह जड़—मूल से जलकर नष्ट हो जाती है। न तो उसे दबाना पड़ता है, न उसे पूरा करना पड़ता है।

दोनों हालतों में कठिनाई है। और ये दोनों पंथ खड़े हैं और आप सब भी इन दोनों पंथों में डांवाडोल होते रहते हैं। सुबह सोचते हैं कि गलत, सांझ सोचते हैं सही। आज सोचते हैं, वासना पूरी कर लें; कल वासना से लड़कर दमन करते हैं। और ऐसा डोलते रहते हैं और जीवन नष्ट होता चला जाता है।

हमारी अवस्था ऐसी है। मैंने सुना है, एक गांव में एक साधु का आगमन हुआ। वह अद्वैतवादी साधु था। गांव में एक गरीब सीधा आदमी था। इस साधु ने उसे पकड़ लिया; रास्ते से जा रहा था। वह सीधा आदमी अपने खेत जा रहा था, सो उसे पकड़ लिया और कहा कि रुको, क्या जिंदगी खेत में ही गंवा दोगे? कुछ स्मरण करो! यह जगत माया है। उस सीधे आदमी ने कहा, अब आपने शिक्षा ही दी, तो कुछ रास्ता बता दें। तो साधु ने उसे एक मंत्र दिया। मंत्र था सोहम्? कि सदा सोहम्—सोहम् का जाप करते रहो; मैं वही हूं आई एम दैट, सोहम्। कुछ दिनों बाद वह गरीब सीधा आदमी सोहम् का जाप करता रहा।

गांव में दूसरे साधु का आगमन हुआ। लोगों ने उस दूसरे साधु को बताया कि हमारे गांव में एक सीधा—सादा किसान है, लेकिन सोहम् का जाप करता है, और बड़ा प्रसन्न रहता है। साधु ने कहा, बिलकुल गलत। उसे बुलाकर ले आओ। उससे कहा कि यह बिलकुल गलत है। यह साधु द्वैतवादी था। सोहम् अद्वैतवादी का मंत्र है। इसने कहा, यह बिलकुल गलत है; यह पाठ ठीक नहीं है। इससे तुम भटक जाओगे।

उस गरीब सीधे आदमी ने कहा, आप सुधार कर दें। उस साधु ने कहा, दासोहम्? " तेरा दास हूं यह पाठ करो। सोहम् नहीं, दासोहम्। उसमें दा और जोड़ दो। उस गरीब आदमी ने दा जोड़ दिया।

दो—चार महीने बाद फिर एक अद्वैतवादी साधु का गांव में आगमन हुआ। लोगों ने खबर दी। उसने कहा कि बिलकुल गलत है। द्वैत तो आना ही नहीं चाहिए मंत्र में। यह दासोहम् ठीक नहीं है। तुम इसमें एक स और जोड़ दो, सदा सोहम्? सदा मैं वही हूं। गरीब आदमी ने कहा, अब जैसी आपकी मरजी!

थोड़ी—बहुत शांति पहले मिली थी, दूसरे में उससे भी कम हो गई। अब तीसरे में वह बहुत उलझ गया। वह भी कम हो गई। लेकिन अब साधु ने कहा, तो वह सदा सोहम् करने लगा।

कुछ ही दिन बाद फिर एक द्वैतवादी साधु का गांव में आगमन हुआ। उसने कहा कि यह बिलकुल गलत है। अद्वैत की बात ही गलत है। तुम इसमें एक दा और जोड़ दो, दास दासोहम्। तो उस गरीब ने कहा कि मैं बिलकुल पागल हो जाऊंगा। थोड़ी—बहुत शांति मिलना शुरू हुई थी, सब नष्ट हो गई। और अब कब अंत होगा इसका!

मनुष्य की अवस्था करीब—करीब ऐसी है। वहा दो वर्ग हैं हमारे जीवन में। चारों तरफ दोनों वर्गों में बंटे हुए लोग हैं। कुछ हैं, जो भोग की तरफ धक्का दे रहे हैं। कुछ हैं, जो दमन की तरफ धक्का दे रहे हैं। कुछ हैं, जो जीवन के विषाद से भरे हैं और कह रहे हैं, सब तोड़ डालो। और कुछ हैं, जो जीवन के उत्साह से भरे हैं और कह रहे हैं, सब भोग डालो। और उन दोनों के बीच में मनुष्य विक्षिप्त हुआ जाता है।

और इन दोनों को अगर आप रोज बदलते रहे, तो एक कनफ्यूजन, चित्त का खंड—खंड हो जाना, एक स्कीजोफ्रेनिक, खंडित चित्त की दशा पैदा होती है। जहां फिर कुछ भी नहीं सूझता, जहां कुछ ठीक नहीं मालूम पड़ता, कुछ गलत नहीं मालूम पड़ता। और कहा जाएं, और कहां न जाएं! एक पैर बाएं चलता है, दूसरा दाएं चलता है। एक आगे जाता है, दूसरा पीछे जाता है। जीवन अस्तव्यस्त हो जाता है।

लेकिन हमारी भी अडचन है। और वह अडचन यह है कि इन दो के अतिरिक्त तीसरे का हमें कोई स्वर सुनाई नहीं पड़ता।

तीसरा एक स्वर है। और वह है वासनाओं की प्रक्रिया का जागरूक साक्षी— भाव से दर्शन। भोगी और त्यागी दोनों ही बंध जाते हैं, सिर्फ साक्षी मुक्त होता है।

यह जो आसुरी संपदा से भरा हुआ व्यक्ति है, वह कभी न पूर्ण होने वाली कामनाओं का आसरा लेकर चलता है, इसलिए सदा दुखी होता है। क्योंकि जो पूरा नहीं होने वाला, उसके साथ चलने वाला दुख पाएगा ही। और सदा अतृप्ति, सदा असंतोष, और सदा अनुभव करता है, कुछ पाया नहीं; और दौड़ो, और दौड़ो। और वह कहीं भी पहुंच जाए, वह जो और की आवाज है, वह चलती ही रहेगी।

मोह से मिथ्या सिद्धांतों को ग्रहण करके भ्रष्ट आचरणों से युक्त हुए संसार में बर्तते हैं। तथा वे मरणपर्यंत रहने वाली अनंत चिंताओं को आश्रय किए हुए और विषय— भोगों के भोगने में तत्पर हुए, इतना मात्र ही आनंद है, ऐसा मानने वाले हैं।

जो भी छोटा—मोटा उच्छिष्ट मिल जाता है, इस भाग—दौड़ में, असंतोष में, दुख में जो थोड़ी—बहुत सुख की आभास जैसी झलक मिल जाती है, बस, आसुरी संपदा वाला मानता है, इतना ही आनंद है, यही सब कुछ है।

आप भी सोचें, इतने दिन आप जीए हैं, कम से कम इस जीवन के दिन का तो आपको स्मरण है ही। और जीवनों में जीए हैं, उसे छोड़ दें। इस सारे जीवन में आपको कोई सुख मिला है?

अगर खोजबीन करेंगे, तो बड़ी मुश्किल होगी। जितनी सचेतता से खोजबीन करेंगे, उतना ही खोजना मुश्किल होगा कि कोई सुख मिला है। कभी—कभी शायद कोई झलक मिली हो, आभास लगा हो, इंद्रधनुष जैसा कुछ दूर दिखाई पड़ा हो। हाथ में तो पकड़ते से खो जाता है इंद्रधनुष। बस दूर से थोड़ा दिखाई पड़ा हो, तो उतना ही सुख है, ऐसा मानकर हम अपने जीवन को ढोते हैं।

दैवी संपदा वाला व्यक्ति इतने सस्ते में राजी नहीं होता। साधारणत: लोग कहते हैं कि दैवी संपदा वाला व्यक्ति संतुष्ट होता है। लेकिन मैं आपसे कहता हूं, दैवी संपदा वाला व्यक्ति पहले तो बहुत असंतुष्ट होता है। वह इतना असंतुष्ट होता है कि आसुरी संपदा वाले व्यक्ति भी उसके सामने संतुष्ट मालूम पड़ेंगे। क्योंकि आसुरी संपदा वाला कहता है, इतना ही सुख है; इस पर ही राजी होता है। दैवी संपदा वाला कहता है, इसमें सुख कुछ भी नहीं है। यह दूर दिखाई पड़ने वाला इंद्रधनु है। और हाथ में आते ही पानी की बूंदें हाथ लगती हैं, कुछ भी हाथ नहीं लगता। यहां सुख बिलकुल नहीं है।

तो आसुरी संपदा वाला तो किसी तरह असंतोष में भी थोड़ा—सा संतोष खोज लेता है। दैवी संपदा वाला इसमें पूरी तरह असंतोष पाता है। और इसी असंतोष के कारण वह किसी नए आयाम में, एक नई दिशा में, एक नए क्षितिज की खोज में निकलता है। वासनाओं में पाता है कि कुछ नहीं मिला। आभास भी झूठे थे। तो फिर निर्वासना में, वासना के अतीत, अतिक्रमण में उसकी यात्रा शुरू होती है।

दैवी संपदा वाला व्यक्ति पहले तो संसार से पूर्ण असंतुष्ट हो जाता है, क्योंकि वही उसकी परमात्मा की खोज का आधार है, वही स्रोत है। लेकिन आसुरी संपदा वाला मानता है कि ठीक है, यह जो थोडा—सा सुख मिल रहा है, बस यही सुख है, इससे ज्यादा जीवन में पाने योग्य है भी नहीं, मिल भी नहीं सकता।

आपको मैं याद दिलाना चाहूं अनेक बार मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं, हम संतुष्ट हैं। और वे सोचते हैं कि बड़ी कीमती बात मुझसे कह रहे हैं। जो भी भगवान ने दिया है, हम उससे राजी हैं। भगवान ने दिया क्या है उनको? लोग मेरे पास आते हैं, वे कहते हैं, सब ठीक है। पत्नी है, बच्चा है, सब ठीक चल रहा है। काम भी ठीक है, पैसा भी निकल आता है, रोटी—रोजी चल जाती है; हम संतुष्ट हैं।

ऐसे व्यक्ति यह सोचकर मुझसे ये बातें कहते हैं कि मैं शायद उनकी प्रशंसा करूंगा; कहूंगा कि बड़े धार्मिक व्यक्ति हैं। पर यह आसुरी संपदा वाले व्यक्ति का लक्षण है। वह कहता है कि इतना ही सुख है बस, इससे ज्यादा तो कुछ है भी नहीं।

दैवी संपदा वाला व्यक्ति तो प्रखर आंखों से जीवन को देखता है और पूरी तरह असंतुष्ट हो जाता है। अगर यही जीवन है, तो वह इसी समय मरने को तैयार है। कुछ सार नहीं है।

लेकिन जैसे ही कोई व्यक्ति यह देखने में समर्थ होता है कि यह सब व्यर्थ है, उसकी .आंखों का रस इस जगत से अलग हो जाता है, उसकी आंखें मुक्त हो जाती हैं। और वह दूसरे जगत में अपनी आंखों को फैलाने के लिए समर्थ हो जाता है। ध्यान, जो इस जगत में लिप्त था, हट आता है। और फिर ध्यान को दूसरे जगत में ले जाना आसान हो जाता है। परिपूर्ण असंतुष्ट चेतना ही परमात्मा के परम संतोष को खोज सकती है।

इसलिए आशारूप सैकड़ों फांसियों से बंधे हुए और काम—क्रोध के परायण हुए विषय— भोगों की पूर्ति के लिए अन्यायपूर्वक धनादिक बहुत—से पदार्थों को संग्रह करने की चेष्टा करते हैं।

और जो व्यक्ति भी अपने को नहीं खोज रहा है, वह जाने—अनजाने पदार्थ खोजेगा। खोज तो जारी रखनी ही पड़ेगी। खोज से बचना असंभव है। कुछ न कुछ तो आप खोजेंगे ही। अगर स्वयं को न खोजेंगे, तो कुछ और खोजेंगे। और जो स्वयं को नहीं खोजेगा, उसके पास सिवाय पदार्थों की खोज के कुछ भी नहीं बचता।

इस जगत में दो ही आयाम हैं। या तो मैं चेतना को खोजूं या पदार्थ को खोजूं। बस, दो ही इस जगत के तल हैं, पदार्थ है, चेतना है। अगर आप चेतना की खोज में नहीं हैं, तो क्या करेंगे? तो फिर पदार्थ का संग्रह। आपकी जीवन—ऊर्जा

फिर धन इकट्ठा करने में, बड़े पद पर पहुंच जाने में, बड़ा साम्राज्य निर्मित करने में संलग्न हो जाएगी। यह जो आसुरी संपदा वाला व्यक्ति है, वह फिर पदार्थ इकट्ठे करने में लग जाता है। और पदार्थ का संग्रह समझ लेने जैसा है। उसके कुछ आधारभूत नियम हैं।

पहला, जो व्यक्ति पदार्थ का संग्रह करने में लगा हो, वह न्याय—अन्याय का विचार नहीं कर सकता। क्योंकि पदार्थ किसी का भी नहीं है। जिस जमीन को आज आप अपना कह रहे हैं, कल वह किसी और की थी, परसों किसी और की थी। अगर आप यह बैठकर सोचें कि जो मेरा नहीं है, उस पर मैं कैसे कब्जा करूं! तो फिर आप पदार्थ पर कब्जा कर ही नहीं सकते।

इसलिए पदार्थ को इकट्ठा करने वाला तो येन केन प्रकारेण, कैसे भी हो, इकट्ठा करने में लग जाता है। और पदार्थ इकट्ठा करना हो, तो दूसरे से छीनना पड़ता है। परिग्रह शोषण के बिना संभव नहीं है। पदार्थ इकट्ठा करना हो, तो दूसरे को वंचित करना पड़ता है। पदार्थ इकट्ठा करना हो, तो हिंसा करनी ही होगी, सूक्ष्म, स्थूल, लेकिन हिंसा करनी ही होगी। पदार्थ इकट्ठा करना हो, तो दान, दया और करुणा से अपने को बचाना होगा। चाहे चोरी करनी पड़े, चाहे भीख मांगनी पड़े, कुछ भी उपाय करना पड़े।

एक दिन एक स्टेशन पर मैं बैठा था, एक ट्रेन की प्रतीक्षा कर रहा था। और एक भिखारी ने मुझसे आकर भीख मांगी। चेहरे से वह आदमी पढ़ा—लिखा, ढंग से सुसंस्कृत मालूम होता था। तो मैंने उससे कहा कि बैठो, कुछ अपने संबंध में मुझे बताओ। तो काफी प्रसन्न हो गया। मैं एक किताब रखे हुए बैठा पढ़ रहा था। ट्रेन लेट थी।

तो उसने कहा, आप किताब पढ़ रहे हैं, तो आपसे मैं बात कर सकता हूं। मैं भी कभी एक लेखक था, मैंने भी एक किताब लिखी थी। मैंने उससे पूछा कि कौन—सी किताब लिखी थी? उसने बताया कि जीविका कमाने के बीस ढंग। मैं थोड़ा चौंका और मैंने उससे पूछा कि फिर भी तुम भीख मांग रहे हो! उसने कहा, ही, क्योंकि यह इक्कीसवी ढंग है, जो मैंने बाद में खोजा। और वे बीस तो असफल हो जाएं, मगर यह इक्कीसवी कभी असफल नहीं होता। यह बिलकुल रामबाण है।

एक आदमी चोरी कर रहा है, वह भी जो दूसरे का है, छीन रहा है। एक आदमी भीख मांग रहा है, वह भी चोरी का ही एक ढंग है, लेकिन ज्यादा कुशल ढंग है। वह दूसरे को इस तरह से फीस रहा है कि दूसरा अगर न दे, तो आत्मग्लानि पैदा हो, अगर दे, तो दुख पाए।

तो आप यह मत सोचना कि जब भिखमंगा आपसे भीख मांगता है और आप उसे भीख दे देते हैं, तो वह समझता है कि आप बड़े दानी हैं। वह यही समझता है कि वह होशियार था, आप बुद्ध थे। जब आप भीख नहीं देते और बच जाते हैं, तभी वह सोचता है कि यह भी आदमी कुशल है। उसके मन में इज्जत आपकी तभी होती है, जब आप नहीं देते। देते हैं, तब तो वह जानता है कि ठीक है। लेकिन वह स्थिति ऐसी पैदा करता है कि आपको अड़चन हो जाए, और दो पैसे के लिए उस अड़चन से निकलने को आप दो पैसा देना ही उचित समझेंगे।

चोर भी छीन रहा है, भिखारी भी छीन रहा है। जिसको हम व्यवसायी कहते हैं, जो दोनों के बीच है, वह भी छीन रहा है। और सबकी आकांक्षा एक है, संपदा का ढेर लग जाए।

संपदा का कितना भी ढेर लग जाए, अंततः वह संपदा आपकी कब्र बनती है, अंततः सिवाय उसके नीचे दबकर मर जाने के और कुछ प्रयोजन नहीं है।

लेकिन एक नियम समझने का है कि मनुष्य की जीवन—ऊर्जा बिना खोज के नहीं रह सकती। वह जीवन—ऊर्जा का स्वभाव है—खोज, सर्च। अगर आप कुछ भी नहीं खोज रहे हैं आंतरिक, तो आपको बाहर कुछ न कुछ खोजना ही पड़ेगा।

यह खोज तो तभी बाहर की बंद हो सकती है, जब भीतर की खोज शुरू हो जाए। जैसे ही भीतर की तरफ चेतना मुड़नी शुरू होती है, बाहर की खोज अपने आप खो जाती है। खो जाती है इसलिए कि अब आपको बड़ी संपदा

मिलनी शुरू हो गई। खो जाती है इसलिए कि अब असली संपदा मिलनी शुरू हो गई। खो जाती है इसलिए कि आपको खुद हंसी आएगी, मैं भी किन बच्चों के खेल में उलझा था!

धन बच्चों के खेल से ज्यादा नहीं है। लेकिन चूंकि के भी उसे खेल रहे हैं, हमें खयाल नहीं आता। खयाल नहीं आता, क्योंकि के भी हमारे बच्चों से ज्यादा नहीं हैं। सिर्फ शरीर से का हो जाना कोई बहुत. मूल्य नहीं रखता। वृत्ति तो बचपन की ही बनी रहती है। बच्चे डाक की टिकटें इकट्ठी कर रहे हैं, तितलियां इकट्ठी कर रहे हैं, कंकड़—पत्थर जोड़ रहे हैं। के हंसते हैं कि क्या पागलपन कर रहे हो! लेकिन डाक की टिकट में और हजार रुपए के नोट में कोई फर्क है? दोनों ही छापाखाने का खेल है। और दोनों पर लगी मुहर केवल सामाजिक स्वीकृति है।

बच्चे टिकटें इकट्ठी कर रहे हैं, या सिगरेट के लेबल इकट्ठे कर रहे हैं, के नोट इकट्ठे कर रहे हैं! बाकी फर्क नहीं है। यह जो बूढ़ा नोट इकट्ठे कर रहा है, यह बस शरीर से का हो गया है; भीतर इसका बचकानापन कायम है; भीतर यह अभी भी जुवेनाइल है, अभी भी बाल—बुद्धि है।

यह जो आसुरी संपदा वाला व्यक्ति है, इसकी बाल—बुद्धि नष्ट होती नहीं। यह मरते वक्त भी बाल—बुद्धि का ही मरता है। मरते वक्त भी उसकी चिंता पदार्थ के लिए होती है। जो समझदार है, वह शीघ्र ही पदार्थ की व्यर्थ दौड़ से अपने को मुक्त कर लेता है और परमात्मा की खोज में निकल जाता है।

पदार्थ की खोज बाहर, परमात्मा की खोज भीतर। पदार्थ की खोज दूसरों से छीनकर, परमात्मा की खोज अपने को निखारकर। पदार्थ की खोज में दूसरे का शोषण, परमात्मा की खोज में आत्मा की साधना।

और दो ही खोज हैं। और यह ध्यान रहे कि दोनों खोज कोई सोचता हो कि मैं एक साथ साधू तो वह गलती में है। इसका यह मतलब नहीं है कि आप संसार को छोड्कर भाग जाएं, तो ही परमात्मा को खोज सकते हैं। इसका यह भी मतलब नहीं है कि आप परमात्मा को खोजें, तो आप दीन—दरिद्र, भिखारी ही हो जाएंगे। यह कोई मतलब नहीं है।

लेकिन जो परमात्मा को खोजता है, पदार्थ पर उसकी पकड़ नहीं रह जाती। पदार्थ उसके पास भी पड़ा हो, तो भी उसकी पकड़ नहीं रह जाती। पदार्थ उससे छिन भी जाए, तो वह छाती पीटकर रोता नहीं है। पदार्थ हो तो ठीक; पदार्थ न हो तो ठीक। वह उसका लक्ष्य नहीं है। और अगर भीतर की खोज के लिए सब छोड़ना पड़े, तो वह तैयार है। भीतर की खोज के लिए सब खो जाए, तो भी वह तैयार है। वह पूरा दाव बाहर के जगत का भीतर के लिए लगाने के लिए सदा उत्सुक है। उस क्षण की प्रतीक्षा में है, जब वह सब गंवा देगा, स्वयं को बचा लेगा।

जीसस ने कहा है, जो स्वयं को बचाना चाहते हों, उन्हें सब गंवाने की तैयारी चाहिए। और जो सब बचाने को उत्सुक हैं, वे स्मरण रखें कि सब तो बच जाएगा, लेकिन स्वयं खो जाएंगे।

जगत में एक सौदा है, या तो आप पदार्थ बचा लें अपने को बेचकर। तो आप जो भी कमाते हैं, वह अपने को बेच—बेचकर कमाते हैं। आत्मा के टुकड़े निकाल—निकालकर बेच देते हैं। तिजोरी भरती जाती है, आत्मा खाली होती जाती है। एक दिन तिजोरी पास में होती है, आप नहीं होते। यही समृद्ध व्यक्ति की दरिद्रता है, यही समृद्ध व्यक्ति की भीतरी दीनता है, भिखमंगापन है।

मैंने सुना है, एक भिखारी एक दिन अमेरिका के एक अरबपति एण्ड्र कार्नेगी के पास गया। सुबह ही सुबह जाकर उसने बड़ा शोरगुल मचाया।

तो एण्ड्र कार्नेगी खुद बाहर आया और उसने कहा कि इतना शोरगुल मचाते हो! और भीख मांगनी हो तो वक्त से मांगने आओ! अभी सूरज भी नहीं निकला है, अभी मैं सो रहा था।

उस भिखारी ने कहा, रुकिए; अगर मैं आपके व्यवसाय के संबंध में कोई सलाह दूं आपको अच्छा लगेगा? एण्ड्र कार्नेगी ने कहा कि बिलकुल अच्छा नहीं लगेगा। तुम सलाह दे भी क्या सकते हो मेरे व्यवसाय के संबंध में! तुम्हारा कोई अनुभव नहीं है।

उस भिखारी ने कहा, आप भी मत दें सलाह। आपको भी कोई अनुभव नहीं है। जब तक हम उत्पात न करें, तब तक कोई देता है? वक्त से आने पर आपसे मिलना ही मुश्किल था। सेक्रेटरी होता, पहरेदार होते। अभी बेवक्त आया हूं तो सीधा आपसे मिलना हो गया। सलाह आप मुझको मत दें, मेरा पुराना धंधा है, और बपौती है, बाप—दादे भी यही करते रहे हैं।

एण्ड्र कार्नेगी ने अपने संस्मरणों में लिखा है कि मैं खुश हुआ उस आदमी की बात से। मैंने उससे कहा कि तुम क्या चाहते हो? उस आदमी ने कहा कि मैं ऐसे मुफ्त कभी किसी से कुछ लेता नहीं। मैं कोई भिखारी नहीं हूं। लेकिन एक काम मैं कर सकता हूं जो आप नहीं कर सकते। और अगर कुछ दाव पर लगाने की इच्छा हो, तो बोलिए!

एण्ड्र कार्नेगी ने लिखा है कि मुझे भी रस लगा कि वह क्या कह रहा है। कौन—सा काम है, जो वह कर सकता है और मैं नहीं कर सकता! तो मैंने उससे कहा, अच्छा, सौ डालर दाव पर। वह कौन—सा काम है? उसने कहा कि मैं एक सर्टिफिकेट ला सकता हूं कि मैं भिखारी हूं पर आप सर्टिफिकेट नहीं ला सकते।

एण्ड्र कार्नेगी ने अपने संस्मरण में लिखा है, सौ डालर मैंने उसे दिए, लेकिन फिर मैं सोचता रहा कि सर्टिफिकेट मैं ला सकूं या न ला सकुं भिखारी तो मैं भी हूं। अरबों रुपए मेरे पास हैं, इससे क्या फर्क पड़ता है! भीख तो जारी है, अभी भी मांग तो जारी है, अभी भी मैं खोज तो रहा ही हूं। कोई मुझे सर्टिफिकेट नहीं देगा, क्योंकि अगर मैं भिखारी हूं तो इस जगत में कोई भी समृद्ध नहीं है।

दस अरब रुपए एण्ड्र कार्नेगी छोड्कर मरा है। पर उसने लिखा है कि भिखारी तो मैं हूं उस आदमी ने बात तो ठीक ही कही है। क्योंकि अभी भी मेरी मांग है, आकांक्षा है। मेरा भिक्षा का पात्र अभी भी हाथ में है। अभी भी मुझे कुछ मिल जाए तो मैं सब खोने को तैयार हूं कुछ मिल जाए तो अपने को और लगाने को तैयार हूं।

एण्ड्र कार्नेगी जब मरा, तो मरने के दो दिन पहले जो आदमी उसकी जीवन—कथा लिख रहा था, उससे उसने पूछा कि अगर तुम्हें परमात्मा यह मौका दे, तो तुम एण्ड्र कार्नेगी के सेक्रेटरी होकर उसकी आत्म—कथा लिखना पसंद करोगे? या तुम एण्ड्र कार्नेगी बनना पसंद करोगे और एण्ड्र कार्नेगी तुम्हारी आत्मकथा लिखे? तो उस सेक्रेटरी ने कहा, क्षमा करें, आप बुरा न मानें; एण्ड्र कार्नेगी बनना मैं कभी पसंद नहीं करूंगा। मैं ठीक हूं कि आपकी आत्म—कथा लिख रहा हूं। तो एण्ड्रू कार्नेगी ने कहा, इसका क्या कारण है?

तो उसने कहा कि देखें, मैं आता हूं ग्यारह बजे; पांच बजे मेरी छुट्टी हो जाती है। आपके दफ्तर के क्लर्क आते हैं दस बजे, पांच बजे उनकी छुट्टी हो जाती है। चपरासी आता है नौ बजे, पाच बजे उसकी भी छुट्टी हो जाती है। आपको मैं सुबह सात बजे से दफ्तर में रात ग्यारह बजे तक देखता हूं। चपरासी से गई बीती हालत आपकी है। एण्ड्र कार्नेगी भगवान मुझे कभी न बनाए। वह मैं नहीं होना चाहता।

एण्ड्र कार्नेगी ठीक ही कह रहा है कि मैं भी भिखारी तो हूं ही। सब पाकर भी अगर आत्मा न मिले, तो भिखमंगेपन का अनुभव होगा। और सब खो जाए, आत्मा बच जाए, तो भीतर के सम्राट का पहली दफा अनुभव होता है।

गीता दर्शन–(भाग–7)
अध्याय—16 (प्रवचन—छठवां) — ऊर्ध्वगमन और अधोगमन

सूत्र—

इदमद्य मया लब्धमिमं प्राप्स्ये मनोरथम् ।
इदमस्तीदमपि मे भविष्यति पुनर्धनम्।। 13 ।।
असौ मया हत: शत्रुर्हनिष्ये चापरानपि।
ईश्वरोऽहम्हं भोगी सिद्धोऽहं बलवान्तुखी।। 14 ।।
आढ्योऽभिजनवानस्मि कीऽन्योऽस्ति सद्दशो मया।
यक्ष्ये दास्यामि मौदिष्य इत्याज्ञानविमीहिता: ।। 15 ।।
अनेकचित्तविभ्रान्ता मोहजालसमावृता: ।
प्रसक्ता: कामभोगेषु पतन्ति नरकेऽशुचौ।। 16 ।।
और उन आसुरी पुरूषों के विचार इस प्रकार के होते है, कि मैने आज यह तो पाया है और हस मनोरथ को प्राप्त होऊंगा तथा मेरे पास यह हतना धन है और फिर भी यह भविष्य में और अधिक होवेगा।

तथा वह शत्रु मेरे द्वारा मारा गया और दूसरे शत्रुओं को भी मैं मारूंगा। मैं ईश्वर अर्थात ऐश्वर्यवान हूं और ऐश्वर्य को भोगने वाला हूं और मैं सब सिद्धियों से युक्त एवं बलवान और सुखी हूं।

मैं का धनवान और के कुटुंब वाला हूं; मेरे समान दूसरा कौन है! मैं यज्ञ करूंगा, दान देऊंगा, हर्ष को प्राप्त होऊंगा— इस प्रकार के अज्ञान से आसुरी मनुष्य मोहित हैं। वे अनेक प्रकार से भ्रमित हुए चित्त वाले अज्ञानीजन मोहरूप जाल में फंसे हुए एवं विषय—भोगों में अत्यंत आसक्त हुए महान अपवित्र नरक में गिरते हैं।

पहले कुछ प्रश्न।
पहला प्रश्न :
गीता के इस अध्याय में देवों और असुरों के गुण बताए गए। हम असुरों से तो धरती पटी पड़ी है, किंतु देव तो करोड़ों में कोई एक होता है। ऐसा क्यों है?
जीवन में एक अनिवार्य संतुलन है। जितनी यहां बुराई है, उतनी ही यहां भलाई है। जितना यहां अंधेरा है, उतना ही यहां प्रकाश है। जितना यहां जीवन है, उतनी ही यहां मृत्यु है। दोनों में से कोई भी कम—ज्यादा नहीं हो सकते। दोनों की बराबर मात्रा चाहिए, तो ही जीवन चल पाता है। वे गाड़ी के दो चाक हैं

संसार चल रहा है, चलता रहा है, चलता रहेगा। उसके दोनों चाक बराबर हैं, इसीलिए। लेकिन फिर भी प्रश्न सार्थक है। क्योंकि साधारणत: देखने पर हमें यही दिखाई पड़ता है कि असुरों से तो पृथ्वी भरी है; देव कहां हैं?

समझने की कोशिश करें।

हमें वही दिखाई पड़ता है, जो हम हैं। पृथ्वी असुरों से भरी दिखाई पड़ती है, वह हमारी अपनी आसुरी वृत्ति का दर्शन है। देव को तो हम पहचान भी नहीं सकते। वह दिखाई भी पड़े, मौजूद भी हो, तो भी हम उसे पहचान नहीं सकते। क्योंकि जब तक दिव्यता की थोड़ी झलक हमारे भीतर न जगी हो, तब तक दूसरे के भीतर जागे हुए देव से हमारा कोई संबंध निर्मित नहीं होता।

जो हमें दिखाई पड़ता है, वह हमारी ही आंखों का फैलाव है, वह हमारी दृष्टि का ही फैलाव है। हमें वह नहीं दिखाई पड़ता जो है, बल्कि वही दिखाई पड़ता है जो हम हैं।

दैवी संपदा से भरे व्यक्ति को इस जगत में असुर कम और देवता ज्यादा दिखाई पड़ने लगते हैं। संत को बुरा आदमी दिखाई पड़ना बंद हो जाता है। हमें जो बुरा दिखाई पड़ता है, संत को वही .उसकी व्याख्या बदल जाती है। और व्याख्या के अनुसार जो हमें दिखाई पड़ता है, उसका रूप बदल जाता है।

लेकिन संत को दिखाई पड़ने लगता है, सभी भले हैं। असंत को दिखाई पड़ता है, सभी बुरे हैं। दोनों ही बातें अधूरी हैं। और जब आप परिपूर्ण साक्षी— भाव को उपलब्ध होते हैं, जहां न तो आप अपने को जोड़ते हैं साधुता से, न जोड़ते हैं असाधुता से, जहां बुरे और भले दोनों से आप पृथक हो जाते हैं, उस दिन आपको दिखाई पड़ता है कि जगत में दोनों बराबर हैं। और बराबर हुए बिना जगत चल नहीं सकता, क्षणभर भी नहीं जी सकता।

तो यदि हमें दिखाई पड़ती है पृथ्वी असुरों से भरी, तो इसका केवल एक ही अर्थ लेना कि हम आसुरी संपदा में जी रहे हैं। इसका दूसरा कोई और अर्थ नहीं है। पृथ्वी से इसका कोई संबंध नहीं है। मुल्ला नसरुद्दीन ने एक रात भांग पी ली। भाग के नशे में जमीन घूमती हुई दिखाई पड़ने लगी। तो सुबह उठकर जब वह होश में आ गया, उसने कहा, मैं समझ गया। जिस आदमी ने यह सिद्ध किया कि पृथ्वी घूमती है, वह भंगेड़ी रहा होगा!

हमारा अनुभव ही हम फैलाते हैं, दूसरा कोई उपाय भी नहीं है। जो हमारे भीतर है, उसके माध्यम से ही हम दूसरे को देखते हैं। तो दूसरे की वास्तविक स्थिति हमें दिखाई नहीं पड़ती, हमारा ही मन उस पर छा जाता है, हमारी छाया ही उसे आच्छादित कर लेती है। फिर जो हम देखते हैं, वह अपने ही मन का फैलाव है। दूसरा व्यक्ति जैसे परदा बन जाता है। हमारा ही चित्त उस परदे पर हमें दिखाई पड़ता है। दूसरे में हम स्वयं को ही देखते हैं। दूसरा जैसे दर्पण है।

तो अगर लगता हो कि सारी पृथ्वी असुरों से भरी है, तो जानना कि आपका चित्त आसुरी संपदा से भरा है। इसके अतिरिक्त यह बात किसी और चीज का लक्षण नहीं है। इससे पृथ्वी के संबंध में कोई खबर नहीं मिलती, सिर्फ आपके संबंध में खबर मिलती है; आपकी आंखों के संबंध में खबर मिलती है, आंखों के पीछे छिपे मन के संबंध में खबर मिलती है।

और अगर आपको कभी—कभी कोई एकाध देव भी दिखाई पड़ जाता है, तो उसका केवल इतना ही अर्थ है कि आपके भीतर की दैवी संपदा भी थोड़ी—बहुत सक्रिय है। वह बिलकुल मर नहीं गई है, जीवंत है। उसकी भी कोई एक किरण इस अंधेरे में मौजूद है, इसलिए कभी—कभी आप झलक दूसरे में उसकी भी देख लेते हैं। जैसे—जैसे आप दैवी संपदा में लीन होंगे, वैसे—वैसे जगत आपको दिव्य मालूम पड़ने लगेगा।

लेकिन ध्यान रहे, योग की जो परम दशा है, वह दोनों ही भावनाओं से मुक्त हो जाना है। जिस दिन जगत आपको उसकी वस्तुस्थिति में दिखाई पड़े, जिस दिन आपके भीतर से कोई भाव जगत पर न फैले, उस दिन आपको अनूठा अनुभव होगा कि जगत में सभी चीजें संतुलित हैं। यहां बुरा और भला बराबर है। यहां पापी और पुण्यात्मा बराबर हैं। यहां ज्ञानी और अज्ञानी बराबर हैं। उनकी मात्रा सदा ही बराबर है। उस मात्रा में जरा भी विचलन हुआ कि जगत नष्ट हो जाता है। वह संतुलन बना रहता है।

जिस दिन आपको ऐसा दिखाई पड़ जाएगा, यह संतुलन की अवस्था अनुभव में आ जाएगी, उस दिन न तो आप जगत को बुरा कहेंगे, न भला कहेंगे। उस दिन बुरे आदमी को भी बुरा नहीं कहेंगे, भले आदमी को भी भला नहीं कहेंगे। उस दिन आप कहेंगे, बुरा और भला एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। उस दिन आप बुरे को मिटाना नहीं चाहेंगे, भले को बचाना नहीं चाहेंगे। क्योंकि उस दिन आप जानेंगे कि बुरा मिटे, तो भला भी मिटता है; भला बचे, तो बुरा भी बचता है।

लाओत्से ने कहा है, जब दुनिया धार्मिक थी, तो न कोई भला आदमी था, न कोई बुरा आदमी था।

जब आप भी परम धार्मिक होंगे, तो न कोई बुरा रह जाएगा, न कोई भला रह जाएगा। तब बुरा और भला एक जागतिक संयोग होगा। जैसे हाइड्रोजन और आक्सीजन से मिलकर पानी बनता है, वैसे बुरे और भले से मिलकर संसार बनता है। और वह मात्रा सदा बराबर है।

जगत एक संतुलन है। पर हमें संतुलन दिखाई नहीं पड़ता, क्योंकि हम संतुलित नहीं हैं। हम साक्षी होंगे, तो संतुलित होंगे। तो जीवन में तीन दिशाएं हैं। एक दिशा है कि अपने भीतर जो आसुरी संपदा है, उसको हम अपना स्वभाव समझ लें, तो फिर सारा जगत बुरा है। दूसरी संभावना है कि हमारे भीतर जो दैवी संपदा है, हम उसके साथ अपने को एक समझ लें, तो सारा संसार भला है। और एक तीसरी परम संभावना है कि हम इन दोनों गुणों से, इस द्वैत से अपने को मुक्त कर लें और साक्षी हो जाएं, तो फिर जगत बुरे और भले का संयोग है, रात और दिन का जोड़ है, अंधेरे और प्रकाश का मेल है, ठंडे और गरम का संतुलन है। और जिस दिन आप इस तरह चुनावरहित, विकल्परहित भीतर दोनों संपदाओं में से किसी को भी न चुनेंगे, उसी दिन आपकी परम मुक्ति है। हमारे पास तीन शब्द हैं। एक शब्द नरक है। नरक का अर्थ है, जिसने अपने को आसुरी संपदा से एक कर लिया। दूसरा शब्द स्वर्ग है। स्वर्ग का अर्थ है,

जिसने अपने को दैवी संपदा से एक कर लिया। और तीसरा शब्द मोक्ष है। मोक्ष का अर्थ है, जिसने अपने को दोनों संपदाओं से मुक्त कर लिया।

देव भी मुक्त नहीं है, वह भी बंधा है। उसके बंधन प्रीतिकर हैं। उसकी जंजीरें सोने की हैं। उसका कारागृह बहुमूल्य है, उसका कारागृह बहुत सजा है। उसका जीवन आभूषणों से लदा है। लेकिन लदा है, वह निर्भार नहीं है। बुरा आदमी लोहे की जंजीरों से बंधा है; अच्छा आदमी सोने की जंजीरों से बंधा है। लेकिन बंधन में जरा भी कमी नहीं है।

सिर्फ भारत ने एक अनूठे शब्द का प्रयोग किया है, मोक्ष। दुनिया के किसी दूसरे धर्म ने, दुनिया की किसी जाति ने मोक्ष की कल्पना नहीं की है। स्वर्ग और नरक सारी दुनिया को पता हैं। इस्लाम या ईसाइयत या यहूदी, स्वर्ग और नरक से परिचित हैं। मोक्ष की धारणा एकांतिक रूप से भारतीय है।

मोक्ष का अर्थ है, ऐसा व्यक्ति, जो नरक से तो मुक्त हुआ ही, स्वर्ग से भी मुक्त है। जिसने बुरे को तो छोड़ा ही, भले को भी छोड़ा। इसे समझना बहुत कठिन है, क्योंकि भला हमें लगता है, छोड़ने का सवाल ही नहीं है। लेकिन तब हमें जीवन की गहरी व्यवस्था का कोई अनुभव नहीं है। भले के पीछे बुरा तो छिपा ही रहेगा।

अगर आप कहते हैं कि मैं सत्य ही बोलता हूं सदा सत्य ही बोलूंगा, और सदा सत्य को पकड़े रहूंगा! तो एक बात पक्की है, आपके भीतर झूठ भी उठता है। नहीं तो आपको सत्य का पता कैसे चलेगा! सत्य को आप बचाएंगे कैसे! सत्य को सम्हालेंगे कैसे! झूठ भीतर मौजूद है, उसके विरोध में ही सत्य उठता है।

अगर आप कहते हैं, मैं ब्रह्मचर्य का साधक हूं मैं ब्रह्मचर्य को पकड़े रहूंगा, मैं कभी ब्रह्मचर्य को छोडूंगा नहीं! तो उसका अर्थ है, कामवासना आपके भीतर लहरें लेती है। जिसके भीतर कामवासना समाप्त हो गई, उसको ब्रह्मचर्य का पता भी नहीं चलेगा।

जिसकी बीमारी बिलकुल मिट गई, उसे स्वास्थ्य का भी पता नहीं चलेगा। इसलिए जब आप बीमार पड़ते हैं और स्वस्थ होते हैं, तब आपको स्वास्थ्य की थोड़ी—सी झलक मिलती है। बीमारी में गिरने के बाद जब आप पहली दफे स्वस्थ होना शुरू होते हैं, तब आपको पता चलता है, स्वास्थ्य क्या है। अगर आप सदा ही स्वस्थ रहें, आपको स्वास्थ्य भूल जाएगा; उसका आपको कोई स्मरण ही नहीं रहेगा।

दुख के कारण सुख का पता चलता है, बुरे के कारण भले का पता चलता है।

मोक्ष का अर्थ है, अब मेरे दोनों ही बंधन न रहे; अब मैं मुक्त हूं; मेरा कोई चुनाव नहीं। न यह संपदा मेरी है, न वह संपदा मेरी है। संपदाएं ही मैंने छोड़ दी हैं। यह परम दशा है। यह परमहंस की अवस्था है।

अभी जहां आप खड़े हैं, अगर जगत आपको बुरा लगे, तो समझना कि आसुरी संपदा आपकी आंखों पर छाई है। अगर जगत अच्छा लगे, तो समझना कि दैवी संपदा ने आपको घेरा है। जगत दोनों लगे और दोनों में संतुलन दिखाई पड़े, तो समझना कि साक्षी के स्वर का जन्म हुआ है।

उस तीसरे की खोज जारी रखनी है। जब तक वह न हो जाए, तब तक समझना कि अभी हम धर्म के मंदिर के बाहर ही भटकते हैं, अभी हमारा भीतर प्रवेश नहीं हुआ है।

दूसरा प्रश्नः
आपने कहा किं मनुष्य दैवी और आसुरी संपदा बराबर मात्रा में लेकर पैदा होता है। तब ऐसा क्यों है कि इस जगत में आसुरी संपदा ही अधिक फूलती—फलती नजर आती है? दैवी संपदा की फसल इतनी दुर्लभ क्यों है?
असुरी संपदा फूलती—फलती नजर आती है, क्योंकि वही हमारी कामना है। एक चोर सफल होता हमें दिखाई पड़ता है। एक चोर धन को इकट्ठा कर लेता है, प्रतिष्ठा बना लेता है। हमारे मन में काटा चुभता है इससे। चाहते तो हम भी इसी तरह का महल, इसी तरह का धन, इसी तरह की पद—प्रतिष्ठा हैं। चोरी करने की भी हिम्मत नहीं जुटा पाते हैं

और चोर ने जो जुटा लिया है, उसकी भी आकांक्षा मन में है; उससे मन को चोट लगती है। उससे मन कहता है कि चोर फल—फूल रहा है। हम साधु हैं और फल—फूल नहीं रहे हैं।

अगर आप साधु हैं, तो आपको दिखाई पड़ेगा कि चोर दुख पा रहा है। अगर आप असाधु हैं, तो दिखाई पड़ेगा कि चोर सफल हो रहा है।

दुनिया में दो तरह के चोर हैं बड़ी मात्रा में। एक वे, जो चोरी की हिम्मत कर लेते हैं; और एक वे, जो चोरी की हिम्मत नहीं करते, सिर्फ विचार करते हैं।

मेरे पास लोग आते हैं। वे कहते हैं, हम अपना जीवन संतोष से बिताते हैं, बुरा काम नहीं करते, किसी को चोट नहीं पहुंचाते, फिर भी असफलता हाथ लगती है। और देखें, फलां आदमी ब्लैक मार्केटिंग कर रहा है, कि स्मगलिंग कर रहा है, कि चोर है, बेईमान है, धोखाधड़ी कर रहा है, और सफल हो रहा है!

उसकी सफलता आपको सफलता दिखाई पड़ती है, क्योंकि आप भी वैसी ही सफलता चाहते हैं। अगर सच में ही आपका साधु—चित्त होता, तो आपको उस आदमी की पीड़ा भी दिखाई पड़ती। भला उसने महल खड़ा कर लिया हो, लेकिन महल के भीतर वह जिस संताप से गुजर रहा है, वह आपको दिखाई पड़ता।

उस संताप से आपको कोई प्रयोजन नहीं है। उसकी भीतरी पीड़ा से आपको कोई प्रयोजन नहीं है। उसका बाहर जो ठाठ है, वह आपको दिखाई पड़ रहा है, क्योंकि बाहर का ठाठ आप भी चाहते हैं! जो उसने पा लिया है, वह आप नहीं पा सके, इससे मन में काटा चुभता है। इसलिए वह सफल लगता है और स्वयं आप असफल लगते हैं।

सिर्फ बुरा आदमी ही बुरे आदमी की सफलता को सफलता मान सकता है। भले आदमी को तो दया आएगी; भले आदमी को बुरे आदमी पर दया आएगी। क्योंकि वह उसके भीतर देखेगा, झांकेगा, और पाएगा कि उसने धन तो इकट्ठा कर लिया, स्वयं को खो दिया। वह पाएगा कि उसने संपदा तो इकट्ठी कर ली, लेकिन शांति नष्ट हो गई। वह पाएगा कि उसके पास साधन तो काफी इकट्ठे हो गए, लेकिन वह खुद भटक गया है। उसके जीवन की सफलता साधु—चित्त व्यक्ति को आत्मघात जैसी मालूम पड़ेगी। उसने अपने को सड़ा डाला, उसने अपने को बेच लिया।

लेकिन हमें हो सकता है दिखाई पड़े कि आदमी सफल हो रहा है, बुरा आदमी सफल हो रहा है। रोज चारों तरफ लोगों को दिखाई पड़ता है, बुरे आदमी सफल हो रहे हैं।

बुरा आदमी सफल हो ही नहीं सकता। और अगर सफल होता दिखाई पड़े, तो समझना कि आपकी सफलता की व्याख्या में कहीं कोई भ्रांति है। बुरा आदमी तो असफल होगा ही।

मैंने सुना है, सिकंदर अपने साम्राज्य को बढ़ाता हुआ नील नदी के किनारे पहुंचा। रास्ते में उसने न मालूम कितनी सीमाएं तोड़ी, कितने राज्य नष्ट किए, कितनी सेनाओं को पराजित किया, लेकिन नील नदी के किनारे पहुंचकर उसको बड़े अचंभे का अनुभव हुआ। जगह—जगह उसे प्रतिरोध मिला, टक्कर मिली। लोग हारे, तो भी आखिरी दम तक लड़े। लेकिन नील नदी के किनारे जब वह आया, तो उसे स्वागत मिला—वंदनवार, फूलों की वर्षा, निमंत्रण, उत्सव—लड़ने का कोई सवाल ही नहीं! वह चकित भी हुआ, हैरान भी हुआ।

जिस पहले नगर में उसने प्रवेश किया, नगर के लोगों ने पूरी सिकंदर की फौजों को निमंत्रण दिया, रात्रि— भोज का आयोजन किया। सुंदरतम भोजन, शराब, नृत्य—संगीत की व्यवस्था की। सिकंदर चकित भी था, हैरान भी था। यह कौन—सा ढंग है दुश्मन के प्रवेश पर स्वागत करने का! थोड़ा लज्जित भी था। क्योंकि वे तलवार लेकर खड़े होते, तो सिकंदर उन्हें जीत लेता। लेकिन वे प्रेम लेकर खड़े हुए, तो जीतना मुश्किल मालूम पड़ेगा।

जब उसके सामने भोजन की थाली लाई गई, तो वह एकदम नाराज हो गया; उसने जोर से घूंसा मारा टेबल पर और कहा कि यह क्या है? मेरा मजाक किया जा रहा है? क्योंकि थाली में सोने की रोटी थी, हीरे—जवाहरातों की सब्जियां

थीं। सिकंदर ने कहा कि तुम मूढ़ तो नहीं हो? शक तो मुझे तभी हुआ। जब मैं गांव में प्रवेश किया कि यह पागलों का गांव है, क्योंकि तुम लड़े नहीं, उलटे तुमने स्वागत किया। हम जीतने आए हैं, तुमने हमें फूलमालाएं पहनाई। शक तो मुझे तभी हुआ; लेकिन अब बिलकुल पक्का हो गया कि तुम्हारे दिमाग खराब हैं। सोने की रोटी खाई नहीं जाती! तो एक के आदमी ने, जो गांव का सर्वाधिक का था, उसने कहा, अगर गेहूं की रोटी ही खानी थी, तो वह तो आपको अपने घर ही मिल जाती। हम सोचे कि इतनी तकलीफ उठाकर आ रहे हैं, तो सोने की रोटी की तलाश होगी!

वह जो चोर है, लुटेरा है, बदमाश है, आपको उसकी सोने की रोटी दिखाई पड़ती है। लेकिन सोने की रोटी कोई खा तो पा नहीं सकता, भीतर भूखा मरता है। और आपको सोने की रोटी में सफलता दिखाई पड़ती है, क्योंकि आकांक्षा वही आपकी भी है, आप वही खुद भी चाहते हैं।

जो हम चाहते हैं, उससे ही हमारी संपदा का पता चलता है। अगर चोर आपको सफल होता दिखाई पड़ता है, तो आप चोर हैं। भला आपने कभी चोरी न की हो। अगर आपको चोर सफल होता हुआ मालूम होगा, तो साधु आपको असफल होता हुआ मालूम होगा। तो आप दया कर सकते हैं साधु पर। ईर्ष्या आपकी चोर से है। साधु को आप कह सकते हैं कि भोला— भाला है, जाने भी दो। समझ इसकी कुछ है नहीं। लेकिन ईर्ष्या आपकी चोर से है, प्रतियोगिता चोर से है।

पहली बात तो यह समझ लें कि बुराई कभी भी सफल नहीं होती, सफल होती दिखाई पड़ सकती है। देखने में भूल है, भ्रांति है। भलाई सदा सफल होती है, असफल होती दिखाई पड़ सकती है। क्योंकि बुराई की सफलता बाहर—बाहर है, भलाई की सफलता आंतरिक है।

इस जगत में जिन्होंने थोड़ा भी आनंद जाना है, उन्होंने भलाई के कारण जाना है। जिन्होंने महा दुख झेला है, उन्होंने बुराई के कारण झेला है।

अगर हम हिटलर और चंगेज और तैमूर के हृदय उघाड़कर देख सकें, तो हमें महानरक का दर्शन होगा। लेकिन इतिहास में नाम उनके हैं; सदा रहेंगे। आप भी सोच सकते हैं कि सफल हुए; बड़े साम्राज्य उन्होंने खड़े किए हैं, तो आप भी सोच सकते हैं, सफल हुए।

वस्तुत: जो सफल हुए हैं इस जमीन पर, शायद उनका नाम भी इतिहास में नहीं है, उनके नाम का आपको पता भी नहीं है। कौन सफल होता है जीवन में? जिसे शांति का अनुभव हो जाए, जिसे आनंद की प्रतीति हो जाए, जिसे समाधि की झलक मिल जाए।

अगर मुझसे पूछें सफलता की परिभाषा, तो समाधि सफलता की परिभाषा है। जिन्हें समाधि का थोड़ा रस आ जाए, जो नाच उठें समाधि में, जिनका हृदय पुलकित हो उठे समाधि में, वे ही केवल सफल हैं।

और बुरा कभी समाधिस्थ नहीं हो सकता। बुरा तो संतप्त ही होगा, चिंतित होगा। उसका मन धीरे— धीरे और नारकीय, और नारकीय होता चला जाएगा।

तो पहली बात तो यह, आसुरी संपदा फूलती—फलती दिखाई पड़ती है, क्योंकि उसी संपदा की चाह हमारे भीतर है। आसुरी संपदा कभी फली—फूली नहीं है। जिनके मन में दैवी संपदा की चाह है, वे हमेशा देखेंगे कि आसुरी संपदा सदा भटकी है, दुखी हुई है, कभी फली—फूली नहीं, सदा नष्ट हुई है।

और दूसरी बात, दैवी संपदा की फसल इतनी दुर्लभ क्यों है? दुर्लभ इसलिए है कि जीवन के कुछ नियम समझ लें, तो खयाल में आ जाए।

एक, कि बुरा करने के लिए आपको कुछ भी करना नहीं पड़ता, वह ढाल है। पानी को बहा दिया, पानी अपने आप गड्ढों में चला जाता है। गड्ढों में जाने के लिए पानी को कुछ करना नहीं पड़ता। पहाड़ पर चढ़ना हो, तो बड़ी कठिनाई

है। फिर पानी को चढ़ाने का आयोजन करना पड़ता है। आयोजन में श्रम होगा। आयोजन में असफलता भी हो सकती है।

बुरा ढलान है। बुरे का मतलब यह है कि जो हमसे नीचे है। भले का अर्थ है कि जो हमसे ऊपर है। बुरे का अर्थ है, जहां से हम गुजर चुके। हम पशु थे, पौधे थे। वहां से हम गुजर चुके। अगर आप वापस लौटना चाहते हैं, तो बिलकुल आसान है।

ऐसा समझें कि एक व्यक्ति स्कूल में परीक्षाएं पार कर—करके मैट्रिक में पहुंच गया है। अगर वह पहली की परीक्षा फिर से देना चाहे, तो क्या कठिनाई होगी! कोई कठिनाई न होगी। अगर वह पहली कक्षा में प्रवेश पाना चाहे, तो कोई अड़चन नहीं है, कोई उसे रोकेगा भी नहीं। और वह बड़ा सफल भी होगा पहली कक्षा में!

जहां से हम गुजर चुके हैं, विकास की जिन सीढ़ियों को हम पार कर चुके हैं, उनमें वापस उतरना हमेशा आसान है। बूढ़े से के आदमी को अगर आप क्रोध में ला दें, तो वह बच्चे के जैसा व्यवहार करने लगता है। वह बिलकुल आसान है। बच्चे का मतलब है, वापस लौट जाना। होशियार से होशियार आदमी भी क्रोध में आ जाए, तो नासमझी का व्यवहार करता है, जो बचकाना है। बच्चों की तरह पैर पटक सकता है, सामान तोड़ सकता है, चीख—पुकार मचा सकता है। यह रिग्रेशन है, पीछे लौटना है।

पीछे लौटना हमेशा आसान है। क्योंकि पीछे लौटने का मतलब है, वहां से हम गुजर चुके हैं, वह रास्ता परिचित है, उसे पाने के लिए कोई खोज नहीं करनी है।

दैवी संपदा का अर्थ है कि हमें आगे बढ़ना है, ऊंचाई छूनी है। जितनी ऊंचाई छूनी है, उतना श्रम होगा। और जितनी ऊंचाई छूने की हम कोशिश करेंगे, उतनी भूल—चूक भी होगी, हम गिरेंगे भी। याद रखें, केवल वही गिरता है, जो ऊंचा उठना चाहता है। नीचे गिरने वाले को तो गिरने का कोई कारण ही नहीं है।

दैवी संपदा हमसे ऊपर है, उसके लिए हाथ बढ़ाने पड़े, यात्रा करनी पड़े, हिमालय के शिखर की तरह हमें गौरीशंकर की तरफ बढ़ना पड़े। उसमें अड़चन होगी ही, असफलता भी हो सकती है; गिरेंगे भी, कभी रास्ता भी खो जाएगा। नीचे उतरने के लिए न गिरने का कोई डर है, न रास्ता खोने का कोई डर है, रास्ता परिचित है, जाना—माना है, उससे हम गुजर चुके हैं। और फिर नीचे उतरने में कोई प्रतिरोध न होने से सुगमता है। ऊपर चढ़ने में सारे शरीर पर जोर पड़ेगा।

अमेरिका का बहुत बड़ा वैज्ञानिक हुआ, थामस अल्वा एडिसन। उसने कोई एक हजार आविष्कार किए। दूसरे किसी मनुष्य ने इतने आविष्कार नहीं किए। छोटे से लेकर बड़े तक, बिजली, रेडियो, टेलीफोन, अनेक आविष्कार उसने किए हैं। उसका घर आविष्कारों से भरा था। लोग उसके घर आते थे, तो चकित होते थे, क्योंकि सब चीजों में उसने कुछ न कुछ किया था। उसके पूरे घर में नए—नए आविष्कार थे। पानी की टोंटी के नीचे हाथ रखिए और पानी गिरने लगे, खोलने की जरूरत नहीं, हाथ अलग करिए और पानी बंद हो जाए!

एक दिन अमेरिका का प्रेसिडेंट उसके घर उसके आविष्कार देखने गया था। हर चीज देखकर चकित हुआ। उसने अनूठे—अनूठे यंत्र खोजे थे। चलते वक्त अमेरिकी प्रेसिडेंट ने कहा, और सब तो ठीक है, एक बात मेरी समझ में नहीं आई। तुम जैसा आविष्कारक बुद्धि का आदमी, जिसने घर को आविष्कारों से भर रखा है, जिसकी हर चीज अनूठी और तिलिस्मी है, लेकिन तुम्हारे मकान का जो बगीचे का दरवाजा है, वह इतना भारी है कि खोलने में बड़ी ताकत लगती है। तुम्हें इसका खयाल नहीं आया?

उसने कहा, आप समझे नहीं। खयाल मुझे है। जो आदमी भी मेरा दरवाजा एक बार खोलता है, पांच गैलन पानी मेरी टंकी में पहुंच जाता है। तो मैं नौकर नहीं रखे हुए हूं। जो देखने आने वाले हैं—दिनभर आते हैं—वे खोलते, बंद करते हैं। बस, हर बार खोलो, बंद करो, तो पांच गैलन पानी दरवाजा ऊपर फेंक रहा है। जब भी कुछ ऊपर भेजना हो, तो थोड़ा श्रम तो होगा, थोड़ा भारी भी लगेगा, क्योंकि हम नियम जीवन के तोड़ रहे हैं।

जमीन चीजों को नीचे की तरफ खींचती है, ग्रेविटेशन है। पत्थर को आप ऊपर की तरफ फेंकते हैं, तो आपका हाथ थकता है, चोट लगती है। जितनी जोर से ऊंचा फेंकेंगे, उतनी ज्यादा शक्ति खोएगी। लेकिन पत्थर फिर नीचे चला आता है। जैसे ही आपकी भेजी हुई ऊर्जा पत्थर में चुक जाती है, जमीन उसे नीचे खींच लेती है। नीचे खींचते वक्त किसी ताकत की जरूरत नहीं पड़ती, जमीन स्वभावत: चीजों को नीचे खींच रही है।

आसुरी संपदा ग्रेविटेशन है, वह जमीन की कशिश है।

छोटा बच्चा एकदम खड़ा नहीं हो सकता मां के पेट से पैदा होकर। क्योंकि खड़े होने का मतलब है, ग्रेविटेशन से लड़ना, वह जो जमीन की कशिश है। इसलिए बच्चा पहले जमीन पर लेटकर सरकता है। वह जमीन खींच रही है, अभी बच्चा खड़ा होगा, तो फौरन गिरेगा। तो सरकेगा, फिर घुटनों के बल अपने को सम्हालेगा। वह जमीन की कशिश से ऊपर उठने की कोशिश कर रहा है। फिर किसी का सहारा लेकर खड़ा होगा। फिर अपने भरोसे पर दो कदम चलेगा; लेकिन गिरेगा, घुटने टूटेंगे, चोट लगेगी। फिर धीरे—धीरे, धीरे— धीरे.। और पैर उसके समर्थ हैं, वह खड़ा हो सकता है, शरीर उसका पूरा का पूरा तैयार है, लेकिन ग्रेविटेशन से संघर्ष करना होगा। फिर एक दिन आएगा कि वह अपने को संतुलित कर लेगा, खड़ा हो जाएगा।

फिर आपको खड़ा होना आसान मालूम पड़ता है। लेकिन अभी भी जब भी आप थक जाते हैं, तो लेटना ही पड़ता है। क्योंकि खड़े होने में, चाहे आपको कितना ही आसान हो गया हो, जमीन आपको खींच रही है और थका रही है। इसलिए खड़े—खड़े हम थक जाते हैं। जब भी थक जाते हैं, तब हमें जमीन पर लेटना पड़ता है।

रात सोकर हमें जो सुख मिलता है, वह जमीन की कशिश से लड़ाई छोड़ देने के कारण! तो हम समतल जमीन पर सो जाते हैं; फिर छोटे बच्चे हो गए, फिर जमीन से हमारी कोई लड़ाई नहीं है। हमने स्वीकार कर लिया। रातभर हमको विश्राम मिल जाता है। सुबह हम फिर खड़े होने में समर्थ हो जाते हैं।

खड़े होने का मतलब संघर्ष है। और अगर आदमी उड़ना चाहे, तो और बड़ा संघर्ष है, क्योंकि फिर जमीन से बिलकुल उसको अपनी मुक्ति चाहिए।

आसुरी संपदा जमीन की कशिश जैसी है। सुगम है। बुरा होने के लिए कोई बड़ी चितना नहीं करनी पड़ती। बुरा होने के लिए कोई बहुत बड़ी बुद्धिमत्ता की जरूरत नहीं है।

अपराधियों के अध्ययन किए गए हैं। और मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि अपराधियों में नब्बे प्रतिशत जड़बुद्धि होते हैं, ईडिआटिक होते हैं, उनके पास कोई बुद्धिमत्ता नहीं है। पर बड़ी हैरानी की बात है कि वे बुद्धिहीन जो हैं, वे बुराई करके कई दफा हमें सफल होते भी दिखाई पड़ते हैं। बुद्धिमान हारता दिखाई पड़ जाए, बुद्धिहीन सफल होते दिखाई पड़ते हैं। क्योंकि बुद्धिहीन में एक क्षमता तो है, वह क्षमता है नीचे गिरने की। अगर नीचे गिरने में ही प्रतियोगिता हो, तो वह आपसे जीत जाएगा। और हम सभी उसके साथ प्रतियोगिता कर रहे हैं। इसलिए वह हमें जीतता मालूम पड़ता है।

जो जितना नीचे गिर सकता है, उतने जल्दी सफल हो जाएगा। चाहे धन की दौड़ हो, चाहे राजनीति की दौड़ हो, वह जो बुरा आदमी है, सफल हो जाता है, क्योंकि वह ज्यादा नीचे गिर सकता है। दो राजनीतिज्ञों में वह राजनीतिज्ञ जीत जाएगा, जो ज्यादा नीचे गिर सकता है, उसको कम श्रम पड़ेगा।

मैंने सुना है कि विंसटन चर्चिल एक चुनाव में जिस क्षेत्र से लड़ रहे थे, एक बूढ़े आदमी के पास वोट मांगने गए थे। उनके विरोध में कोई खड़ा था। उस के आदमी ने कहा कि मैं सोचूंगा। चर्चिल ने उस पर दबाव डाला और कहा, कुछ तो कहो; कुछ तो धारणा बना ही लो, अब चुनाव करीब आ रहा है।

तो उस आदमी ने कहा, तुम मानते नहीं तो मैं कहूं कि मैं यही प्रार्थना करता हूं भगवान से कि तेरी बड़ी कृपा है कि दो में से एक ही जीत पाएगा। क्योंकि दोनों उपद्रवी हैं, और इतना ही अच्छा है कि दोनों नहीं जीतेंगे, एक ही जीतेगा। कम से कम एक ही बुराई जीतेगी।

मैंने सुना है, एक किसान एक बार स्वर्ग के द्वार पर पहुंचा। उसे बड़ी उदासी हुई वहां, जो हाल उसने देखा। बड़ी देर तक दरवाजा खटखटाता रहा, किसी ने फिक्र ही न की। तब उसने देखा कि उसके पीछे एक राजनीतिज्ञ है, जो उसके बाद में मरा और उसके बाद स्वर्ग के द्वार पर पहुंचा। उसने जाकर दस्तक दी। दस्तक दी नहीं कि द्वार खुल गए। द्वारपाल ने उसे भीतर ले लिया।

वह किसान तो खड़ा ही रहा। सोचने लगा मन में कि शायद यहां भी मेरी कोई चिंता होने वाली नहीं है। राजनीतिज्ञ यहां भी जीत जाएगा। और भीतर बैंड—बाजों की आवाज आने लगी। राजनीतिज्ञ का स्वागत हो रहा है।

फिर थोडी देर बाद जब बैंड—बाजे बंद हो गए, द्वार खुला; किसान को भीतर ले जाया गया। उसने सोचा कि शायद अब बैड—बाजे मेरे लिए भी बजेंगे। वे नहीं बजे! तो उसने द्वारपाल से पूछा कि यह पक्षपात यहां भी है? द्वारपाल ने कहा, पक्षपात जरा भी नहीं है। तुम्हारे जैसे लोग तो रोज यहां आते हैं। यह कोई हजारों साल के बाद राजनीतिज्ञ स्वर्ग में आया है। इसका विशेष स्वागत होना ही चाहिए।

राजनीति में भला होना मुश्किल है, भला होने वाला हारेगा। क्योंकि वहां गिरने की प्रतियोगिता है, कौन कितना गहरा गिर सकता है!

धर्म राजनीति से उलटी यात्रा है। वहां ऊपर आकाश में उड़ने की प्रतियोगिता है, कौन कितना पृथ्वी के आकर्षण से दूर जा सकता है! वहां कठिनाई पड़नी शुरू हो जाएगी। जितने आप दूर जाएंगे, उतनी ही पृथ्वी खींचेगी और संघर्ष बढ़ेगा। लेकिन उसी संघर्ष से आत्मा का जन्म होता है। उसी तनाव से, उसी प्रतिरोध से, उसी संयम से आपके भीतर व्यक्तित्व निर्मित होता है, इंटीग्रेशन घटता है, आप केंद्रित होते हैं।

तो यह ठीक है। दैवी संपदा की फसल इतनी दुर्लभ इसलिए है। और इसलिए भी कि हमारे चारों ओर सभी लोग आसुरी संपदा को पैदा करने में लगे हैं। और आदमी जीता है भीड़ से, भीड़ का अनुगमन करता है। भीड़ जहां जाती है, आप भी चल पड़ते हैं। आपके मां—बाप, आपका परिवार, आपका समाज जो कर रहा है, बच्चा पैदा होता है, वही बच्चा सीख लेता है, वह भी करना शुरू कर देता है।

आसुरी संपदा के लिए शिक्षण की काफी सुविधा है। दैवी संपदा के लिए शिक्षण की कोई सुविधा नहीं मालूम पड़ती। और जिस चीज की सुविधा हो उस तरफ आसानी हो जाती है, हम उसमें कुशल हो जाते हैं। जिस तरफ कोई सुविधा न हो, उस तरफ हमारे अंग पंगु हो जाते हैं।

आप चलते हैं, इसलिए पैरों में गति है, जान है। आप मत चलें, पैर सिकुड़ जाएंगे, पैरालाइब्द हो जाएंगे, लकवा लग जाएगा। आप देखते हैं, तो आंखें सजग हैं। मत देखें, अंधेरे में रहे आएं, थोड़े दिन में आंखें अंधी हो जाएंगी। आप सुनते हैं, तो कान तेज हैं। संगीतज्ञ के कान सबसे ज्यादा तेज हो जाते हैं। क्योंकि सुनने के लिए वह इतना आतुर होता है, एक छोटी से छोटी ध्वनि के परिवर्तन को वह पकड़ना चाहता है। चित्रकार की आंखें सतेज हो जाती हैं। दार्शनिक की बुद्धि तीक्ष्ण हो जाती है।

आप जो करते हैं, वह कुशल हो जाता है। आप जो नहीं करते हैं, उसमें आप अकुशल हो जाते हैं। अगर जन्म से ही हमारी आंखों पर पट्टियां बांध दी जाएं, और फिर जब हम जवान हो जाएं तब पट्टियां खोली जाएं, तो हम सब अंधे ही पट्टियों के बाहर आएंगे। वैज्ञानिक कहते हैं कि तीन साल तक कोई भी इंद्रिय काम न करे, तो जड़ हो जाएगी।

और आसुरी संपदा का तो हम उपयोग कर रहे हैं जन्मों—जन्मों से, दैवी संपदा का हमने उपयोग नहीं किया जन्मों—जन्मों से, इसलिए कठिन मालूम पड़ती है। वहा भूमि सख्त हो गई है। उस पर हमने कभी न हल चलाया, न कुछ खेती की, न बीज डाले। सब सूख गया है। पठार हो गया है, पत्थर जैसा मालूम होता है। जिस तरफ हम खेती करते रहे हैं, वहा आसानी मालूम होती है, वहां जमीन तैयार है, वहां जमीन फुसफुसी है, वहां बीज पकड़ना आसान है।

लेकिन कितनी ही कठिन हो दैवी संपदा की फसल, एक बार जो करना शुरू कर देगा, वह पाएगा कि वह कठिनाई भी कठिन नहीं है। और एक बार स्वाद आ जाए, तो आपको पता चलेगा कि आसुरी संपदा बड़ी कठिन थी, पुरानी आदत की वजह से सरल मालूम पडती थी। कठिनाइयां उसमें बहुत थीं, दुख बहुत था, दुख ही दुख था।

जहां फसल सरलता से हो जाती हो, लेकिन फल सदा दुख के ही हाथ लगते हों, उस सरलता का मूल्य भी क्या है? भला फसल कठिनाई की हो, लेकिन फल आनंद के लगते हों, तो उसे सरल और सहज ही मानना होगा।

जिन्होंने भी जाना है, उन सबने कहा है कि वह समाधि बड़ी सहज है, बड़ी सरल है; वह अंतिम उपलब्धि कठिन नहीं है। लेकिन हमें तो कठिन लगती है। क्योंकि हमने उस तरफ कोई कदम नहीं उठाया। हमने उस तरफ कोई ध्यान नहीं दिया। उस दिशा में हमने कोई कदम ही नहीं उठाया है, कोई यात्रा ही नहीं की है, हमारे पैर उस तरफ पंगु हैं।

तो बैठकर सोचते मत रहें कि वह कठिन है, कुछ करें और उसे सरल बनाएं। करने से चीजें सरल होती हैं।

आप कभी पानी में नहीं तैरे हैं, तो बहुत कठिन लगेगा। और आप यह भरोसा ही नहीं कर सकते कि आपको पानी में छोड़ दिया जाए, तो आप बच सकेंगे। लेकिन जो लोग तैरने की कला सिखाते हैं, वे कुछ भी नहीं करते, वे सिर्फ आपको पानी में छोड़ते हैं। पानी में छोड़ते से ही आप हाथ—पैर तड़फड़ाने लगते हैं बचाने के लिए खुद को। तैरना तो आपको आता नहीं, तैरने का तो आपको कोई पता नहीं, अपने को बचाने के लिए हाथ—पैर तड़फड़ाते हैं।

यह हाथ—पैर तड़फड़ाना ही तैरने की शुरुआत है। फिर इसको ही थोड़ी व्यवस्था से फेंकने लगेंगे, तैरना हो जाएगा। थोड़ी व्यवस्था ही सीखनी है। अभी थोड़ा अस्तव्यस्त फेंकते हैं, अराजक। फिर सिस्टम हो जाएगी, फिर आप ढंग से फेंकने लगेंगे। एक दफा ढंग से फेंकना आ गया, तो आप पाएंगे कि तैरने से सरल और कुछ भी नहीं हो सकता। अभी तो तैरने में लगेगा कि जान जाने का खतरा है, अगर नहीं जानते तो।

शुरू करें! यह ऊपर की तरफ जो उड़ान है, यह भी एक तैरना है। शुरू में कठिनाई होगी; स्वाभाविक है। जैसे—जैसे अभ्यास गहन होगा, वैसे—वैसे कठिनाई बदलती जाएगी। और एक ऐसा क्षण आता है, जब समाधि ही एकमात्र सरलता रह जाती है। तब बुरे होने से ज्यादा कठिन कुछ भी नहीं होता।

अब हम सूत्र को लें।
और उन आसुरी पुरुषों के विचार इस प्रकार के होते हैं, कि मैंने आज यह तो पाया है और इस मनोरथ को प्राप्त होऊंगा तथा मेरे पास यह इतना धन है और फिर भी यह भविष्य में और अधिक होवेगा। आसुरी संपदा के व्यक्ति को और की दौड़ होती है। उसके पास जो भी हो, उसे वह और बढ़ा लेना चाहता है। जो भी उसके पास हो, उतनी मात्रा उसे कभी काफी नहीं मालूम पड़ती।

आसुरी संपदा का व्यक्ति मात्रा में बड़ा उत्सुक होता है, क्वांटिटी में उत्सुक होता है। दस रुपए हों, तो हजार हो जाएं; हजार हों, तो दस हजार हो जाएं; दस हजार हों, तो दस करोड़ हो जाएं; उसकी मात्रा बढ़ती जाती है। आकड़ों में जीता है, कितने बड़े आकड़ों का फैलाव हो जाए! और उसकी पकड़ है। उसके पास जो भी है, वह कम है।

दूसरी बात, उसके पास जो भी है, उसमें उसे कोई सुख नहीं है। सुख सदा वहां है, जो उसके पास नहीं है।

आसुरी संपदा वाले व्यक्ति को सुख सदा आकाश में कहीं दूर है। आसुरी संपदा वाला व्यक्ति आशा में जीता है। जो उसके पास है, उसमें तो कुछ खास रस नहीं है। ठीक है। जो नहीं है, आनंद वहां छिपा है। और जब तक वह उसे न पा ले, तब तक आनंदित न हो सकेगा। वह दौड़ता रहता है। आज नष्ट करता है कल के लिए। कल को फिर नष्ट करेगा और आगे आने वाले कल के लिए। ऐसे पूरे जीवन को वह नष्ट करता जाएगा और जीने को पोस्टपोन करता रहेगा। वह कहेगा कि कल जब सब मेरे पास होगा, तब मैं जीऊंगा।

जर्मनी का एक विचारक हुआ। उसके पास बहुत धन था, और अध्ययन की बड़ी रुचि थी, और बड़ी आकांक्षा थी कि जितना ज्यादा से ज्यादा जान सकूं? जान लूं। तो उसने दुनियाभर से जो भी अनूठी से अनूठी पुस्तकें हों, दुर्लभ शास्त्र हों, अनेक भाषाओं के शास्त्र इकट्ठे करने शुरू कर दिए।

उसके पास विशाल पुस्तकालय खड़ा हो गया। पचासों भाषाओं की पुस्तकें उसके पास इकट्ठी हो गईं। ऐसा कोई ग्रंथ नहीं था दुनिया में, जो उसने खोजकर इकट्ठा न कर लिया हो। लेकिन यह इकट्ठा करते—करते उसने पाया कि वह नब्बे वर्ष का हो गया है। जब उसे होश आया कि इकट्ठा तो मैंने कर लिया, लेकिन इसको मैं पढूंगा कब!

और कहते हैं, यह धक्का उस पर इतना भारी पड़ा कि यह धक्का ही उसकी मृत्यु का कारण हुआ। और यह नब्बे वर्ष वह रोज सोच रहा था, कल! कल! और इकट्ठा हो जाए! और इकट्ठा हो जाए! पहले इकट्ठा कर लूं र फिर अध्ययन कर लूंगा, फिर ज्ञान को उपलब्ध हो जाऊंगा।

आसुरी संपदा वाला व्यक्ति भी ऐसे ही दौड़ता रहता है। धन इकट्ठा करता है। पद इकट्ठा करता है। उसे सुविधा तो कभी मिल ही नहीं पाती कि वह उसका उपयोग कर ले। आगे की दौड़ उसे पकड़े रहती है। और रोज को वह कुर्बान करता है। भविष्य के लिए, वर्तमान को वह बलि चढ़ाता है भविष्य के लिए।

और ध्यान रहे, वर्तमान के अतिरिक्त किसी चीज की कोई सत्ता नहीं है। भविष्य तो बिलकुल सपना है। जो आज को खो रहा है कल के लिए, वह आज को व्यर्थ ही खो रहा है। और एक बार यह आदत बन गई आज को खोने की, तो मैं सदा आज को खोता रहूंगा। और जब भी समय आता है, वह आज की तरह आता है; कल तो कभी आता नहीं।

और यह जो और की दौड़ है, इसका कोई भी अंत नहीं हो सकता, क्योंकि यह हर चीज पर जुड़ जाएगी। जो भी आप पा लेंगे, आपका आसुरी संपदा वाला मन कहेगा, और! आप सोच भी नहीं सकते कोई ऐसी स्थिति, जब आपका मन कहे कि बस, काफी! आप सोचें, कभी एकांत में बैठकर यही सोचें कि कितना धन आपको मिल जाए, तो आपका मन और नहीं कहेगा। तो आप अपने साथ ही खेल में पड़ जाएंगे। पहले सोचेंगे, दस करोड़। लेकिन भीतर—अभी कोई दस करोड़ दे भी नहीं रहा है, मिल भी नहीं गए हैं—लेकिन भीतर कोई कहेगा, इतने कम पर राजी क्यों होते हो जब दस अरब हो सकते हैं!

तो जो आपको आखिरी संख्या मालूम है, वहां तक तो आपका मन दौड़ाएगा। और आखिरी संख्या पर भी आपको बेचैनी अनुभव होगी कि और गणित क्यों न सीख लिया! और गणित जानते, तो आज यह मुसीबत तो न होती। आज अटक गए यहां आकर, दस महाशंख या एक करोड़ महाशंख, कहा अब जो संख्या आती है, वह भी छोटी मालूम पड़ेगी। सारी दुनिया आपको मिल जाए, तो भी छोटी मालूम पड़ेगी।

सिकंदर को किसी ने कहा कि तू जीत तो रहा है दुनिया को, लेकिन अगर तूने दुनिया जीत ली तो मुश्किल में पड़ेगा। सिकंदर ने कहा, कौन—सी मुसीबत होगी? जिसने कहा था, वह था डायोजनीज, एक फकीर। उसने कहा, तब तुझे पता चलेगा कि दूसरी दुनिया नहीं है, मुसीबत में पड़ जाएगा। एक दफे पूरी दुनिया जीत ली, तब तुझे पता चलेगा कि दूसरी दुनिया नहीं है।

और कहते हैं कि सिकंदर उसी क्षण उदास हो गया। और उसने कहा कि ऐसी उदासी की बातें मत करो। पहले मुझे एक तो जीतने दो। लेकिन चित्त उसका उदास हो गया यह बात सोचकर ही कि एक जीतने के बाद फिर दूसरी कोई दुनिया नहीं है। और कहीं भी थकेगा नहीं, और की मांग चलती ही जाएगी।

दैवी संपदा वाला व्यक्ति आज, यहीं जो उसके पास है, जो वह है, उसको परिपूर्णता से जीता है। इसका यह अर्थ नहीं कि उसका विकास नहीं होता। उसका ही विकास होता है। और भी निकलता है आज से, लेकिन वह उसकी माग नहीं करता। वह आज को जीने से उसका और निकलता है। और उसकी मांग नहीं है, उसके जीवन का फल है।

आसुरी संपदा वाला व्यक्ति आज तो जीता नहीं, और को सोचता रहता है। उसका और केवल मन पर दौड़ रहा है; वह जीवन का फल नहीं है।

तो यह विरोधाभासी बात: आप समझ लें। आसुरी संपदा वाला सोचता है, और! और! और! और जितना सोचता है उतना कम होता जाता है, क्योंकि जीवन क्षीण हो रहा है। दैवी संपदा वाला और का विचार नहीं करता, जो है, उसको पूरे के पूरे समस्त भाव से स्वीकार करके डूबता है। इस डूबने से और निकलता है, और बहुत कुछ उसे मिलता है।

जीसस से किसी ने पूछा कि क्या यह भी हो सकता है कि हम परमात्मा को भी खोजें और संसार के सुख भी हमें मिल जाएं? तो जीसस ने कहा, तुम संसार के सुखों की बात सोचो ही मत। फर्स्ट यी सीक दि किंगडम आफ गॉड, देन आल एल्स शैल बी एडेड अनटु यू। पहले तुम परमात्मा को खोज लो, फिर सब उसके पीछे चला आएगा।

वह जो परमात्मा का तलाशी है, दैवी संपदा का जो व्यक्ति है, वह इसी क्षण में परमात्मा की तलाश कर रहा है। शेष सब भी आता है, लेकिन उस शेष सबकी उसकी कोई मांग नहीं है।

जितनी हो मांग कम, उतना ज्यादा मिलता है। जो मांगते हैं, भिखारी रह जाते हैं। जो नहीं मांगते, सम्राट हो जाते हैं। जीवन बड़ा पहेली से भरा हुआ है! जो मांगते हैं, भिखारी रह जाते हैं। उनके पास जो है, वह भी छिन जाता है। जो नहीं मांगते, सम्राट हो जाते हैं; जो उनके पास नहीं था, वह भी मिल जाता है।

जीसस का एक बहुत विरोधाभासी वचन है। जीसस ने कहा है, अगर तुम मांगोगे, तो जो तुम्हारे पास है, वह भी छीन लिया जाएगा। और अगर तुम बांटोगे, तो जो तुम्हारे पास नहीं है, वह भी दे दिया जाएगा।

ऐसा ही है और ऐसा ही प्रतिपल हो रहा है। जो—जो आपने जीवन में मांगा है, वह कुछ भी आपके पास है नहीं। जो—जो आपने जीवन में दिया है, छोड़ दिया है, वह सब आपके पास है। जिसे हम छोड़ देते हैं, वह सदा के लिए हमारा हो जाता है। और जिसे हम पकड़ लेते हैं, वह सदा के लिए बोझ हो जाता है, और छूटने की तैयारी करता रहता है।

मैंने आज यह तो पाया है और इस मनोरथ को प्राप्त होऊंगा तथा मेरे पास यह इतना धन है फिर भी यह भविष्य में और अधिक होएगा। तथा वह शत्रु मेरे द्वारा मारा गया और दूसरे शत्रुओं को भी मैं मारूंगा। मैं ऐश्वर्यवान हूं ऐश्वर्य को भोगने वाला हूं और मैं सब सिद्धियों से युक्त बलवान एवं सुखी हूं।

यह बड़ा समझने जैसा है।

हमेशा आसुरी संपदा वाला व्यक्ति दूसरों को नष्ट करने की कामना से भरा रहता है, कैसे दूसरों को मिटा दूं! क्योंकि वह सोचता है, जब कोई भी न होगा, तब मैं परिपूर्ण हो जाऊंगा। अगर इस पृथ्वी पर कोई न हो, तो मैं ही सम्राट होऊंगा। तो जो भी मेरे विपरीत है, उसको मिटा दूं; जो भी मुझसे अन्यथा है, उसको नष्ट कर दूर ताकि मेरा साम्राज्य अबाध हो।

दैवी संपदा का व्यक्ति दूसरे को मिटाने का विचार नहीं करता। दैवी संपदा का व्यक्ति अपने को मिटाने का विचार करता है। इस फर्क को ठीक से समझ लें। क्योंकि वह कहता है, जब तक मैं हूं तभी तक कष्ट रहेगा। जब मैं नहीं रहूंगा, शून्य हो जाऊंगा, तब आनंद हो जाएगा।

दैवी संपदा के व्यक्ति का साम्राज्य उसके अहंकार के खो जाने पर उपलब्ध होता है। आसुरी संपदा के व्यक्ति के साम्राज्य की आकांक्षा दूसरों को मिटाने में है, कितना मैं दूसरों को मिटा दूं। आसुरी संपदा का व्यक्ति आपको जिंदा छोड़ सकता है, अगर आप उसके सामने मुरदे की भांति हो जाएं।

आसुरी संपदा का व्यक्ति विवाह करे, तो पत्नी को वस्तु बना देगा, वह मार डालेगा बिलकुल। उसको इस हालत में कर देगा कि उसमें कोई जीवन न बचे। वह कहे रात, तो रात। वह कहे दिन, तो दिन। आसुरी संपदा की स्त्री हो, तो पति को बिलकुल मिट्टी कर देगी। उसको छाया की भांति चलाना चाहेगी। आसुरी संपदा का पिता हो, तो बेटों को पोंछ देगा। उनको बड़ा करेगा, लेकिन ऐसे, जैसे वे मुरदे हैं। उनकी कोई स्वतंत्रता, उसकी कोई गरिमा नहीं बचने देगा।

आसुरी संपदा का व्यक्ति दुश्मनों को मार डालता है। मित्रों को मरे हुए कर देता है। उससे मित्रता रखनी हो तो मुरदा होना जरूरी है।

मैं आज ही इजिप्त के शाह फारूख के जीवन के संबंध में कुछ पढ रहा था। एक व्यक्ति ने संस्मरण लिखा है। वह व्यक्ति जड़ी—बूटियों के द्वारा चिकित्सा करता है। तो शाह फारूख ने उसे अपने इलाज के लिए बुलाया था। जब वह पहुंचा, तो शाह फारूख अपने मंत्रियों के साथ ताश खेल रहा था, जुआ खेल रहा था। उसका प्रधानमंत्री, उसके और मंत्री। यह व्यक्ति भी बैठकर चुपचाप देखता रहा। क्योंकि जब फारूख निपट ले, तब बात हो! यह देखकर हैरान हुआ कि चाहे पत्ते मंत्रियों के पास अच्छे हों, तो भी शाह फारूख ही जीतता है। चाहे उसके पत्तों में कोई जान न हो, तो भी वही जीतता है।

शाह फारूख को भी लगा कि यह आदमी देखकर चकित हो रहा है, हैरान हो रहा है। तो उसने कहा, चकित होने की कोई बात नहीं है; ये सब मेरे नौकर हैं और मेरी आशा मानना उनका फर्ज है। और शाह फारूख ने अपने प्रधानमंत्री से, जो उसके साथ ताश खेल रहा था, उससे कहा कि धोखा देने की कोई जरूरत नहीं, बस हार जाओ। उसी वक्त उसने पत्ते डाल दिए और हार गया।

यह जो आसुरी संपदा वाला व्यक्ति है, दुश्मनों को मिटा डालता है, क्योंकि वे झुकने को तैयार नहीं होते। मित्रों को पोंछ डालता है, उनके जीवन में कुछ सत्व नहीं बचने देता। आसुरी संपदा वाले व्यक्ति के पास बैठकर आपको लगेगा कि वह आपको चूस रहा है, नष्ट कर रहा है।

दैवी संपदा वाले व्यक्ति के पास बैठकर आपको लगेगा कि वह आपको जीवन दे रहा है। आपकी कुम्हलाई हुई जिंदगी फिर से ताजी हो रही है। दैवी संपदा वाले व्यक्ति के पास बैठकर आपको लगेगा, आपका भी मूल्य है; आप भी स्वीकार किए गए हैं, स्वागत है। आप भी एक धन्यता हैं। छोटे से छोटे व्यक्ति को भी दैवी संपदा वाले व्यक्ति के पास बैठकर लगेगा, उसका कोई मूल्य है, जगत में उसका भी कोई अर्थ है। वह व्यर्थ नहीं है, बोझ नहीं है।

आसुरी संपदा वाले व्यक्ति के पास श्रेष्ठ से श्रेष्ठ व्यक्ति को भी बैठकर लगेगा, उसका जीवन तुच्छ है। जिसके पास पहुंचकर आपको ऐसा लगे कि आपको तुच्छ किया जा रहा है, तो समझना कि आसुरी संपदा काम कर रही है। अगर आप दूसरों को तुच्छ करने की वृत्ति से भरे हों, तो समझना कि आप आसुरी संपदा से भरे हैं।

दूसरे की गरिमा और गौरव को स्वीकार करने का आपका मन हो, दूसरे का निजी मूल्य है। प्रत्येक व्यक्ति अपने आप में साध्य है, वह कोई साधन नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति अपने आप में परम मूल्य है, अल्टिमेट वैल्यू है। अगर दूसरे व्यक्ति के प्रति आपका ऐसा सदभाव हो, तो आप में दैवी संपदा का जन्म होगा।

जर्मनी के बहुत बड़े विचारक इमेनुएल काट ने अपने नीति—शास्त्र का एक आधार—स्तंभ रखा है। और वह आधार—स्तंभ है कि दूसरे व्यक्ति को साधन की तरह मत देखो, साध्य की तरह देखो।

दूसरा व्यक्ति आपका साधन नहीं है कि आप उसका उपयोग कर लो। दूसरा व्यक्ति अपने आप में साध्य है, उसका उपयोग करना गलत है। उसका उपयोग करने का अर्थ यह हुआ कि आप उससे वस्तु की तरह व्यवहार कर रहे हैं। लेकिन हमारी हालत यह है कि हमें अपनी वस्तु, मुरदा वस्तु भी एक जीवित व्यक्ति से ज्यादा मालूम पड़ती है।

मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन एक ट्रेन में सफर कर रहा था। बड़ी खचाखच भीड़ थी उस डिब्बे में और वह अपना लोहे का बड़ा वजनी संदूक ऊपर की सीट पर चढ़ाने की कोशिश कर रहा था। नीचे बैठी एक स्त्री ने कहा कि महानुभाव, वहां मत रखिए, ऊपर गिर पड़ेगा। वजनी बहुत है, और बहुत भारी और लोहे का है। नसरुद्दीन ने कहा, देवी जी, आप बिलकुल बेफिक्र रहिए; उसमें टूट जाने वाली कोई भी चीज नहीं।

वह जो महिला बैठी है, उसका सिर टूट जाने का सवाल ही नहीं है। उनके संदूक में टूटने वाली कोई चीज नहीं है।

हम सबकी जीवन—दशा ऐसी है। दूसरे का सिर भी कम कीमत का है, हमारा संदूक भी ज्यादा कीमती है। व्यक्ति का हमारे लिए कोई मूल्य नहीं है।

आसुरी संपदा वाले व्यक्ति के लिए व्यक्ति है ही नहीं, व्यक्तित्व की कोई गरिमा नहीं है। शत्रुओं को वह नष्ट करना चाहता है। और निरंतर सोचता है, आज शत्रु को मारा; वह शत्रु मेरे द्वारा मारा गया, दूसरों को भी मैं कल मारूंगा! वह सदा मारने की तैयारी में लगा है। उसकी चितना विध्वंस की है। वह मृत्यु का आराधक है। वह यमदूत है।

ठीक उससे विपरीत सृजन की जो आराधना है, क्रिएटिविटी, कि मैं कुछ निर्मित करूं, कुछ बनाऊं, जहां कुछ भी नहीं था, वहां कुछ निर्मित हो, जहां जमीन खाली पड़ी थी, वहां एक पौधा उगे, कुछ बने—वह जो सृजन की आराधना है, वही ईश्वर की तरफ जाने का मार्ग है।

इधर मैं आपको कहना चाहूं कि दुनिया के सभी धर्मों ने ईश्वर को स्रष्टा कहा है। ईश्वर को स्रष्टा सिद्ध करना आसान नहीं। दुनिया की कभी सृष्टि हुई है, इसके लिए प्रमाण जुटाना आसान नहीं। और एक बात तो निश्चित है कि उस सृष्टि के क्षण में हममें से कोई भी नहीं था, इसलिए कोई गवाही नहीं दे सकता। और जो भी हम कहेंगे, वह सिर्फ कल्पना होगी। क्योंकि अगर हम मौजूद थे, तो सृष्टि उसके पहले ही हो चुकी थी।

तो सृष्टि के प्राथमिक क्षण का तो हमें कोई पता नहीं है। हम कल्पना कर सकते हैं कि परमात्मा ने बनाई, कि नहीं बनाई, कि क्या हुआ। लेकिन वह सिर्फ मानसिक विलास होगा।

लेकिन फिर भी दुनिया के अधिक धर्म परमात्मा के स्रष्टा होने पर जोर क्यों देते हैं? कुछ कारण है। और वह कारण यह है कि जिस व्यक्ति को भी सृजन पकड़ लेता है, जो व्यक्ति भी अपने जीवन में स्रष्टा हो जाता है, उसे परमात्मा का अनुभव शुरू होता है। इस अनुभव से यह प्रमाण मिलता है कि इस जगत की गहनतम स्थिति सृजनात्मक है। परमात्मा स्रष्टा है, यह स्रष्टा अगर हम हों, तो हमें पता चलता है।

अगर आप एक गीत भी जन्म दे सकें, तो उस गीत को जन्म देने के क्षण में आप में परमात्म— भाव प्रकट होता है। आप एक चित्र भी बना सकें, एक मूर्ति खोद सकें, एक बच्चे को निर्मित कर सकें, बड़ा कर सकें—कुछ भी—एक पौधे को भी आप सम्हाल लें, और उसमें फूल आ जाएं, तो उन क्षणों में जो आपको प्रतीति होती है, वह परमात्मा की छोटी—सी झलक है।

विध्वंस परमात्म—विरोध है; सृजन परमात्मा की तरफ प्रार्थना है। और जो प्रार्थना सृजनात्मक न हो, वह प्रार्थना बांझ है, उस प्रार्थना का कोई भी मूल्य नहीं। मंदिर में बैठकर आप चीख—पुकार करते रहें, उससे कुछ बहुत हल होने वाला नहीं है। उतनी शक्ति सृजन में लग जाए, तो प्रार्थना सजीव हो उठेगी। जब आप स्रष्टा होते हैं, तभी आप परमात्मा के निकट होते हैं।

आसुरी संपदा वाला व्यक्ति, मैं ऐश्वर्यवान हूं ऐश्वर्य को भोगने वाला हूं और मैं सब सिद्धियों से युक्त एवं बलवान हूं और सुखी हूं ऐसी मान्यता रखता है।

सुखी तो होता नहीं, लेकिन मान्यता ऐसी रखता है कि मैं सुखी हूं; ऐसा अपने को समझाता है। यह बहुत मनोवैज्ञानिक सत्य है। हम जो नहीं होते, अपने को समझाने की कोशिश करते हैं। कमजोर आदमी अपने को शक्तिशाली समझता है। कमजोर आदमी अपने को समझाता है कि मैं महाशक्तिशाली हूं।

मैं एक स्कूल में पढ़ता था। मेरे जो हिंदी के शिक्षक थे, वे कक्षा में हमेशा, पहले दिन से ही आना शुरू हुए, तो अपनी बहादुरी की बातें करते थे, कि मैं इतना हिम्मतवर हूं कि चाहे अमावस की रात हो तो भी मरघट पर चला जाता हूं।

दों—चार बार मैंने उनसे सुना, तो मैंने एक बार उनसे पूछा कि मुझे शक होता है। इसमें कोई बहादुरी की बात भी नहीं है। और कहने की तो कोई जरूरत भी नहीं। आपके भीतर डर है। मरघट आप जा नहीं सकते।

उनके चेहरे पर पसीना आ गया। उन्होंने कहा, तुम्हें कैसे पता चला? मैंने कहा, पता चलने की बात ही नहीं। आप इतनी दफा दोहराते हैं। यह दोहराना बताता है कि आप अपने को समझा रहे हैं।

कुरूप आदमी दोहराता रहता है कि मैं सुंदर हूं। मूढ़ समझाता रहता है कि मैं बुद्धिमान हूं। कमजोर समझाता रहता है कि मैं ताकतवर हूं, और इसको सिद्ध करने की जगह—जगह कोशिश भी करता है। क्योंकि अपने से कमजोर आदमी तो खोज लेना हमेशा आसान है। अपने से मूढ़ भी खोज लेना आसान है। जगत इतना बड़ा है; आप अकेले नहीं हैं। काफी जगह है।

तो वह जो कमजोर आदमी है, अपने से कमजोर खोज लेता है। उनकी छाती पर चढ़कर वह सिद्ध कर लेता है कि मैं निश्चित ही बलवान हूं। आप अपने से मूढ़ को खोज लेते हैं!

और ध्यान रहे, हम सदा यही कोशिश करते हैं कि हमसे कमजोर, हमसे मूढ़ हमें मिल जाए। क्योंकि उसके पास हम बड़े मालूम होते हैं। लगता है, हम कुछ हैं। इससे प्रतीति हम अपने भीतर कर लेते हैं कि सब ठीक है।

पश्चिम का एक बहुत बड़ा विचारक हुआ, एडलर। उसने एक मनोविज्ञान को जन्म दिया, इंडिविजुअल साइकोलाजी। और उस मनोविज्ञान का आधार—स्तंभ उसने हीनता की ग्रंथि बनाया। उसका कहना है कि जिस व्यक्ति में जो चीज हीन होती है, वह उसके विपरीत रूप अपने आस—पास खड़ा करता है, ताकि खुद भी भूल जाए, दूसरे भी भूल जाएं। उसने बड़ा गहरा अध्ययन किया और उसने कहा कि जितने लोग दुनिया में जिन—जिन चीजों के पीछे पागल होते हैं, वह पागलपन बताता है कि वही उनकी कमजोरी है।

हिटलर जैसा व्यक्ति, यह किसी हीनता की ग्रंथि से पीड़ित है। और जब तक वह अपने को नहीं समझा लेगा कि मैं सारी दुनिया का मालिक हो गया, तब तक उसको शांति न मिलेगी। जो लोग पैर से कमजोर हैं, वे दौड़ने की कोशिश करते हैं।

विपरीत की कोशिश चलती है, ताकि हम अपने को भी दिखा दें, दुनिया को भी दिखा दें कि नहीं, यह बात नहीं है। कौन कहता है कि हम कमजोर हैं! कौन कहता है हमारे पैर कमजोर हैं! कौन कहता है हमारी आंख कमजोर है!

वह एक जगह बोल रहा था, तो एक बड़ी मजेदार घटना घटी। वह समझा रहा था कि जिन लोगों में जो—जो चीज की हीनता होती है, उस—उस की वे तलाश में जाते हैं। जैसे जिस आदमी को गरीबी की बड़ी ग्लानि होती है, वह धन की कोशिश करता है। जिस आदमी को अपने पद में हीनता दिखाई पड़ती है, वह पद—प्रतिष्ठा, राष्ट्रपति होने की दौड़ में लग जाता है। जो कुरूप होता है, वह

सौंदर्य की तलाश करने लगता है।

एक आदमी खड़ा हो गया और उसने कहा कि क्या यह बात आप पर भी लागू है? एडलर कुछ समझा नहीं। वह आदमी बड़ी गहरी मजाक कर रहा था। उसने कहा कि क्या इसका मतलब है कि जिसका मन कमजोर होता है, वह मनोवैज्ञानिक हो जाता है!

लेकिन एडलर की बात में सचाई है।

कृष्ण भी वही बात कह रहे हैं; कह रहे हैं कि ऐसा आदमी सुखी होता नहीं, हो नहीं सकता, लेकिन मानता है कि मैं सुखी हूं। और गौरव से इसका प्रचार करता है कि मैं सुखी हूं। उसके प्रचार के कारण आप भी धोखे में आ जाते हैं।

आपके राजनीतिज्ञ हैं, बड़े पदों पर हैं। उनको देखकर बाहर से आपको ऐसा लगेगा कि बड़े प्रसन्न हैं, फूलमालाएं डाली जा रही हैं, और बड़ा आनंद ही आनंद है। काश, उनके जीवन में आपको झांकने का मौका मिल जाए, तो वे

बड़े दुखी हैं और बड़े परेशान हैं। और किसी तरह अपनी फजीहत न हो जाए बिलकुल, इसको बचाने में लगे हुए हैं। और फजीहत पूरे क्षण हो रही है। लेकिन वे जब बाहर निकलते हैं, तो मुस्कुराते निकलते हैं।

उनकी मुस्कुराहट बिलकुल ऊपर से पोती गई है, पेंटेड है, क्योंकि भीतर वे रो रहे हैं और परेशान हैं। और एक क्षण की उनको सुविधा नहीं है, सुख नहीं है, शांति नहीं है। लेकिन बाहर वे दिखलाने की कोशिश करते हैं कि बड़े प्रसन्न हैं, बड़े आनंदित हैं। उससे आपको भी भ्रम पैदा होता है।

आप भी जब घर से बाहर निकलते हैं, तो दूसरों को भ्रम पैदा करवाते हैं कि बड़े प्रसन्न हैं। घर में कोई मेहमान आ जाए, तो पति—पत्नी ऐसी प्रेमपूर्ण बातें करने लगते हैं, जैसी उन्होंने कभी नहीं कीं। घर में कोई न हो, तब उनका असली रूप दिखाई पड़ता है। शिष्टाचार है, सभ्यता है।

मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी एक दिन अपने पति से बोली कि पच्चीस साल हो गए विवाहित हुए—कोई मेहमान घर आया था, उसके सामने ही उसने यह बात उठानी ठीक समझी, नसरुद्दीन शायद लज्जित हो जाए—पच्चीस साल हो गए, मैं इस घर में बंदिनी होकर रह रही हूं। कभी हम एक बार भी एक साथ घूमने भी घर के बाहर नहीं निकले!

नसरुद्दीन ने कहा, फजलू की मां, बात का इतना बतंगड़ मत बनाओ। इतनी बात बढ़ा—चढ़ाकर मत कहो। अतिशयोक्ति की तुम्हें आदत हो गई है। जब एक बार घर में स्टोव फट गया था, तो

हम दोनों साथ—साथ बाहर निकले थे कि नहीं?

घर—घर में वैसा है। लेकिन बाहर पति—पत्नी को देखें, सिनेमा की तरफ जाते, बाजार की तरफ जाते, तो ऐसा लगेगा कि परम सुख भोग रहे हैं।

हर कहानी कहती है, जहां शादी हो जाती है राजकुमारी और राजकुमार की, फिर वे दोनों सुख से रहने लगे। यहीं खतम हो जाती है। और इससे बड़ा कोई झूठ नहीं हो सकता। यहीं से दुख की शुरुआत होती है। उसके पहले थोड़ा—बहुत सुख रहा भी हो कल्पना में, आशा में। लेकिन सब कहानियां यहीं बंद हो जाती हैं। यह उचित भी है, क्योंकि इसके बाद आगे बात उठानी अशिष्टाचार की होगी। यहीं बंद कर देना ठीक है।

हम सब बाहर एक रूप बनाए हुए हैं। सुखी नहीं हैं, लेकिन दिखा रहे हैं कि सुखी हैं। दीन हैं, लेकिन दिखा रहे हैं कि दीन नहीं हैं। चाहे हमें उधार चीजें लेकर भी प्रभाव पैदा करना पड़े, घर में कोई मेहमान आ जाए, तो पड़ोस से सोफा उठा लाना पड़े, तो भी कोई बात नहीं, लेकिन हम दिखा रहे हैं।

आसुरी संपदा वाला व्यक्ति अपनी दीनता को छिपाकर उसका विपरीत रूप प्रकट करता रहता है। तो वह कहता है, मैं ऐश्वर्यवान हूं। वह कहता है कि मैं ऐश्वर्यों का भोगने वाला हूं। वह कहता है कि मैं सब सिद्धियों से युक्त हूं; कि मैं बलवान हूं? मैं सुखी हूं।

ये कोई भी बातें सच नहीं हैं। ये बातें तो सच होती हैं दैवी संपदा वाले को, कि वह ऐश्वर्यवान हो जाता है, ईश्वर हो जाता है, कि सारी सिद्धियां उसे सिद्ध हो जाती हैं; कि सारे सुख, सारी शक्तियां उसके ऊपर बरस जाती हैं। यह घटना तो घटती है दैवी संपदा वाले को। लेकिन आसुरी संपदा वाला मानकर चलता है कि ऐसा है; और इसका प्रचार भी करता है। और प्रचार अगर ठीक से किया जाए तो दूसरों को भी भरोसा आ जाता है। और अगर दूसरों को भरोसा आ जाए, तो हो सकता है, जिसने प्रचार किया है, उसको भी भरोसा आ जाए; कि इतने लोग मानते हैं, तो ठीक ही मानते होंगे।

मैं बड़ा धनवान, बड़े कुटुंब वाला हूं मेरे समान दूसरा कौन है! मैं यज्ञ करूंगा, दान देऊंगा, हर्ष को प्राप्त होऊंगा—इस प्रकार के अज्ञान से आसुरी मनुष्य मोहित है।

यह कुछ करने वाला नहीं है; न वह यश करने वाला है, न वह दान देने वाला है; लेकिन सोचता है कि मैं दूंगा। अच्छी बातें वह सदा सोचता है कि मैं करूंगा, करता तो सब बुरी बातें है, लेकिन सोचता हमेशा अच्छी बातें है। इस सोचने से एक बड़ी सुविधा हो जाती है। वह सुविधा यह है कि उसको लगता है कि मैं कोई बुरा आदमी नहीं हूं।

आप भी सब यह करते हैं। अच्छी—अच्छी बातें सोचते हैं, करेंगे! ऐसा सोचने से खुद को भी लगने लगता है कि जब करने की सोच रहे हैं, तो कर ही रहे हैं। और देरी क्या है, आज नहीं तो कल करेंगे, लेकिन करना तो निश्चित है!

कभी आप करने वाले नहीं। क्योंकि पचास साल जी चुके, इस पचास साल में कभी नहीं किए। आगे कैसे करेंगे? कौन करेगा? आप ही करने वाले हैं, और आप रोज टालते जाते हैं।

बुरे को आप आज कर लेते हैं, अच्छे को सोचते हैं, करेंगे। उससे मन में खयाल बना रहता है कि मैं कोई बुरा आदमी नहीं हूं। अगर मजबूरी की वजह से थोड़ा बुरा करना भी पड़ रहा है, तो यह तो केवल अस्थायी है, यह तो परिस्थितिवश है। लेकिन भाव तो मेरा अच्छा करने का है। उस भाव के कारण बुरा आदमी अपनी बुराई को झेलने में समर्थ हो जाता है। उस भाव के कारण बुरा आदमी बुराई के काटे को चुभने नहीं देता। वह भाव सुरक्षा बन जाता है।

मैं यज्ञ करूंगा, दान करूंगा, हर्ष को प्राप्त होऊंगा—इस प्रकार के अज्ञान से आसुरी मनुष्य मोहित है। यह उसकी आटो—हिम्मोसिस है, यह उसका मोह है।

यह मोहित शब्द समझ लेने जैसा है। मोहित का अर्थ है कि ऐसे भाव से वह अपने को समझा लेता है। और जो समझा लेता है, वैसा ही हो जाता है। वह मानने ही लगता है, धीरे— धीरे, धीरे— धीरे, बिना दान किए मानने लगता है कि मैं दानी हूं; क्योंकि दान करने का विचार करता है। बिना दिए दाता बन जाता है! क्योंकि इतनी बार सोचा है, सोचते—सोचते हमारे मन में लकीरें पड़ जाती हैं।

पश्चिम में एक विचारक हुआ एमाइल कुए। वह लोगों को कहता था, कुछ और करने की जरूरत नहीं; जो भी तुम होना चाहते हो, उसको सोचो। अगर तुम स्वस्थ होना चाहते हो, तो निरंतर सोचते रहो कि मैं स्वस्थ हो रहा हूं स्वस्थ हो रहा हूं? स्वस्थ हो गया हूं।

इसका परिणाम होगा। इसके परिणाम होते हैं। भला आप स्वस्थ हों या न हों, लेकिन आपको प्रतीति होने लगती है कि आप स्वस्थ हो गए।

एक घटना है, एमाइल कुए का एक मित्र एक दिन रास्ते पर उसे मिला। तो कुए ने पूछा कि तुम्हारी मां की तबियत अब कैसी है? तो उसके मित्र ने कहा कि अब तो तबियत बड़ी खराब है। बीमारी बढ़ती जा रही है, बुरी तरह बीमार है मेरी मां। बचने की कोई उम्मीद नहीं है। एमाइल कुए ने कहा, गलत। यह सिर्फ उसका खयाल है। यह खयाल है उसका कि वह बीमार है। यह खयाल मिट जाए, वह ठीक हो जाएगी।

फिर कुछ दिन बाद दुबारा रास्ते पर मिलना हुआ, तो एमाइल कुए ने पूछा कि अब तुम्हारी मां की कैसी हालत है? तो उसने कहा, अब उसका खयाल है कि वह मर गई है। पहले खयाल था, आपने बताया था, कि बीमार है। अब मर गई है, तब यही समझना चाहिए कि उसका खयाल है कि मर गई है!

अगर आप एक विचार को बहुत बार दोहराते रहे हैं, तो उसकी एक तंद्रा आपके आस—पास निर्मित हो जाती है, वह सम्मोहन है। और बुरा आदमी अपने को सम्मोहित किए रहता है भले विचारों से, हर्ष को उपलब्ध होऊंगा, दान करूंगा......।

सुना है मैंने कि मुल्ला नसरुद्दीन जब मरा, तो उसने वसीयत लिखी। जब वह वसीयत लिखवा रहा था, उसने कहा कि इतना मेरी पत्नी को, इतना मेरे बेटे को, इतना मेरी बेटी को। संपत्ति का विभाजन किया कि आधा मेरी पत्नी को, फिर

आधे का आधा मेरे बेटे को, फिर उसके आधे का आधा लड़की को.....। यह सब बांटकर और उसने कहा कि अब जो भी बचे, वह गरीबों को।

वह जो वकील लिख रहा था, उसने कहा कि बचता तो अब इसमें कुछ भी नहीं है! मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा कि बचने का सवाल ही नहीं है, वह तो मुझे पता है। है तो मेरे पास कुछ भी नहीं, इसीलिए तो कह रहा हूं आधा मेरी पत्नी को, संख्या नहीं लिखवा रहा हूं। है तो कुछ भी नहीं। मिलनो तो पत्नी को भी कुछ नहीं है, बेटे को भी, लेकिन मरते वक्त अच्छे खयाल...। और फिर जो बच जाए वह गरीबों को! और कहा है धर्मशास्त्रों में कि अच्छे खयालों से जो मरता है, वह अच्छे लोक को उपलब्ध होता है। यह तो अच्छे खयाल की बात है।

बुरा आदमी निरंतर अच्छे खयाल सोचता रहता है। और एक तंद्रा निर्मित करता है अपने आस—पास। बार—बार पुनरुक्त करने से सुझाव भीतर बैठ जाते हैं। वह सोचता है, हर्ष को प्राप्त होऊंगा, दान दूंगा, यज्ञ करूंगा। लेकिन यह सब भविष्य, करूंगा। करता नहीं। करता इनके विपरीत है, छीनता है।

अगर आप चोरी करने जा रहे हों, और चोरी करते वक्त आप सोचें कि हर्ज क्या है, अमीर से छीन रहा हूं गरीब को बांट दूंगा, दान करूंगा। तो चोरी का पाप और जो दंश है, वह मिट जाता है। फिर आपको लगता है कि आप एक काम, एक धार्मिक काम ही कर रहे हैं। अमीर से छीन रहे हैं, गरीब को देंगे।

छीन आप अभी रहे हैं, देने की बात कल्पना में है। वह देना कभी होने वाला नहीं है। क्योंकि छीनने वाला चित्त देगा कैसे? वह मौका लगेगा तो गरीब से भी छीन लेगा। सोचेगा, और भी गरीब हैं इससे ज्यादा, उनको दूंगा। और आखिर में वह पाएगा, अपने से ज्यादा गरीब कोई भी नहीं है। इसलिए जितना छीन लिया, उसे अपने काम में ले आना चाहिए।

मुल्ला नसरुद्दीन एक दिन अपने पड़ोसी के घर में गया, और उसने कहा कि क्या आप कुछ विचार करेंगे! एक की विधवा, जो दस साल से मकान में रह रही है और दस साल से किराया नहीं चुका पाई है। और किराया चुकाने का कोई उपाय भी नहीं है। आज उसे उसका मकान मालिक मकान के बाहर निकाल रहा है। कुछ सहायता करें। तो जिससे उसने सहायता मागी थी, सोचकर कि यह बूढ़ा आदमी बेचारा उस वृद्धा की सहायता के लिए आया है, उसने कहा, जो भी आप कहें, मैं सहायता करूंगा। कुछ रुपए उसने दिए। और उसने कहा, मित्रों को भी कहूंगा। लेकिन आप कौन हैं उस वृद्धा के? बड़े दयालु मालूम पड़ते हैं।

नसरुद्दीन ने कहा, मैं! मैं मकान मालिक हूं। दस साल से वृद्धा बिना किराया दिए रह रही है।

वह सोच रहा है कि वृद्धा की सहायता करने चला है!

यह जो हमारा चित्त है, यह बड़े प्रवंचक नुस्खे जानता है और उनके उपयोग करता है। और बहुत दिन उपयोग करने पर आपको उनका पता भी चलना बंद हो जाता है।

वे अनेक प्रकार से अमित हुए चित्त वाले अज्ञानीजन मोहरूप जाल में फंसे हुए एवं विषय— भोगों में अत्यंत आसक्त हुए अपवित्र नरक में गिरते हैं।

नरक से कुछ अर्थ नहीं है कि कहीं कोई पाताल में छिपा हुआ कोई पीड़ागृह है, जहां उनको गिरा दिया जाता है। ये केवल प्रतीक हैं। ऐसी भावनाओं में जीने वाला व्यक्ति नरक में गिर ही गया। वह नरक में जीता ही है। उसके भीतर प्रतिपल आग जलती रहती है विषाद की, दुख की, पीड़ा की। उसका संताप गहन है। क्योंकि जिसने कभी सुख न बांटा हो, उसे सुख नहीं मिल सकता। और जिसने सदा दुख ही बांटा हो, उसे दुख ही घनीभूत होकर मिलता है। वह दुख उस पर बरसता रहता है। उस दुख की वर्षा ही नरक है।

जो हम देते हैं, वह हमारे पास अनतगुना होकर लौट आता है। फिर हम सुख दें तो, हम दुख दें तो। हम वही अर्जित कर लेते हैं, जो हम बांटते हैं।

ऐसा व्यक्ति, जो दुख देता है और सुख देने की केवल कल्पना करता है, वह दुख पाता है और सुख की केवल आशा कर सकता है। उसे सुख मिल नहीं सकता। हमारे वास्तविक कृत्य ही हमारे जीवन में परिणाम लाते हैं, वे हमारी निष्पत्तिया हैं। जो हम करते हैं, वही हमारी निष्पत्ति बनता है।

अगर आप दुख पा रहे हैं, तो आप निरंतर ऐसा ही सोचते हैं कि लोग बहुत बुरे हैं, इसलिए दुख दे रहे हैं। आप दुख इसलिए पा रहे हैं कि दुख आपने बांटा है आज, पीछे, कल और पीछे कल। आप वही पा रहे हैं, जो आपने बांटा है।

बुद्ध को किसी पागल आदमी ने मारने की, हत्या करने की कोशिश की, एक पागल हाथी उनके ऊपर छोड़ा। एक पहाड़ के नीचे बैठकर ध्यान करते थे, तो चट्टान ऊपर से सरकाई।

बुद्ध के शिष्यों ने बुद्ध को कहा कि यह आदमी महान दुष्ट है। बुद्ध ने कहा, ऐसा मत कहो। मैंने उसे कभी कोई दुख दिया होगा, वही दुख मुझ पर वापस लौट रहा है। और मैं इस खाते को बंद कर देना चाहता हूं। इसलिए उसे चट्टान गिराने दो; उसे पागल हाथी छोड़ने दो, और मैं कोई प्रतिक्रिया न करूं, मैं कुछ भी न कहूं इस संबंध में अब, अब इस चीज को आगे बढ़ाना नहीं है। क्योंकि इतना भी मैं कहूं कि वह दुष्ट है, तो फिर मैं उसे दुख देने का उपाय कर रहा हूं। यह बात भी उसको चोट पहुंचाएगी कि दुष्ट है, ऐसा मैंने कहा। यह बात भी उसको काटा बनेगी, फिर इसका प्रतिफल होगा। तो वह जो कर रहा है, वह मैंने कुछ किया होगा, उसका प्रतिफल है। और इस खाते को मैं यहीं समाप्त कर देना चाहता हूं। यह किताब अब बंद कर देनी है। उसे कर लेने दो। और मैं अब कुछ भी न करूंगा, कोई भी प्रतिक्रिया, ताकि आगे के लिए कोई भी लेन—देन निर्मित न हो।

जब भी हमें दुख मिलता है, हम् सोचते हैं, लोग हमें दुख दे रहे हैं। वह हमारी भ्रांति है। कोई आपको क्यों दुख देने चला? किसी को क्या प्रयोजन है? किसको फुरसत है? लोगों को अपना जीवन जीना है कि आपको दुख देने का उपाय करना है?

नहीं, कहीं कोई आपने निर्मिति की है; कहीं कोई प्रतिध्वनि आपने फेंकी थी, वह आज वापस लौट रही है। उसे इस भाति जो चुपचाप स्वीकार कर लेता है, उसके दुखों के जो अतीत के बोझ हैं, वे कट जाते हैं और नए बोझ निर्मित नहीं होते।

और अगर कभी आपको कोई सुख मिलता है, तो भी आप जानना कि आपने कोई सुख बांटा होगा, जाने या अनजाने, उसका प्रतिफल है।

अगर हम अपने सुखों और दुखों को अपने ही कर्मों का प्रतिफल समझ लें, तो कर्म का सिद्धात हमारी समझ में आ गया। कर्म का सिद्धांत बस सार में इतना ही है कि मुझे वही मिलता है, जो मैंने किया है। मैं वही फसल काटता हूं जो मैंने बोई है; अन्यथा कुछ भी हो नहीं सकता।

ऐसी चित्त की दशा बनती चली जाए, तो आप धीरे— धीरे आसुरी संपदा से मुक्त होकर दैवी संपदा में प्रवेश कर जाएंगे। इससे विपरीत अपने को आप आदत बनाते रहें, तो आसुरी संपदा में धीरे— धीरे थिर हो जाएंगे। ऐसे थिर हो गए लोग, कृष्ण कहते हैं, महानरक में गिर जाते हैं।

गीता दर्शन–(भाग–7)
अध्याय—16 (प्रवचन—सातवां) — जीवन की दिशा

सूत्रः
अत्मसंभाविताः स्तब्धा धनमानमदान्विताः ।
यजन्ते नामयज्ञैस्ते दम्भेनाविधिपूर्वकम् ।। 17 ।।

अहंकारं बलं दर्प कामं क्रोध च संश्रताः ।
मामत्मपरहेहेषु प्रद्धईषन्तोऽभ्यसूक्काः ।। 18 ।।
तानहं द्विषतः क्रूरान्संसारेषु नराधमान्।
क्षियाम्यजस्रमशुभानासुरीष्येव योनिषु।। 19 ।।
आसुरी योनिमापन्ना मूढा जन्मनि जन्मनि।
मामाप्राप्यैव कौन्तेय ततो यानृत्यधमां गतिम्।। 29 ।।
वे अपने आपको ही श्रेष्ठ मानने वाले घमंडी पुरुष बन और मान के मद से युक्त हुए, शास्त्र— विधि से रहित केबल नाममात्र के यज्ञों द्वारा पाखंड से यजन करते हैं।

तथा वे अहंकार, बल, धमंड, कामना और क्रोधादि के परायण हुए एंव दूसरों की निंदा करने वाले पुरुष अपने और दूसरों के शरीर में स्थित मुझ अंतर्यामी से द्वेष करने वाले हैं। ऐसे उन द्वेष करने वाले पापाचारी और क्रूरकर्मी नराधमों को मैं संसार में बारंबार आसुरी योनियों में ही गिरता हूं।

इसलिए हे अर्जुन, वे मूढ पूरूष जन्म— जन्म में आसुरी योनि को प्राप्त हुए, मेरे को न प्राप्त होकर, उससे भी अति नीच गति को ही प्राप्त होते हैं।

पहले कुछ प्रश्न।

पहला प्रश्न :
कल कहा गया कि दुनिया में अच्छाई और बुराई का संतुलन है। ये दोनों सदा ही सम परिमाण हैं। एक बुरा मिटता है, तो अच्छा भी कम होता है। अगर इस संतुलन में कभी बदल होने वाला नहीं है, तो साधना का प्रयोजन क्या है?
प्रश्न महत्वपूर्ण है। साधकों को गहराई से सोचने जैसा है।

साधना के संबंध में हमारे मन में यह भांति होती है कि साधना भलाई को बढ़ाने लिए है। साधना का कोई संबंध भलाई को बढ़ाने से नहीं है; न साधना का कोई संबंध बुराई को कम करने से है। साधना का संबंध तो दोनों का अतिक्रमण, दोनों के पार हो जाने से है। साधना न तो अंधेरे को मिटाना चाहती है, न प्रकाश को बढ़ाना चाहती है। साधना तो आपको दोनों का साक्षी बनाना चाहती है।

इस जगत में तीन दशाएं हैं। एक बुरे मन की दशा है, एक अच्छे मन की दशा है और एक दोनों के पार अमन की, नो—माइंड की दशा है। साधना का प्रयोजन है कि अच्छे—बुरे दोनों से आप मुक्त हो जाएं। और जब तक दोनों से मुक्त न होंगे, तब तक मुक्ति की कोई गुंजाइश नहीं।

अगर आप अच्छे को पकड़ लेंगे, तो अच्छे से बंध जाएंगे। बुरे को छोड़ेंगे, बुरे से लड़ेंगे, तो बुरे के जो विपरीत है, उससे बंध जाएंगे। चुनाव है; कुएं से बचेंगे, तो खाई में गिर जाएंगे। लेकिन अगर दोनों को न चुनें, तो वही परम साधक की खोज है कि कैसे वह घड़ी आ जाए, जब मैं कुछ भी न चुनूं, अकेला मैं ही बधू; मेरे ऊपर कुछ भी आरोपित न हो। न मैं बुरे बादलों को अपने ऊपर ओढु न भले बादलों को ओढूं। मेरी सब ओढ़नी समाप्त हो जाए। मैं वही बचूं जो मैं निपट अपने स्वभाव में हूं।

यह जो स्वभाव की सहज दशा है, इसे न तो आप अच्छा कह सकते और न बुरा। यह दोनों के पार है, यह दोनों से भिन्न है, यह दोनों के अतीत है।

लेकिन साधारणत: साधना से हम सोचते हैं, अच्छा होने की कोशिश। उसके कारण हैं, उस भ्रांति के पीछे लंबा इतिहास है। समाज की आकांशा आपको अच्छा बनाने की है। क्योंकि समाज बुरे से पीड़ित होता है, समाज बुरे से परेशान है। इसलिए अच्छा बनाने की कोशिश चलती है। समाज आपको साधना में ले जाना नहीं चाहता। समाज आपको बुरे बंधन से हटाकर अच्छे बंधन में डालना चाहता है।

समाज चाहता भी नहीं कि आप परम स्वतंत्र हो जाएं, क्योंकि परम स्वतंत्र व्यक्ति तो समाज का शत्रु जैसा मालूम पड़ेगा। समाज चाहता है, रहें तो आप परतंत्र ही; पर समाज जैसा चाहता है, उस ढंग के परतंत्र हों। समाज आपको अच्छा बनाना चाहता है, ताकि समाज को कोई उच्छृंखलता, कोई अनुशासनहीनता, आपके द्वारा कोई उपद्रव, बगावत, विद्रोह न झेलना पड़े।

समाज आपको धार्मिक नहीं बनाना चाहता, ज्यादा से ज्यादा नैतिक बनाना चाहता है। और नीति और धर्म बड़ी अलग बातें हैं। नास्तिक भी नैतिक हो सकता है, और अक्सर जिन्हें हम आस्तिक कहते हैं, उनसे ज्यादा नैतिक होता है। ईश्वर के होने की कोई जरूरत नहीं है आपके अच्छे होने के लिए; न मोक्ष की कोई जरूरत है। आपके अच्छे होने के लिए तो केवल एक विवेक की जरूरत है। तो नास्तिक भी अच्छा हो सकता है, नैतिक हो सकता है।

धर्म कुछ अलग ही बात है। धर्म का इतने से प्रयोजन नहीं है कि आप चोरी नहीं करते। नहीं करते, बड़ी अच्छी बात है। लेकिन चोरी न करने से कोई मोक्ष नहीं पहुंच जाता है। जब चोरी करने वाले को कुछ नहीं मिलता, तो चोरी से बचने वाले को क्या मिल जाएगा! जब धन इकट्ठा करने वाले को कुछ नहीं मिलता, जब धन इकट्ठा कर—करके कुछ नहीं मिलता, तो धन छोड्कर क्या मिल जाएगा! अगर धन इकट्ठा करने से कुछ मिलता होता, तो शायद धन छोड़ने से भी कुछ मिल जाता। जब काम— भोग में डूब—डूबकर कुछ नहीं मिलता, तो उनको छोड़ने से क्या मिल जाएगा! वह कचरा है, उसको छोड्कर मोक्ष नहीं मिल जाने वाला है। यह थोड़ा कठिन है समझना।

एक बात ध्यान रखें, जिस चीज से लाभ हो सकता है, उससे हानि हो सकती है। जिससे हानि हो सकती है, उससे लाभ हो सकता है। लेकिन जिस चीज से कोई लाभ ही न होता हो, उससे कोई हानि भी नहीं हो सकती। अगर धन के इकट्ठा करने से कोई भी लाभ नहीं होता, तो धन के इकट्ठा करने से कोई हानि भी नहीं हो सकती।

धार्मिक व्यक्ति धन के इकट्ठा करने को मूढ़ता मानता है, बुराई नहीं। वह बाल—बुद्धि है। धर्म कामवासना में डूबे व्यक्ति को पापी नहीं कहता, सिर्फ अज्ञानी कहता है। उसे पता नहीं कि वह क्या कर रहा है। तो धर्म की कोई इच्छा नहीं 'है कि आप, जिन—जिन चीजों को समाज बुरा कहता है, उन्हें छोड़ देंगे, तो आप मुक्त हो जाएंगे। सज्जन पुरुष हमारे बीच हैं, फिर भी मोक्ष उनसे उतना ही दूर है, जितना दुर्जन से, उस दूरी में कोई फर्क नहीं पड़ता। मोक्ष की दूरी में तो तभी कमी होनी शुरू होती है, जब आप न दुर्जन रह जाते, न सज्जन, न साधु, न असाधु; क्योंकि इन दोनों का द्वंद्व है। और जब तक द्वंद्व नहीं टूटता, तब तक परमहंस अवस्था नहीं आती।

साधना का प्रयोजन है, परमहंस अवस्था आ जाए। इससे हमें डर भी लगता है। क्योंकि अगर कोई व्यक्ति बुराई—भलाई दोनों छोड़ दे, जैसे ही हम यह सोचते हैं, तो हमें डर लगता है कि वह आदमी बुरा हो जाएगा।

अगर आपसे कहा जाए कि बुराई— भलाई दोनों छोड़ दो, तो आपके मन में तत्क्षण बुरे करने के विचार आएंगे। भलाई तो छोड़ना बिलकुल आसान है। उसको तो कभी पकड़ा ही नहीं है, इसलिए छोड़ने का कोई प्रश्न नहीं है। आपको अगर पता चले कि दोनों बेकार हैं, तो आप तत्क्षण बुराई करने में लग जाएंगे। उस खुद की मनोदशा के कारण, धर्म की यह जो परम आत्यंतिक धारणा है, दोनों के पार हो जाना, उससे हमें भय लगता है।

लेकिन अगर आप समझेंगे साधना का अर्थ, साधना का अर्थ है, धीरे—धीरे बाहर से भीतर की तरफ जाना।

अच्छाई भी बाहर है, बुराई भी बाहर है। अगर आप चोरी करते हैं, तो भी आपके अतिरिक्त किसी और का होना जरूरी है। अकेले आप कैसे चोरी करिएगा? अगर इस पृथ्वी पर आप अकेले रह जाएं, सारा समाज नष्ट हो जाए; युद्ध हो जाए तीसरा, सब नष्ट हो जाएं, आप भर अकेले बचें; आप चोरी कर सकिएगा फिर? किसकी चोरी करिएगा? चोरी का अर्थ ही क्या होगा?

अगर आप अकेले हैं, तो चोरी नहीं कर सकते। अगर अकेले हैं, तो दान कर सकिएगा? दान के लिए भी दूसरे की जरूरत है। तो चोरी हो या दान, नीति हो या अनीति, पुण्य हो या पाप, ये सब बाहर की घटनाएं हैं। लेकिन सारी दुनिया नष्ट हो जाए और आप अकेले बचें, तो भी ध्यान कर सकते हैं। ध्यान का दूसरे से कुछ संबंध नहीं है। ध्यान आंतरिक घटना है। इसलिए ध्यान भीतर ले जाता है।

पुण्य भी बाहर भटकाता है, पाप भी बाहर भटकाता है। अच्छाई भी बाहर, बुराई भी बाहर। अच्छाई भी समाज में, बुराई भी समाज में। उन दोनों का कोई अंतस्तल से संबंध नहीं है।

साधना का अर्थ है, ध्यान। साधना का अर्थ है, अंतर्मुखता। साधना का अर्थ है, उसे मैं जानूं जो मैं अपनी निजता में हूं; जिसका दूसरे से संबंधित होने का कोई संबंध नहीं है। साधना का संबंध रिलेशनशिप, संबंधों से जरा भी नहीं है। साधना का संबंध है स्वयं से; मैं उसे जान लूं जो मैं हूं।

तो न तो चोरी करके कोई उसे जान पाता है, न चोरी छोड़कर कोई उसे जान पाता है। चोर भी भटकते हैं, जो चोरी नहीं .करते, वे भी भटकते हैं। न तो बुरा करके उसे कोई कभी जाना है, न भला करके कभी कोई उसे जाना है। उसे जानने वाले को तो सभी करना छोड़ देना पड़ता है, बुरा भी, भला भी। उसे तो भीतर अक्रिया में डूब जाना पड़ता है। उसे तो बाहर से आख ही बंद कर लेनी पड़ती है।

उसके लिए कामवासना भी व्यर्थ है, उसके लिए ब्रह्मचर्य भी दो कौड़ी का है। क्योंकि ब्रह्मचर्य और कामवासना दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। वे अलग—अलग बातें नहीं हैं। आपको ब्रह्मचर्य मूल्यवान दिखाई पड़ता है, क्योंकि कामवासना में आपको रस है। जिस दिन कामवासना में कोई रस न रह जाएगा, उस दिन ब्रह्मचर्य भी दो कौड़ी का है, उसका भी कोई मूल्य नहीं है।

द्वंद्व से कोई संबंध नहीं है। और जगत एक संतुलन है। जगत में बुराई और भलाई सदा संतुलित है। साधना तो जगत के पार उठने की प्रक्रिया है। लेकिन यह खयाल में तभी आएगा, जब थोड़ा—सा अनुभव करेंगे।

अभी तो हम कामों में ही चुनते हैं। यह काम बुरा है, छोड़ दें। यह काम भला है, कर लें। अभी एक्शंन पर, कर्म पर ही हमारा जोर है। वह जो कर्मों के पीछे छिपा हुआ हमारा स्वभाव है, उस पर हमारा कोई जोर नहीं है।

उसे जान लें, जो बुरा भी करता है और भला भी करता है। उसे जान लें, जो दोनों के पीछे छिपा है। उसे जान लें, जो सब करके भी अकर्ता है। उसे जान लें, जो सबका द्रष्टा है। उससे कोई लेना—देना नहीं है आपके कर्म का। आप सुबह पूजा करते हैं, प्रार्थना करते हैं, स्नान करते हैं कि नहीं करते हैं, मंदिर में जाते हैं कि मस्जिद में—इससे कोई संबंध नहीं है।

मैं यह नहीं कह रहा हूं कि आप मंदिर मत जाएं। और मैं यह भी नहीं कह रहा हूं कि आप अच्छाई मत करें। मैं सिर्फ इतना ही कह रहा हूं कि करने के पार जाना पड़ेगा, तभी धर्म से संबंध जुड़ेगा। वह अर्जुन भी इसी द्वंद्व से ग्रस्त है। उसका भी सवाल क्या है? उसकी भी चिंता क्या है? उसकी उलझन क्या है?

यही उलझन है। वह देखता है कि यह जो युद्ध है, बुराई है। इसमें सिर्फ लोग मरेंगे, सिर्फ हत्या होगी, खून बहेगा। न मालूम कितनी स्त्रियां विधवा हो जाएंगी। न मालूम कितने बच्चे अनाथ हो जाएंगे। घर—घर में दुख और हाहाकार छा जाएगा। यह बुरा है।

तो वह कृष्ण से यही कह रहा है कि इस बुराई को मैं छोड़ दूं। यह बुराई करने जैसी नहीं लगती। इससे तो अच्छा है कि मैं जंगल चला जाऊं, संन्यास ले लूं विरक्त हो जाऊं, छोड़ दूं सब। बुराई को छोड़ दूं अच्छाई को पकड़ लूं। और कृष्ण उसे क्या समझा रहे हैं? इसलिए कृष्ण का संदेश सरल होते हुए भी अति कठिन है।

कृष्ण उसे यह समझा रहे हैं कि तू जब तक यह सोचता है कि यह बुरा है, इसे छोड़ यह भला है, इसे करूं; तब तक तू उलझन में रहेगा। तू कर्म की धारणा छोड़ दे। तू यह भाव छोड़ दे कि मैं कर्ता हूं।

अगर तू युद्ध छोड़कर चला जाएगा, तो तू सोचेगा, मैंने संन्यास किया, मैंने त्याग किया, मैंने वैराग्य किया; पर कर्म का भाव तुझे बना रहेगा। युद्ध करेगा, तो तू समझेगा, मैंने युद्ध किया, मैंने लोगों को मारा, या मैंने लोगों को बचाया।

दोनों ही धारणाएं भ्रांत हैं। तू करने वाला नहीं है। करने की बात तू विराट पर छोड़ दे। तू सिर्फ निमित्त हो जा। तू सिर्फ विराट को मौका दे कि तेरे भीतर से कुछ कर सके। तू सिर्फ देखने वाला बन जा। तू इस युद्ध में एक द्रष्टा हो।

कृष्ण की पूरी चेष्टा यही है कि अर्जुन बुरे और भले के द्वंद्व से छूट जाए, निर्द्वंद्व हो जाए; दो के बीच चुने नहीं, तीसरा हो जाए; दोनों से अलग हो जाए।

साधना का यही प्रयोजन है।

दूसरा प्रश्न :
कल के सूत्र में आपने कहा कि वैज्ञानिक कहते हैं कि किसी भी इंद्रिय का यदि तीन साल तक उपयोग न किया जाए, तो वह इंद्रिय क्रियाशील नहीं रह जाती। और हम कामेंद्रिय का उपयोग बीस—पच्चीस वर्षो तक भी नहीं करते, फिर भी हम खुद को कामवासना से मुक्त नहीं पाते। हम— तो क्या, तथाकथित साधु—संन्यासी कई वर्षो की साधना के बाद भी कामवासना से पीड़ित दिखाई पड़ते हैं। क्या यह सिद्धांत काम—इंद्रिय पर लागू नहीं होता?
इस संबंध में दो—तीन बातें समझनी पड़ें।

पहली बात, काम—इंद्रिय आपकी और इंद्रियों जैसी ही इंद्रिय नहीं है। सच तो यह है कि काम—इंद्रिय आपकी सुरभी इंद्रियों का केंद्र है, आधार—स्रोत है। तो और इंद्रियां ऊपर—ऊपर हैं, परिधि पर हैं। कामेंद्रिय गहन अंतर में है, गहरे में है, जड़ में है।

वृक्ष की शाखाओं को हम काट दें, तो वृक्ष नहीं मरता; नई शाखाएं निकल आती हैं। वृक्ष की जड़ों को हम काट दें, वृक्ष मर जाता है। पुरानी शाखाएं भी जो हरी थीं, वे भी सूखकर समाप्त हो जाती हैं।

आख ऊपर है, हाथ ऊपर है, कान ऊपर हैं, कामेंद्रिय बहुत गहरे मैं है। इसलिए अगर आप आख का उपयोग तीन वर्ष तक न करें, तो आंखें क्षीण हो जाएंगी। कान का उपयोग न करें, तो आप बहरे हो जाएंगे। हाथ को न चलाएं, तो हाथ पंगु हो जाएगा। पैर का उपयोग न करें, पैर पक्षाघात से भर जाएंगे। लेकिन कामेंद्रिय भिन्न है। उसके कारण समझ लें।

आपके शरीर का प्रत्येक कण कामवासना से निर्मित है। आख तो छोटा—सा हिस्सा है, कान तो छोटी—सी हड्डियों का जोड़ है। लेकिन काम—इंद्रिय आपके पूरे शरीर को घेरे हुए है। वह जो मां के गर्भ में पहला अणु निर्मित हुआ था, वह कामवासना से निर्मित हुआ। फिर उसी अणु के विस्तार से आपका पूरा शरीर निर्मित हुआ है। आपका प्रत्येक अणु कामवासना से भरा है।

इसलिए आख फोड़ लें, कान तोड़ डालें, हाथ काट डालें, कामवासना में अंतर नहीं पड़ेगा। जननेंद्रिय को लोग कामेंद्रिय समझ लेते हैं, उससे भूल हो जाती है। जननेंद्रिय कामेंद्रिय का शरीर के ऊपर सिर्फ अभिव्यक्ति है। जननेंद्रिय सिर्फ कामेंद्रिय के उपयोग का द्वार है। लेकिन आपका पूरा शरीर कामवासना है। इसलिए जननेंद्रिय भी काट डालें, तो भी कामवासना नहीं मिटेगी।

कामवासना तो तभी मिटेगी, जब आप अपनी आत्मा को शरीर से बिलकुल पृथक अनुभव कर लें। उसके पहले नहीं मिटेगी। अगर शरीर से रंचमात्र भी तादात्मय है, अगर जरा—सा भी जोड़ है कि मैं शरीर हूं तो उतनी कामवासना कायम रहेगी। आख नष्ट हो जाएगी बड़ी आसानी से, कामवासना इतनी आसानी से नष्ट नहीं होगी। दूसरी बात, आप कामवासना से पैदा हुए हैं। आपके पैदा होने में कामवासना का प्रगाढ़ हाथ है। तो जब तक आप में जीवन की आकांक्षा रहेगी, तब तक कामवासना से छुटकारा न होगा। जब तक आप चाहते हैं कि मैं बचूं जीऊं, रहूं तब तक आप कामवासना से मुक्त न होंगे। क्योंकि जीवन पैदा ही कामवासना से हुआ है; और आप जीना चाहते हैं, तो कामवासना को बल मिलता है।

जिस दिन आपकी जीवेषणा छूटेगी, और आप कहेंगे कि मैं मिटूं खो जाऊं, समाप्त हो जाऊं, वही मेरा आनंद है; अब मैं बचना नहीं चाहता, अब मैं रहना नहीं चाहता, अब इस देह को घर नहीं बनाऊंगा, अब मैं मुक्त हो जाना चाहता हूं

सब सीमाओं से; जिस दिन जीवन की जगह मृत्यु आपका लक्ष्य हो जाएगी, उस दिन कामवासना मिटेगी। उसके पहले कामवासना नहीं मिटेगी।

इसलिए पच्चीस वर्ष, पच्चीस जन्म भी कामवासना को दबाए रखने से उसका अंत नहीं होता। फिर जितना आप उसे दबाते हैं, उतनी ही वह बढ़ती है। क्योंकि भला आप कर्मेंद्रिय का उपयोग न करें, जननेंद्रिय का उपयोग न करें, लेकिन चित्त कामवासना में लगा ही रहता है। तो आपका शरीर तो संलग्न है।

आप पच्चीस वर्ष तक अपने को सब तरह की कामवासना से बचा लें, तो भी ऊपर—ऊपर ही बचाव हो रहा है, भीतर तो मन कामवासना में ही चल रहा है। और वह जो भीतर कामवासना बह रही है, चित्त में जो विचार चल रहे हैं, वे कामेंद्रिय को सजग रखेंगे, जीवित रखेंगे।

हालत तो उलटी है। अगर आपको कामवासना का अतिशय उपयोग करने दिया जाए, तो कामवासना मर भी जाए; उपयोग न करने दिया जाए, तो नहीं मरेगी।

मैं एक फ्रेंच चिकित्सक मोरिस मैक्यू के संस्मरणों का एक संकलन पढ़ रहा हूं आफ मेन एंड प्लांट्स। उसने अपने संस्मरणों की एक किताब लिखी है। वह जड़ी—बूटियों के संबंध में बड़े से बड़ा ज्ञाता है। और जड़ी—बूटियों के द्वारा उसने हजारों मरीजों को ठीक किया है। और दुनिया के बड़े—बड़े लोग उसे निमंत्रण देते रहे हैं। चर्चिल, बड़े अभिनेता, बड़े लेखक, बड़े कवि, राजा—महाराजा उससे इलाज करवाते रहे हैं। तो उसने सारे संस्मरण लिखे हैं। उसने प्रिंस अली खां का भी संस्मरण लिखा है, आगा खां के लड़के का।

प्रिंस अली खां ने उसे फोन किया और कहा कि कुछ निजी बीमारी है, कुछ गुप्त बीमारी है, उसके लिए तुम्हें आना पड़े। प्रिंस अली खां का निमंत्रण बड़ी बात है। चिकित्सक भागा हुआ उनके महल पर पहुंचा। सबको विदा करके प्रिंस अली ने अपनी बीमारी बतानी शुरू की। चिकित्सक को भी लग तो रहा था कि बीमारी कामवासना से संबंधित होगी, यौन की होगी, इसलिए इतनी गुप्तता रखी जा रही है। प्रिंस अली खां ने कहा कि मेरी कामवासना बिलकुल खो गई है, सुधा मेरी मर गई है, मुझे इच्छा ही नहीं होती। कुछ करो!

तो चिकित्सक ने पूछा कि आप महीने में कितनी बार संभोग करते हैं? प्रिंस अली खां खिलखिलाकर हंसने लगा, और उसने कहा, महीने में! हर रोज दिन में तीन बार करता हूं। लेकिन इच्छा बिलकुल मर गई है। कोई वासना नहीं पैदा होती। बस, एक यांत्रिक कृत्य की तरह कर रहा हूं।

अब यह कोई बीमारी न हुई। अगर दिन में कोई तीन बार संभोग कर रहा है, तो इच्छा मर ही जाएगी। इच्छा क्या, वह खुद भी मर जाएगा जल्दी।

कामवासना का अगर ज्यादा उपयोग किया जाए, तो मर जाती है। अगर बिलकुल उपयोग न किया जाए, दबाकर रखा जाए, तो सजीव रहती है, जीवित रहती है। लेकिन न तो बहुत उपयोग करने

से उससे छुटकारा होता है......।

क्षुधा मर गई है, लेकिन और भी गहरी वासना है कि न मरे। वासना क्षीण हो गई है, लेकिन भीतर से मन कह रहा है, इसे जिलाए रखो, कुछ उपाय करो।

अक्सर ऐसा हो जाता है कि व्यभिचारियों की कामवासना शिथिल हो जाती है और ब्रह्मचारियों की नहीं शिथिल हो पाती। क्योंकि व्यभिचारी तो अति कर देते हैं, थक जाते हैं।

गुरजिएफ ने अपने संस्मरणों में लिखा है कि काकेशस में पैदा होने वाला एक खास फल उसे बचपन में बहुत प्रिय था। इतना ज्यादा प्रिय था कि उसकी वजह से वह अक्सर बीमार पड़ जाता था। इतना ज्यादा खा लेता था। और वह नुकसानदायक भी था, और बहुत भारी और वजनी था।

उसने लिखा है कि मेरे दादा ने मुझे कहा कि इससे छूटने का एक ही उपाय है : एक दिन तू जितना खा सके आखिरी दम तक, मौत करीब मालूम होने लगे, तब तक तू इसको खाता जा। गुरजिएफ ने कहा, इससे कैसे छुटकारा होगा! बल्कि उसे रस भी आया कि बात तो बड़ी गजब की है। क्योंकि घर में सभी उसे रोकते थे अब तक कि इसे मत खाओ, इसे मत खाओ, यह ठीक नहीं है, इससे नुकसान है।

लेकिन दादा ने जब कहा, तो फिर वह बड़ी मात्रा में फल जाकर बाजार से ले आया। दादा उसके सामने बैठ गए और कहा कि तू खा जितना तुझे खाना है। वह खाता गया। वह थक गया और एक कौर भी भीतर ले जाने का उपाय न रहा। लेकिन दादा ने कहा, अभी भी तू थोड़ा खा सकता है। तू और खा ले।

फिर उसे उल्टियां होनी शुरू हुईं, दस्त लगने शुरू हुए। वह कोई तीन महीने बीमार रहा। लेकिन वह कहता है, उसके बाद उस फल में मेरा कोई रस नहीं रह गया।

कामवासना से मुक्त होने के लिए दमन तो कतई मार्ग नहीं है; लेकिन कामवासना इस भांति हो जाए कि आप उससे पीडित हो उठें, वह दुख बन जाए विषाद .हो जाए तो शायद जागरण आए। लेकिन उतने से भी कुछ न होगा। क्योंकि फल का छूट जाना एक बात है, कामवासना का छूटना बड़ी अलग बात है। फिर थोड़े दिन में वापस लौट आएगी। दबाएं तो बनी रहेगी, भोगें तो थोड़े दिन शिथिल हो जाएंगे, फिर वापस लौट आएगी।

कामवासना से मुक्त होना हो, तो दो बातें मैंने कहीं। एक तो मैं शरीर नहीं हूं यह दृष्टि थिर हो। दूसरा, जीवन की मेरी कामना नहीं।

मृत्यु कामवासना का विरोध है। जन्म कामवासना से होता है, मृत्यु कामवासना का विरोध है। जिन साधना—प्रक्रियाओं ने—जैसे बुद्ध की साधना—प्रक्रिया ने—कामवासना पर अनूठे प्रयोग किए हैं, तो मृत्यु को उन्होंने साधना का आधार बनाया।

बुद्ध जब किसी व्यक्ति को ब्रह्मचर्य में दीक्षा देते थे, तो उससे कहते थे, तीन महीने पहले मरघट पर तू मृत्यु का ध्यान कर। एकदम से तो सुनकर हमें हैरानी होगी कि ब्रह्मचर्य से और मरघट और मृत्यु का क्या लेना—देना?

लेकिन बुद्ध कहते कि तीन महीने तू मरघट पर सुबह से सांझ, रात, जब भी मुरदे जलते हों, बैठा रह। तेरा वही ध्यान—स्थल है। लाशें आएंगी—बच्चे आएंगे, जवान—बूढ़े, सुंदर—कुरूप, स्वस्थ— अस्वस्थ—सब तरह के लोग आएंगे। बस, तू उनको देखता रह। उनकी जलती चिताएं, उनकी टूटती हड्डियां, उनके गिरते सिर, उनका शरीर हो गया राख, सब खो गया धुएं में, उसे तू देखता रह। तीन महीने जलती हुई चिताओं पर ध्यान कर।

और मुझे लगता है, यह बड़ा मनोवैज्ञानिक प्रयोग है। क्योंकि मृत्यु अगर बहुत साफ हो जाए तो कामवासना तत्क्षण खो जाएगी। इसे आप ऐसा समझें कि एक सुंदरतम स्त्री खड़ी हो और आप वासना से भरे खड़े हों, उसी वक्त एक तार आए कि राज्य ने तय किया है कि आज सांझ आपको फासी लगा देंगे। सुंदर स्त्री तत्क्षण आंखों से खो जाएगी। शरीर से वासना का प्रवाह बंद हो जाएगा। फिर कोई कितना ही समझाए, आपका रस अब वासना में नहीं रह जाएगा। सांझ मौत आ रही है!

तो जिस साधक को कामवासना से मुक्त होना हो 1 उसे समझना चाहिए कि यह क्षण आखिरी है, मौत दूसरे क्षण हो सकती है। और सच भी यही है, मौत दूसरे क्षण हो सकती है। जो क्षण मैं जी रहा हूं यह आखिरी है, मौत आने वाली है, इस शरीर से मैं टूट जाने वाला हूं।

जितनी मौत की धारणा गहरी हो जाए और जितना यह शरीर मैं नहीं हूं यह प्रतीति स्पष्ट हो जाए, उतने ही आप कामवासना से मुक्त होंगे। यह मुक्ति न तो दमन से फलित होती है, न भोग से। यह मुक्ति समझ से, अंडरस्टैंडिंग से फलित होती है।

पर यह स्मरण रखें कि कामवासना साधारण इंद्रिय नहीं है। यह कहना उचित होगा कि सभी इंद्रियों का केंद्र कामेंद्रिय है। आंखें भी इसीलिए देखती हैं कि कामवासना आंखों के द्वारा रूप को खोज रही है। कान इसीलिए सुनते हैं कि कामवासना कानों के द्वारा ध्वनि को खोज रही है। संगीत में इतना रस आता है, क्योंकि संगीत कानों के द्वारा कामवासना की तृप्ति है। सौंदर्य को देखकर—सुंदर चित्र, सुबह का उगता सूरज, पक्षियों का आकाश में उड़ना, वृक्षों पर खिले फूल, एक सुंदर चेहरा, सुंदर आंखें, सुंदर रंग आनंदित करते मालूम पड़ते हैं, क्योंकि आंखों के द्वारा यह जगत के साथ संभोग है। आख रूप को खोज रही है।

इसलिए कुरूप व्यक्ति दिख जाए, तो आपकी वासना सिकुड़ती है। कुरूप व्यक्ति सामने आ जाए, तो आप आख फेरकर चल पड़ते हैं। सुंदर व्यक्ति सामने आ जाए, तो आप अपना होश खो देते हैं।

तो आप यह मत सोचना कि जननेंद्रिय से ही कामवासना प्रकट होती है; सभी इंद्रियों से प्रकट होती है। हाथ से जब आप कुछ छूना चाहते हैं, तो हाथ के माध्यम से कामवासना स्पर्श खोज रही है। यह पूरा शरीर कामेंद्रिय है। इसका रोआं—रोआं कामवासना से भरा है।

इसलिए जब तक शरीर से तादात्म न छूट जाए तब तक कामवासना से छुटकारा नहीं है। और कुछ भी आप करते रहें, तो उससे सिर्फ समय व्यय होगा, शक्ति व्यय होगी और चित्त आत्मग्लानि से भरेगा। क्योंकि आप बार—बार तय करेंगे छोड़ने का, और छूटेगा नहीं। और जब बार—बार आप असफल होंगे, छोड़ न पाएंगे वासना को, तो धीरे—धीरे आपको आत्मग्लानि आएगी, आत्म—अविश्वास आएगा, और ऐसा लगेगा कि मैं किसी भी योग्य नहीं हूं। मैं बिलकुल पात्र नहीं हूं। मैं पापी हूं अपराधी हूं।

और किसी भी व्यक्ति को, मैं पापी हूं अपराधी हूं ऐसी धारणा गहरी हो जाए तो उसके जीवन में साधना—पथ अति कठिन हो जाता है। तो इस तरह के छोटे—मोटे प्रयोग करने में मत पड़ जाना। कामवासना से छूटा जा सकता है। लेकिन कामवासना जीवन—वासना का पर्यायवाची है। जब आप जीवन की वासना से छूटेंगे......।

इसलिए बुद्ध ने जगह—जगह कहा है, जीवेषणा जब तक है, तब तक मुक्ति नहीं है। जब तक तुम चाहते हो, मैं जीऊं!

बुद्ध के पास लोग पहुंचते हैं। वे कहते हैं कि मान लिया कि सब इच्छाएं छोड़ देंगे, शरीर छूट जाएगा, तो फिर हम मोक्ष में बचेंगे या नहीं? मैं रहूंगा न? आत्मा तो बचेगी, शरीर छूट जाएगा।

और बुद्ध कहते हैं कि यह फिर वही की वही बात है। तुम मिटना नहीं चाहते, तुम बचना ही चाहते हो। शरीर मिट जाए, तो भी तुम राजी हो। क्योंकि तुम देखते हो, शरीर तो मिटेगा, उसे बचाने का कोई उपाय नहीं है। तो फिर आत्मा ही बच जाए।

इसलिए बुद्ध ने एक अनूठी बात कही कि कोई आत्मा नहीं है। इसका यह अर्थ नहीं कि आत्मा नहीं है। यह बात सिर्फ इसलिए कही कि वे जो आत्मा के नाम से अपने को बचाना चाहते हैं, वे उस बचाने की बात को भी छोड़ दें।

जीवेषणा वासना है। मैं जीऊं, यही हमारा पागलपन है। और मजा यह है कि जीकर हम कुछ पाते भी नहीं, लेकिन फिर भी जीना चाहते हैं। जीकर कुछ हाथ में भी नहीं आता, फिर भी कैसी ही कठिनाई हो, तो भी जीना चाहते हैं। जीवन को छोड़ने को हम राजी नहीं होते।

इस सूत्र को याद रख लें, जो जीवन को छोड़ने को स्वेच्छा से राजी है, महाजीवन उसका हो जाता है। और जो जीवन को दरिद्र की तरह पकड़ता है, भिखारी की तरह, उसके हाथ में कुछ भी आता नहीं। सिर्फ जंजीरें ही उसके हाथ में आती हैं।

तीसरा प्रश्न :
आपने कहा कि सृजनात्मकता दैवी स्वभाव है और विध्वंस व विनाश आसुरी हैं। लेकिन अस्तित्व में तो दोनों प्रक्रियाएं साथ—साथ चलती हैं। और सिर्फ युद्ध में ही विध्वंस होता हो, ऐसा नहीं है। दैवी विपदाएं कम विध्वंस नहीं करती हैं। दैवी संपदा सृजनात्मक है, इसका यह अर्थ नहीं कि जो सृजन करता है वह मिटाता नहीं। बनाना हो, तो मिटाना पड़ता है। अगर मूर्ति बनानी हो, तो पत्थर को मिटाना पड़ता है। अगर वृक्ष निर्मित करना हो, तो बीज को मिटाना पड़ता है। अगर परमात्मा को खोजना हो, तो अपने को मिटाना पड़ता है। सृजनात्मकता भी बिना मिटाए तो नहीं होती। कुछ मिटता है, तो कुछ बनता है। मिटना बनने का ही प्रयोग है।

फिर फर्क क्या हुआ? क्योंकि दैवी संपदा भी मिटाती है, आसुरी संपदा भी मिटाती है। दोनों में फर्क क्या है?

फर्क लक्ष्य का है। दैवी संपदा सदा ही बनाने को मिटाती है। आसुरी संपदा सदा ही मिटाने को मिटाती है। आसुरी संपदा बनाती भी है, तो सिर्फ मिटाने को।

फर्क यह है, आसुरी संपदा अगर बनाती भी दिखाई पड़ती हो, तो भी समझना कि वह मिटाने को ही बना रही है। वह बनाना वैसे ही है, जैसे आप घर में एक बकरा पाल लें। और उसे खूब खिलाएं, उसकी सेवा करें, क्योंकि उसको बलि के दिन काटना है। उसकी सेवा भी चले, धुलाई भी चले, भोजन भी चले। ऐसे बकरे की कोई इतनी पूजा नहीं करता, जैसी आप करें। लेकिन बलि के दिन उसको काटकर फिर भोजन कर लेना है, वह तैयारी चल रही है। आप बना रहे हैं मिटाने के लिए।

लक्ष्य मिटाना होगा, आसुरी संपदा में। लेकिन जिसको मिटाना है, उसे भी बनाना पड़ता है। क्योंकि बिना बनाए मिटाइएगा कैसे? दैवी संपदा में लक्ष्य होगा बनाना। अगर मिटाना भी पड़ता है, तो यही नजर होती है कि बनाएंगे। अगर नया मकान बनाना हो, तो पुराना मकान गिरा देना पड़ता है। पुराने मकान से जमीन साफ हो जाए तो नया बन सके।

सभी सृजन में विध्वंस छिपा है; सभी विध्वंस में सृजन छिपा है। लक्ष्य का फर्क है। दैवी संपदा हमेशा सोचती है, निर्मित करने को। अगर मिटाना भी पड़ता है, तो सिर्फ इसीलिए ताकि कुछ और श्रेष्ठतर बन सके। आसुरी संपदा सदा सोचती है मिटाने को। अगर बनाना भी पड़ता है, तो सिर्फ इसीलिए कि बनाएंगे, ताकि मिटा सकें।

उस लक्ष्य को खयाल में रखें, तो बात आसान हो जाएगी और ठीक से समझ में आ जाएगी। रस कहां है आपका? तोड्ने में रस है कि निर्माण करने में रस है?

वही रस ध्यान में रहे, तो फिर आप कितना ही तोड़े, हर्ज नहीं। लेकिन हर तोड़ना एक कदम हो बनाने के लिए। फिर आपके विध्वंस में भी सृजन आ गया; फिर आपके युद्ध में भी शाति आ गई; फिर आप कुछ भी करें, अगर यह लक्ष्य सदा ध्यान में बना रहे, तो आप जो भी करेंगे, वह शुभ होगा।

जगत द्वंद्व है। वहां विध्वंस भी है, निर्माण भी है। उन दोनों में किसको आप ऊपर रखते हैं, उससे आपकी संपदा निर्णीत होगी।

चौथा प्रश्न :
आपने कहा कि प्रत्येक व्यक्ति अपने आप में साध्य है, परम मूल्य है। दैवी संपदा का यह सिद्धात अपने प्रति तो आसानी से लागू किया जा सकता है, लेकिन दूसरों के प्रति उसे लागू करना बहुत कठिन है। ऐसा क्यों है?

साफ ही है। अपने प्रति लागू करना आसान है, क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति सोचता है, मैं साध्य हूं और सभी मेरे साधन हैं। लक्ष्य मैं हूं, यह पूरा जगत मेरे लिए है। आकाश मेरे लिए चांद—तारे मेरे लिए वृक्ष—पौधे, पशु—पक्षी मेरे लिए। मैं केंद्र हूं।

यह तो कोई भी सोचता है। इसमें दैवी संपदा का सवाल ही नहीं है। यही तो आसुरी संपदा का केंद्र है कि मैं जगत का केंद्र हूं सब कुछ मेरे लिए घूम रहा है। मेरे लिए सब भी मिट जाए तो भी कुछ हर्ज नहीं है। मैं बचूं। सब कुछ मेरा साधन है, यही तो आसुरी संपदा का केंद्र है।

दैवी संपदा का केंद्र यह है कि दूसरा लक्ष्य है, दूसरा साध्य है, उसका मैं साधन की तरह उपयोग न करूं। वह परम मूल्य है। उसकी सेवा तो मैं कर सकता हूं लेकिन शोषण नहीं। अगर जरूरत पड़े मिटने की, तो उसके लिए मैं तो मिट सकता हूं लेकिन उसको नहीं मिटाऊंगा।

कभी—कभी जीवन के कुछ क्षणों में ऐसा आपको लगता है किसी व्यक्ति के संबंध में, उसको हम प्रेम कहते हैं। जब आपको ऐसा सारे जगत के संबंध में लगने लगे, तो उसको हम प्रार्थना कहेंगे। कभी एक व्यक्ति के संबंध में ऐसा लगता है कि चाहे मैं मिट जाऊं, लेकिन यह व्यक्ति बचे; तो वह साध्य हो गया। मां मर सकती है बच्चे के लिए या पत्नी मर सकती है पति के लिए या पति अपने को खो सकता है पत्नी के लिए। कभी एक व्यक्ति के साथ आपको क्षणभर को भी ऐसा लग जाता हो कि मैं ना—कुछ, वह सब कुछ; मैं परिधि, वह केंद्र; तो प्रेम घटा।

इसलिए प्रेम एक आध्यात्मिक घटना है। छोटी—सी घटना है, पर बड़ी मूल्यवान। चिनगारी है, सूरज नहीं; लेकिन अग्नि वही है, जो सूरज में होती है। और यह चिनगारी अगर फैलने लगे, तो किसी दिन सूर्य भी बन सकती है। जिस दिन ऐसा सारे जगत के प्रति लगने लगे, उस दिन समझना कि प्रार्थना है।

महावीर जमीन पर पांव फूंककर रखते हैं। चींटी भी न मर जाए क्योंकि उसका भी परम मूल्य है। चींटी भी साध्य है, वह हमारा साधन नहीं है कि हम उससे इस तरह व्यवहार कर सकें।

कणाद वृक्षों से फल तोड़कर नहीं खाते। जो कण खेत में अपने आप गिर जाते हैं सूखकर, पककर, उनको बीन लेते हैं। इसीलिए उनका नाम कणाद है; कण—कण बीनकर जीते हैं। कच्चे फल को भी तोड़ते नहीं, क्योंकि वृक्ष हमारा साधन नहीं है। वृक्ष का अपना जीवन है। वृक्ष अपने आप में मूल्यवान है। हम उसका शोषण नहीं कर सकते। अहिंसा की धारणा इसी बात से निर्मित है। जीवन में जो भी परम है, श्रेयस्कर है, वह सब इसी विचार से निकलता हैं।

लेकिन पहली बात तो बिलकुल आसान है। हम सभी को लगता है कि मैं ही केंद्र हूं; मेरा हित, मेरा स्वार्थ, मेरा अहंकार! शेष सब.......।

मैंने सुना है, यूनान में एक सम्राट ने उन दिनों यूनान के एक महा मनीषी सोलन को अपने राजमहल बुलाया। सोलन एक सुकरात जैसा मनीषी था। सम्राट ने बुलाया सिर्फ इसलिए कि सोलन की बड़ी ख्याति थी। उसके एक—एक शब्द का मूल्य अकूत था। तो कुछ उससे ज्ञान लेने नहीं बुलाया था। कुछ उससे सीखने नहीं बुलाया था। सिर्फ सोलन को बुलाया था कि देख मेरे महल को! मेरे साम्राज्य को! मेरी धन—संपदा को! और सम्राट चाहता था कि सोलन प्रशंसा करे कि आप जैसा सुखी और कोई भी नहीं है, तो इस वचन का मूल्य होगा। सारा यूनान, यूनान के बाहर भी लोग समझेंगे कि सोलन ने कहा है।

सोलन आया, महल घुमाकर दिखाया गया। अकूत संपदा थी सम्राट के पास, न मालूम कितना उसने लूटा था। बहुमूल्य पत्थरों के ढेर थे, स्वर्ण के खजाने थे, महल ऐसा सजा था, जैसे दुल्हन हो। फिर सम्राट उसे दिखा—दिखाकर प्रतीक्षा करने लगा कि वह कुछ कहे। लेकिन सोलन चुप ही रहा। न केवल चुप रहा, बल्कि गंभीर होता गया। न केवल गंभीर हुआ, बल्कि ऐसे उदास हो गया, जैसे सम्राट मरने को पड़ा हो और वह सम्राट को देखने आया हो। आखिर सम्राट ने कहा कि तुम्हारी समझ में आ रहा है कि नहीं? मैंने तो सुना है कि तुम बड़े बुद्धिमान हो! मुझ जैसा सुखी तुमने कहीं कोई और मनुष्य देखा है? मैं परम सुख को उपलब्ध हुआ हूं। सोलन, कुछ बोलो इस पर!

सोलन ने कहा कि मैं चुप ही रहूं वही अच्छा है, क्योंकि क्षणभंगुर को मैं सुख नहीं कह सकता। और जो शाश्वत नहीं है, उसमें सुख हो भी नहीं सकता। सम्राट, यह सब दुख है। बड़ा चमकदार है, लेकिन दुख है। तुम इसे सुख समझे हो, तो तुम मूढ़ हो।

सम्राट को धक्का लगा। जो होना था, वह हुआ। सोलन चुप ही रहता, तो अच्छा था। सोलन को उसी वक्त गोली मार दी गई। सामने महल के एक खंभे से लटकाकर, बंधवाकर सम्राट ने कहा, अभी भी माफी मांग लो। तुम गलती पर हो। अभी भी कह दो कि सम्राट, तुम सुखी हो।

सोलन ने कहा, झूठ मैं न कह सकूंगा। मृत्यु में कुछ हर्जा नहीं है, क्योंकि मरना मुझे होगा ही; किस निमित्त मरता हूं यह गौण है। तुमने मारा, कि बीमारी ने मारा, कि अपने आप मरा, यह सब गौण है। मौत निश्चित है। झूठ मैं न कहूंगा। शाश्वत सुख ही सुख है। क्षणभंगुर सुख दिखाई पड़ता है, लेकिन दुख है। सम्राट! तुम भूल में हो।

गोली मार दी गई।

फिर दस वर्षों बाद, यह सम्राट पराजित हुआ। विजेता ने इसे अपने महल के सामने एक खंभे पर बांधा। जब वह खंभे पर लटका था और गोली मारे जाने को थी, तब उसे अचानक सोलन की याद आई। ठीक दस वर्ष पहले ऐसा ही सोलन खंभे पर लटका था! तब उसे उसके शब्द भी सुनाई पड़े, कि जो शाश्वत नहीं, वह सुख नहीं। जो क्षणभंगुर है, उसका कोई मूल्य नहीं। यह चमकदार दुख है सम्राट! उसी चमकदार दुख को सुख मानकर यह सम्राट इस खंभे पर लटक गया।

सम्राट की आंखें बंद हो गईं। वह अपने को भूल ही गया, सोलन को देखने लगा। और जब उसे गोली मारी जा रही थी, तब उसके होंठों पर मुस्कुराहट थी। और आखिरी शब्द जो उसके मुंह से निकले, वे यह थे : सोलन, सोलन, मुझे क्षमा कर दो। तुम ही सही थे।

विजेता सम्राट सुनकर चकित हुआ; कौन सोलन? किसके वचन सही? और इस मरते सम्राट के होंठों पर मुस्कुराहट कैसी? उसने सारी खोज—बीन करवाई, तब यह पूरी कथा पता चली।

वह जो हमें सुख जैसा मालूम होता है, वह सुख नहीं है। और वह जो हमें सुख जैसा मालूम होता है, उसके लिए हम सबको दुख देते हैं, सब का साधन की तरह उपयोग करते हैं, सब को चूसते हैं, शोषण करते हैं।

हमारा जीवन हमें इतना मूल्यवान होता है मालूम कि अगर सबकी मृत्यु भी उसके लिए घट जाए तो भी कोई हर्ज नहीं। अगर हमें दूसरों के सिरों पर पैर रखकर, सीढ़ियां बनाकर राजमहल तक पहुंचने का उपाय हो, तो हम लोगों के सिरों का उपयोग सीढ़ियों की तरह करेंगे। सभी महत्वाकांक्षी करते हैं। लोग उनके लिए सीढियों से ज्यादा नहीं हैं। धन की यात्रा करता हो कोई, पद की यात्रा करता हो, लोगों का उपयोग करता है सीढ़ियों की तरह। सभी राजनीतिज्ञ जानते हैं।

राजनीतिज्ञों के सबसे बड़े दार्शनिक मेक्यावेली ने लिखा है कि तुम जिस आदमी का सीढ़ी की तरह उपयोग करो, उपयोग करने के बाद उसे जिंदा मत छोड़ना। उसको काट—पीट डालना। क्योंकि तुम उसका सीढ़ी की तरह उपयोग कर सके हो, दूसरे भी उसका सीढ़ी की तरह उपयोग कर सकते हैं।

इसलिए सभी राजनीतिज्ञ यही करते हैं। जिनके कंधे पर पैर रखकर राजनीतिज्ञ पहुंचता है राष्ट्रपति या प्रधानमंत्री के पद पर, पहुंचते ही उस आदमी को गिराने में लगता है। क्योंकि वह आदमी खतरनाक है, उसके कंधे पर दूसरा भी कल कोई आ सकता है। इसके पहले कि दूसरा उसके कंधे पर सवार हो, उसका विनाश कर देना जरूरी है। या उसे उस जगह पहुंचा देना जरूरी है, जहां वह सीढ़ी का काम न दे सके।

इसलिए सब राजनीतिज्ञ, जिन सीढ़ियों से चढ़ते हैं, उनको जला देते हैं। जिन रास्तों से गुजरते हैं, उनको तोड़ देते हैं। जिन सेतुओं को पार करते हैं, उनको गिरा देते हैं, ताकि दूसरा पीछे से उन पर न आ सके। धन की यात्रा करने वाला भी वही करेगा।

महत्वाकांक्षी अपने को साध्य मानता है, दूसरे को साधन। महत्वाकांक्षी कभी भी धार्मिक नहीं हो सकता। एंबीशन, महत्वाकांक्षा इस जगत में सबसे अधार्मिक घटना है।

धर्म का सूत्र तो कृष्ण कह रहे हैं; वह यह है कि दूसरा साधन नहीं है, साध्य है। दैवी संपदा का व्यक्ति दूसरे को साध्य मानता है। कभी जरूरत पड़े, तो वह सीढ़ी बन सकता है, लेकिन दूसरे को सीढ़ी नहीं बनाएगा। अपने सुख के लिए दूसरे के दुख का सवाल नहीं है। अगर अपना सुख दूसरे के सुख से ही मिल सकता हो, तो ही दैवी संपदा का व्यक्ति उस सुख को स्वीकार करेगा।

और यह समझ लेने जैसा है कि अगर आपके सुख से दूसरा भी सुखी होता हो, तो वह सुख आनंद है। यह आनंद का फर्क है। जिस आपके सुख से दूसरा दुखी होता हो, वह आनंद नहीं है। और वह सिर्फ दिखाई पड़ता है सुख है, वह सुख भी नहीं है। और एक दिन आप अनुभव करेंगे, तब आपके भीतर से भी आवाज आएगी कि सोलन, सोलन, तू ठीक था। मुझे क्षमा करना। मैं गलती पर हूं। मेरा सुख अगर आस—पास सभी का सुख बनता हो, तो ही आनंद है। उसे फिर कोई भी छीन न सकेगा।

दैवी और आसुरी संपदा, दूसरों का हम उपयोग करते हैं, कैसा उपयोग करते हैं, इससे विभाजित होती है। दैवी संपदा का व्यक्ति दूसरे का उपयोग ही नहीं करता, दूसरे के उपयोग आ सकता है।

इसलिए जीसस या उन जैसे महाप्रज्ञावान पुरुषों ने सेवा को, दूसरे की सेवा को धर्म की आधारशिला बनाया। उसमें मूल्य है। उस बात का इतना ही मूल्य है कि दूसरे के लिए जरूरत पड़े, तो तुम मिट जाना, लेकिन किसी को भी अपने लिए मत मिटाना। पूछा है, यह कैसे संभव होगा कि हम दूसरे को साध्य समझ लें? समझने का सवाल नहीं है, यह तथ्य है। यह वास्तविक स्थिति है कि आप केंद्र नहीं हैं इस जगत के। आप एक छोटी—सी लहर हैं। इस विराट अस्तित्व में आप एक छोटा—सा कण हैं। यह विराट अस्तित्व आपके लिए नहीं है, आप इस विराट अस्तित्व के लिए हैं। जैसे ही यह खयाल में आ जाएगा.....।

और इसे खयाल में लाने के लिए कुछ सोचने की जरूरत नहीं है, सिर्फ आख खोलने की जरूरत है, और यह दिखाई पड़ जाएगा।

आप कल नहीं थे, आज हैं, कल नहीं हो जाएंगे। यह अस्तित्व आपके पहले भी था, अब भी है, आपके बाद भी होगा। आप इस अस्तित्व में से उठते हैं, इसी अस्तित्व में डूब जाते हैं। यह अस्तित्व आपसे बड़ा है, विराट है। आप एक छोटे—से अंश हैं। अंश केंद्र नहीं हो सकता, अंशी ही केंद्र होगा। अंश सब को मिटाकर अपने को बचाने की बात सोचे, तो पागलपन है। यह होने वाला नहीं है।

वह खुद ही मिटेगा। लेकिन यह अंश अगर अपने को मिटाकर सारे को बचाने की सोचे, तो कभी भी नहीं मिटेगा। क्योंकि समग्र उसे स्वीकार कर लेगा। समग्र के साथ आत्मसात और एक हो जाएगा।

जिनको हमने भगवत्ता को उपलब्ध व्यक्ति कहा है—कृष्ण को, बुद्ध को, महावीर कों—उनको भगवत्ता को उपलब्ध व्यक्ति इसीलिए कहा है कि उन्होंने अपने अंश को अंशी में छोड दिया। अब वे लड़ नहीं रहे; अब उनका कोई विरोध इस जगत से नहीं है। इस अस्तित्व से उनका रत्तीमात्र फासला नहीं है। उन्होंने अपने को पूरा इसमें समर्पित कर दिया, लीन कर दिया।

जो व्यक्ति स्वयं को साध्य मानता है, वह लीन कैसे करे? समर्पण कैसे करे? जो अपने को निमित्त और साधन मान लेता है, वह तत्क्षण लीन हो जाता है।

कृष्ण की पूरी शिक्षा अर्जुन को यही है कि तू निमित्त बन जा। यह खयाल ही छोड़ दे कि तू है। तू यही समझ कि परमात्मा है और तू केवल उसका एक मार्ग है, कि जैसे परमात्मा की बांसुरी है दूर परमात्मा बोल रहा है, उसकी वाणी है और तू सिर्फ बांस की पोली नली है। तू सिर्फ मार्ग दे, स्वरों को बहने दे, अवरोध मत कर। इसे हम कैसे उपलब्ध करें?

कैसे उपलब्ध करने का सवाल नहीं है। यह स्थिति है। थोड़ा—सा सजग और आख खोलकर देखने की जरूरत है। ऐसा है। जैसे आपकी दो आंखें हैं, दो हाथ हैं; आप आख बंद किए बैठे हैं और कहते हैं, मैं कैसे मानूं कि मेरे दो हाथ हैं! तो मैं यह कहूं आख खोलें और देखें, दो हाथ हैं। इसको मानने की जरूरत नहीं है, सिर्फ आख खोलने की जरूरत है।

जब भी आप थोड़ा—सा देखेंगे चारों तरफ, तो यह आपको समझने में कठिनाई नहीं होगी कि आप केंद्र नहीं हो सकते। विक्षिप्तता है यह मानना कि मैं केंद्र हूं।

अब हम सूत्र को लें।
वे अपने आपको ही श्रेष्ठ मानने वाले घमंडी पुरुष धन और मान के मद से युक्त हुए, शास्त्र—विधि से रहित केवल नाममात्र यज्ञों द्वारा पाखंड से यजन करते हैं।

तथा वे अहंकार, बल, घमंड, कामना और क्रोधादि के पारायण हुए एवं दूसरों की निंदा करने वाले पुरुष अपने और दूसरों के शरीर में स्थित मुझ अंतर्यामी से द्वेष करने वाले हैं।

ऐसे उन द्वेष करने वाले पापाचारी और क्रूरकर्मी नराधमों को मैं संसार में बारंबार आसुरी योनियों में ही गिराता हूं। इसलिए हे अर्जुन, वे मूढ़ पुरुष जन्म—जन्म में आसुरी योनि को प्राप्त हुए, मेरे को न प्राप्त होकर, उससे भी अति नीच गति को ही प्राप्त होते हैं। आसुरी संपदा के जो व्यक्ति हैं, वे अपने आपको ही श्रेष्ठ मानने वाले हैं। उनके लिए श्रेष्ठता का एक ही अर्थ है कि जो भी मैं हूं, वही श्रेष्ठता है। अपना होना उनकी श्रेष्ठता की परिभाषा है। श्रेष्ठता और अहंकार में उन्हें कोई भेद नहीं है।

नेपोलियन बोनापार्ट ने कहा है..। उसने कुछ कानून बनाए फिर उनको बदल दिया, फिर बदल दिया। तो उसके राजमत्रियों ने कहा कि आप यह क्या कर रहे हैं! कानून थिर होना चाहिए। और इस तरह तो अराजकता हो जाएगी। तो नेपोलियन बोनापार्ट ने कहा, आइ एम दि लॉ—और कोई कानून नहीं है, मैं कानून हूं। जो मुझसे निकलता है, वह कानून है। कोई कानून मेरे ऊपर नहीं है, मैं ही कानून हूं।

यही आसुरी संपदा वाले का प्राथमिक लक्षण है, मैं श्रेष्ठ हूं। और धन और मान के मद से युक्त हुए..।

ऐसे व्यक्ति अगर धर्म भी करते हैं, तो उनका धर्म भी धन और मद का ही मान होता है। वे बड़ा मंदिर खड़ा कर सकते हैं, जो आकाश को छुए। वे यज्ञ करवा सकते हैं, करोड़ों रुपए उसमें खर्च कर सकते हैं। लेकिन यह भी उनके अहंकार की ही यात्रा है। उनके मंदिर का अर्थ है, उनसे बड़ा मंदिर और कोई खड़ा नहीं कर सकता। उनके यश का अर्थ है कि ऐसा यज्ञ पृथ्वी पर कभी हुआ नहीं। उनका धर्म भी उनकी श्रेष्ठता को ही सिद्धश्करे, इतना ही उनके धर्म का प्रयोजन है।

शास्त्र—विधि से रहित केवल नाममात्र यज्ञों द्वारा पाखंड से यजन करते हैं.......।

वे अगर शुभ भी करेंगे, तो सिर्फ इसलिए ताकि वे पूजे जाएं। वे अगर कुछ भला भी करेंगे, दान भी देंगे, तो सिर्फ इसलिए ताकि वे जाने जाएं। उनके प्रत्येक कृत्य का लक्ष्य वे स्वयं हैं।

तथा वे अहंकार, बल, घमंड, कामना और क्रोधादि के परायण हुए एवं दूसरों की निंदा करने वाले पुरुष अपने और दूसरों के शरीर में स्थित मुझ अंतर्यामी से द्वेष करने वाले हैं।

परमात्मा कहीं भी हो, उससे उन्हें द्वेष होगा। क्यों? क्योंकि परमात्मा की स्वीकृति, अपने अहंकार का खंडन है।

नीत्से ने अपने एक वचन में लिखा है—जब वह पागल हो गया, तब उसने अपनी डायरी में लिखा है—कि मैं परमात्मा को स्वीकार नहीं कर सकता क्योंकि अगर परमात्मा है, तो फिर मैं नंबर दो हूं इसलिए मैं परमात्मा को स्वीकार नहीं कर सकता। नंबर एक तो मैं ही हो सकता हूं और या यह हो सकता है कि नंबर एक कोई भी नहीं है। लेकिन परमात्मा कहीं भी है, तो फिर मैं पीछे पड़ता हूं। फिर मेरी स्थिति नीची हो जाती है।

इसलिए परमात्मा को स्वीकार करना आसुरी वृत्ति वाले व्यक्ति को अति कठिन है। इसलिए नहीं कि उसको पता है कि परमात्मा नहीं है। इसलिए भी नहीं कि तर्कों से सिद्ध होता है कि परमात्मा नहीं है। वह तर्क भी देगा, वह सिद्ध भी करेगा। लेकिन न तो तर्कों से सिद्ध होता है कि परमात्मा है और न सिद्ध होता है कि परमात्मा नहीं है। इसे थोड़ा समझ लें।

मनुष्य की बुद्धि न तो पक्ष में कुछ तय कर सकती है, न विपक्ष में। अब तक हजारों—हजारों तर्क दिए गए हैं। जितने पक्ष में हैं, उतने ही विपक्ष में। बराबर संतुलन है। कोई आस्तिक किसी नास्तिक को राजी नहीं कर सकता कि ईश्वर है, और कोई नास्तिक किसी आस्तिक को राजी नहीं करवा सकता कि ईश्वर नहीं है। दोनों बातें समतुल हैं। तर्कों से कुछ सिद्ध नहीं हुआ है।

. लेकिन फिर भी कुछ लोग मानते हैं कि ईश्वर है। कुछ लोग मानते हैं, नहीं है। तो किस आधार पर मानते होंगे, क्योंकि तर्क से कुछ भी सिद्ध नहीं होता। तब आधार दूसरे हैं; तब आधार का कारण आसुरी संपदा और दैवी संपदा है।

वे जो समझते हैं कि मैं ही श्रेष्ठ हूं, मुझसे ऊपर कोई भी नहीं, वे परमात्मा को नहीं मान सकते। फिर वे तर्क खोज लेते हैं। लेकिन वे तर्क पीछे आते हैं, वे तर्क रेशनलाइजेशस हैं। वह अपनी ही मानी हुई बात को सिद्ध करने का उपाय है।

और दूसरे वे लोग हैं, जो जानते हैं कि मैं कैसे केंद्र हो सकता हूं! मैं केवल एक लहर हूं। वे परमात्मा को स्वीकार कर लेते हैं। उनकी स्वीकृति भी तर्क से नहीं आती, उनकी दैवी संपदा से आती है।

और इन दोनों के बीच में अधिक लोग हैं, जिन्होंने कुछ तय ही नहीं किया। जिनको हम अधिकतर आस्तिक कहते हैं, वे बीच के लोग हैं; आस्तिक नहीं हैं। उन्होंने कभी ध्यान ही नहीं दिया कि परमात्मा है या नहीं। आप में से अधिक लोग उस तीसरे हिस्से में ही हैं।

अगर आप कहते हैं कि होगा, तो उसका मतलब यह नहीं कि आप मानते हैं कि ईश्वर है। आप मानते हैं, सोचने योग्य भी नहीं है। लोग कहते हैं; होगा। और क्या हर्जा है, हो तो हो। और कभी वर्ष में एकाध बार अगर मंदिर भी हो आए तो क्या बनता—बिगड़ता है! और होशियार आदमी दोनों तरफ कदम रखकर चलता है। अगर हो ही, तो मरने के बाद कोई झंझट भी नहीं होगी। न हो, तो हमने कुछ उसके लिए खोया नहीं। हमने संसार अच्छी तरह भोगा। और मानते रहे कि परमात्मा है। हम दोनों नाव पर सवार हैं।

बहुत थोड़े—से लोग हैं, जो मानते हैं कि परमात्मा है। वे वे ही लोग हैं, जो अपने अहंकार को तोड़ते हैं, घमंड को छोड़ते हैं, गर्व को गिराते हैं। बहुत लोग हैं, जो मानते हैं परमात्मा नहीं है। उनका कुल कारण इतना है कि वे खुद अपने को साध्य समझे हैं। इसलिए अपने से परम को स्वीकार करना उनके लिए आसान नहीं है। और अधिक लोग हैं, जिनको कोई चिंता ही नहीं है, जिनको कोई प्रयोजन नहीं है, जो उपेक्षा से भरे हैं।

इसमें आप कहा हैं? और आप जहां भी होंगे, मजे की बात यह है कि वहीं के लिए आप तर्क खोज लेंगे।

फ्रायड ने एक बहुत बड़ी खोज इस सदी में की। और उसने यह खोज की कि लोग तय पहले कर लेते हैं, तर्क बाद में खोजते हैं। आप एक स्त्री के प्रेम में पड़ जाते हैं। कोई आपसे पूछे कि आप प्रेम में क्यों पड़े हैं इसके? तो आप कहते

हैं, वह इतनी सुंदर है। लेकिन फ्रायड कहता है, मामला बिलकुल उलटा है। वह स्त्री दूसरों को सुंदर नहीं दिखाई पड़ती। आप कहते हैं, सुंदर है, इसलिए प्रेम में पड़े। फ्रायड कहता है, आप प्रेम में पड़ गए, इसलिए सुंदर दिखाई पड़ती है।

यह बात ज्यादा सही मालूम होती है, क्योंकि और किसी को सुंदर नहीं दिखाई पड़ती। और दूसरों को शायद कुरूप दिखाई पड़ती हो। शायद दूसरे चकित होते हों कि आपका दिमाग खराब हो गया है कि आप इस स्त्री के चक्कर में पड़े हैं! और आप अपने मन में सोचते हैं कि दुनिया भी कैसी मूढ़ है; अज्ञानीजन हैं। इनको इस स्त्री का असली रूप दिखाई ही नहीं पड़ रहा है।

प्रेम में हम पहले पड़ते हैं, फिर तर्क हम बाद में इकट्ठा करते हैं।

किसी व्यक्ति को आप देखते ही घृणा करने लगते हैं, फिर आप तर्क खोजते हैं, फिर आप कारण खोजते हैं। क्योंकि बिना कारण हमें अड़चन होती है। अगर कोई हमसे पूछे कि क्यों घृणा करते हो, और हम कहें कि बिना कारण करते हैं, तो हम मूढ़ मालूम पड़ेंगे। तो हम कारण खोजते हैं कि यह आदमी मुसलमान है; मुसलमान बुरे होते हैं। यह आदमी हिंदू है; हिंदू भले नहीं होते। कि यह आदमी मांसाहारी है, कि इस आदमी का चरित्र खराब है। आप फिर हजार कारण खोजते हैं। वे कारण आपने पीछे से खोजे हैं। भाव आपका पहले निर्मित हो गया। और भाव अचेतन है और कारण चेतन है।

फ्रायड की खोज बड़ी बहुमूल्य है कि प्रत्येक व्यक्ति अंधे की तरह जीता है और सिद्ध करने को कि मैं अंधा नहीं हूं कारणों की तजवीज करता है। उनको उसने रेशनलाइजेशस कहा है। फिर उनको वह बुद्धि—युक्त ठहराता है।

ईश्वर के साथ भी यही होता है, गुरु के साथ भी यही होता है। मैंने सुना है, एक सूफी फकीर के पास दो युवक गए। वे साधना में उत्सुक थे और सत्य की खोज करना चाहते थे। उस फकीर ने कहा, सत्य और साधना थोड़े दिन बाद, अभी मुझे कुछ और दूसरा काम तुमसे लेना है। लकड़ी चुक गई हैं आश्रम की, तो तुम दोनों जंगल चले जाओ और लकड़ियां इकट्ठी कर लो। और अलग— अलग ढेर लगाना। क्योंकि तुम्हारी लकड़ी का ढेर केवल लकड़ी का ढेर नहीं है, उससे मुझे कुछ और परीक्षा भी करनी है। तो दोनों युवक गए; उन्होंने लकड़ी के दो ढेर लगाए। फिर गुरु सात दिन बाद आया, तो उसने पहले युवक के लकड़ी के ढेर में आग लगाने की कोशिश की। सांझ तक परेशान हो गया। आंखों से आंसू बहने लगे। धुआं ही धुआं निकला, आग न लगी। सब लकड़िया गीली थीं। शिष्य ने क्या कहा गुरु को? कि मैं चला। जब तुमसे लकड़ी में आग लगाना नहीं आता, तो तुम मुझे क्या बदलोगे!

दूसरे युवक की लकड़ियों में गुरु ने आग लगाई; लकड़िया भभककर जल गईं। सूखी लकड़ियां थीं। दूसरा युवक भी पहली घटना देख रहा था।

और पहला युवक छोड्कर जा चुका था, और जाकर उसने गांव में प्रचार करना शुरू कर दिया था कि यह आदमी बिलकुल बेकार है। एक तो हमारे सात दिन खराब किए लकड़ी इकट्ठी करवाईं। हम गए थे सत्य को खोजने! इसमें कोई तुक नहीं है, संगति नहीं है। फिर हमने पसीना बहा—बहाकर, खून—पसीना करके लकड़ियां इकट्ठी कीं। और इस आदमी को आग लगाना नहीं आता। तो उसने लकड़ियां भी खराब कीं, धुआं पैदा किया, हमारी तक आंखें खराब हुईं। और यह आदमी किसी योग्य नहीं है। भूलकर कोई दुबारा इसकी तरफ न जाए।

दूसरा युवक भी यह देख रहा था कि पहला युवक जा चुका है। दूसरे युवक की लकड़ियां जब भभककर जलने लगीं, तो उसने कहा कि बस, ठहरो। यह मत समझ लेना कि बड़े अकलमंद हो तुम। लकड़ियां सूखी थीं, इसलिए जल रही हैं, इसमें तुम्हारी कोई कुशलता नहीं है। और मैं चला। अगर तुम इसको अपना ज्ञान समझ रहे हो कि सूखी लकड़ियों को जला दिया तो कोई बहुत बड़ी बात कर ली, तो तुम से अब सीखने को क्या है!

दोनों युवक चले गए। गुरु मुस्कुराता हुआ वापस लौट आया। आश्रम में लोगों ने उससे पूछा, क्या हुआ? तो उसने कहा, जो होना था ठीक उससे उलटा हुआ। पहला युवक अगर कहता कि लकड़ियां गीली हैं, मैं गीला हूं इसलिए तुम्हें जलाने में इतनी कठिनाई हो रही है, तो उसका रास्ता खुल जाता। दूसरा युवक अगर कहता कि तुम्हारी कृपा है कि

मेरी लकड़ियों में आग लग गई, तो उसका रास्ता खुल जाता। लेकिन दोनों ने रास्ते बंद कर लिए। और अब दोनों जाकर प्रचार कर रहे हैं; दोनों ने धारणा बना ली, अब दोनों उसके लिए तर्क जुटा रहे हैं। मुझसे उन्होंने पूछा नहीं। मेरी तरफ देखा नहीं। मैं क्या कर रहा था, मेरा क्या प्रयोजन था, इसकी उन्होंने कोई खोज न की। सतह से कुछ बातें लेकर वे जा चुके हैं।

आप भी, जहां भी आपको दूसरे को श्रेष्ठ मानना पड़ता है, वहा बड़ी अड़चन आती है। दूसरे को अपने से नीचा मानना बिलकुल सुगम है। हम हमेशा तैयार ही हैं। हम पहले से माने ही बैठे हैं कि दूसरा नीचा है। सिर्फ अवसर की जरूरत है और सिद्ध हो जाएगा। और अगर कोई दूसरा हमसे आगे भी निकल जाए कभी, तो हम जानते हैं कि चालाकी, शरारत, कोई धोखाधड़ी, कोई भाई— भतीजा वाद, कुछ न कुछ मामला होगा, तभी दूसरा आगे गया, नहीं तो हमसे आगे कोई जा कैसे सकता था! अगर दूसरा हमसे पीछे रह जाए, तो हम समझते हैं, रहेगा ही पीछे; क्योंकि हमसे आगे जाने की कोई योग्यता भी तो होनी चाहिए।

हम जो भी होते हैं, जहां भी होते हैं, उसके अनुसार तर्क खोज लेते हैं।

ईश्वर है या नहीं है, यह बडा सवाल नहीं। जो व्यक्ति ईश्वर को मान सकता है कि है, उसने अपने को झुकाया, यह बड़ी भारी बात है। ईश्वर न भी हो, तो भी जिसने स्वीकार किया कि ईश्वर है और अपने को झुकाया, इसके लिए ईश्वर हो जाएगा। और जो कहता है, ईश्वर नहीं है—चाहे ईश्वर हो ही—इसने अपने को अकड़ाया। ईश्वर हो, तो भी इसके लिए नहीं है, तो भी इसके लिए नहीं हो सकेगा, तो भी क्योंकि इसके द्वार बंद हैं।

वह जो आसुरी संपदा का व्यक्ति है, अहंकार, बल, घमंड, कामना और क्रोधादि के परायण हुआ, दूसरों की निंदा करने वाला, दूसरों के शरीर में मुझ अंतर्यामी से द्वेष करने वाला है। ऐसे उन द्वेष करने वाले पापाचारी और क्रूरकर्मी नराधमों को मैं संसार में बार—बार आसुरी योनियों में ही गिराता हूं।

यह वचन थोड़ा कठिनाई पैदा करेगा, क्योंकि हमें लगेगा कि क्यों परमात्मा गिराएगा! होना तो यह चाहिए कि कोई आसुरी वृत्ति में गिर रहा हो, तो परमात्मा उसे रोके, बचाए, दया करे। क्योंकि हम निरंतर प्रार्थना करते हैं कि हे पतितपावन! हे करुणा के सागर! दया करो, बचाओ, मैं पापी हूं। और ये कृष्ण कह रहे हैं कि ऐसे नराधम, क्रूरकर्मी को मैं संसार में बार—बार आसुरी योनियों में ही गिराता हूं!

जब ईसाई या इस्लाम धर्म को मानने वाले लोग इस तरह के वचन पढ़ते हैं, तो उनको बड़ी कठिनाई होती है। क्योंकि इस्लाम में तो परमात्मा के सभी नाम—रहीम, रहमान, करीम—स्ब नाम दया के हैं कि वह दयालु है। यह कैसी दया! और जीसस ने कहा है कि तुम प्रार्थना करो, तो सब तरह की क्षमा संभव है। तुम पुकारो, तो क्षमा कर दिए जाओगे।

लेकिन कृष्ण का यह वचन! इसका तो अर्थ यह हुआ, और यही भारतीय प्रज्ञा की खोज है, कि परमात्मा कोई व्यक्ति नहीं है कि तुम पुकारों और वह क्षमा कर दे। परमात्मा कोई व्यक्ति नहीं है कि तुम उसे फुसला लो, राजी कर लो— प्रशंसा से, खुशामद से, स्तुति से—और वह बदल दो परमात्मा एक नियम है, व्यक्ति नहीं। पहुंच जाता है।

इसको थोड़ा समझ लें।

परमात्मा एक व्यवस्था है, व्यक्ति नहीं। तो आग में कोई आदमी हाथ डाले, तो आग जलाकी। आग जलाने को उत्सुक नहीं है। आग इस आदमी को जलाने के लिए पीछे नहीं दौड़ती। लेकिन यह आदमी आग में हाथ डालता है, तो आग जलाती है। क्योंकि आग का स्वभाव जलाना है, वह उसका नियम है। अगर हम आग से पूछें, तो वह कहेगी, जो मुझमें हाथ डालेगा, उसे मैं जलाऊंगी। आग चूंकि बोलती नहीं, इसलिए हमें खयाल में नहीं है।

कृष्ण परमात्मा की तरफ से बोल रहे हैं। वह जो जागतिक नियम है, युनिवर्सल ली है, वह जो जीवन का आधार—स्तंभ है, उसकी तरफ से बोल रहे हैं। वह कहते हैं, जो व्यक्ति ऐसा कर्म करेगा, इस तरह की दृष्टि और धारणा रखेगा, ऐसा पाप में डूबेगा, उसे मैं गिराता हूं। गिराने का कुल मतलब इतना ही है, ऐसा करने से वह अपने आप गिरता है, कोई परमात्मा उसको धक्का नहीं देता। धक्का देने की कोई जरूरत नहीं है। वह ऐसा करता है, इसलिए गिरता है।

इसलिए भारत की जो गहरी से गहरी खोज है, वह कर्म का सिद्धात है। यह खोज इतनी गहरी है कि जैनों और बौद्धों ने परमात्मा को विदा ही कर दिया। उन्होंने कहा, यह सिद्धात ही काफी है। परमात्मा को बीच में लाने की कोई जरूरत भी नहीं है। जैनों और बौद्धों ने परमात्मा को इनकार ही कर दिया कि कोई जरूरत ही नहीं है परमात्मा को बीच में लाने की। कर्म से मामला साफ हो जाता है। और सच में ही साफ हो जाता है।

लेकिन परमात्मा को इनकार करने की कोई भी जरूरत नहीं, क्योंकि परमात्मा का अर्थ ही वह महानियम है जो इस जीवन को चला रहा है। उसे हम कर्म का नियम कहें, या परमात्मा कहें, एक ही बात है।

वह जो गिरता है अपने हाथ से, नियम उसे गिराता है। आप जमीन पर चलते हैं, सम्हलकर चलते हैं, तो ठीक। उलटे—सीधे चलते हैं, तो गिर जाते हैं, हाथ—पैर टूट जाते हैं। कोई जमीन आपको गिराती नहीं है। लेकिन उलटा—सीधा जो चलता है, नियम के विपरीत, उसके हाथ—पैर टूट जाते हैं।

जमीन स्वेच्छा से, आकांक्षा से आपका हाथ—पैर नहीं तोड़ती। लेकिन जमीन का नियम है, उसके विपरीत जो जाता है, वह टूट जाता है। उसके अनुकूल जो जाता है, वह सहजता से मंजिल पर पहुंच जाता है।

जगत के नियम को समझकर उसके अनुकूल चलने का नाम धर्म है।

बुद्ध ने धर्म शब्द का अर्थ ही नियम किया है, दि ली। जब बुद्ध कहते हैं, धम्म शरणं गच्छामि, तो वह कहते हैं, धर्म की शरण जाओ, तो उसका यही अर्थ है कि नियम की शरण जाओ। और नियम के अनुकूल चलोगे, तो तुम मुक्त हो जाओगे। नियम के प्रतिकूल चलोगे, तो अपने हाथ से बंधते चले जाओगे। नियम के विपरीत जो जाएगा, वह दुख पाएगा। नियम के अनुकूल जो जाएगा, वह आनंद को उपलब्ध हो जाता है।

इसलिए हे अर्जुन, वे मूढ़ पुरुष जन्म—जन्म में आसुरी योनि को प्राप्त हुए मेरे को न प्राप्त होकर उससे भी अति नीची गति को ही प्राप्त होते हैं।

जब कोई व्यक्ति गिरना शुरू हो जाता है, तो वह मोमेंटम पकड़ता है, गिरने में भी गति आ जाती है। आप कभी सोचें, अगर आप एक झूठ बोलें, तो फिर दूसरा और तीसरा और चौथा। और दूसरा पहले से बड़ा, और तीसरा दूसरे से बडा, क्योंकि फिर और बड़ा झूठ बोलना जरूरी है पिछले झूठ को सम्हालने के लिए। फिर एक गति आ जाती है। फिर उस गति का कोई अंत नहीं है।

एक पाप करें, फिर दूसरा, फिर तीसरा, और बड़ा, और बड़ा; तब आप अपने ही हाथ से गिरते चले जाते हैं। और अगर आप गिरना चाहते हैं, तो नियम सहयोग देता है। अगर आप उठना चाहते हैं, तो नियम सीढ़ी बन जाता है। गहरे में समझने पर, आप जो करते हैं, उससे आपकी दिशा निर्मित होती है।

सुबह आप उठे और आपने क्रोध किया। आपने दिन के लिए चुनाव कर लिया। अब दूसरा क्रोध पहले से ज्यादा आसान होगा, तीसरा दूसरे से ज्यादा आसान होगा। सांझ तक आप अनेक बार क्रोध करेंगे और सोचेंगे, न मालूम किस दुष्ट का चेहरा देखा!

आईने में अपना ही देखा होगा। क्योंकि किसी दूसरे के चेहरे से आपके जीवन की गति का कोई संबंध नहीं है, आपसे ही संबंध है। इसलिए सारे धर्मों ने फिक्र की है कि सुबह उठकर पहला काम परमात्मा की प्रार्थना का करें। उससे मोमेंटम बदलेगा, उससे गति बदलेगी। प्रार्थना के बाद एकदम से क्रोध करना मुश्किल होगा। और प्रार्थना के बाद और प्रार्थनापूर्ण होना आसान हो जाएगा।

जो बात गलत के संबंध में सही है, वही सही के संबंध में भी सही है। जो आप करते हैं, उसी दिशा में करने की और गति आती है। जिस तरफ आप चलते हैं, उस तरफ आप दौड़ने लगते हैं। दिशा चुनना बड़ा जरूरी है। सुबह उठते ही

प्रेम और प्रार्थना और करुणा का भाव हृदय में भर जाए, तो आपके दिन की यात्रा बिलकुल दूसरी होगी। लेकिन सुबह अगर आप चूक गए, तो बड़ी कठिनाई हो जाती है।

यही बात पूरे जीवन के संबंध में भी लागू है। अगर बचपन में दिशा प्रार्थना और परमात्मा की हो जाए, तो पूरे जीवन की यात्रा आसान हो जाएगी। इसलिए हम अपने बच्चों को इस मुल्क में पुराने दिनों में, पहले चरण में गुरुकुल भेज देते थे कि पच्चीस वर्ष तक वे प्रार्थनापूर्ण जीवन व्यतीत करें। क्योंकि उससे गति बनेगी, एक यात्रा का पथ निर्मित होगा। फिर बहुत आसानी से आगे सब हो जाएगा।

एक बार बचपन खो गया, गति बिगड़ गई, पैर डावाडोल हो गए, उलटी दिशा पकड़ गई, फिर उसी दिशा में दौड़ शुरू हो जाती है। जवानी दौड़ का नाम है। बचपन में जो दिशा पकड़ ली, जवानी उसी दिशा में दौड़ती चली जाएगी। फिर बुढ़ापा ढलान है। जिस दिशा में आप जवानी में दौड़े हैं, उसी दिशा में आप बुढ़ापे में ढलेंगे। क्योंकि शक्ति फिर क्षीण होती चली जाती है।

अब तो मनोवैज्ञानिक भी स्वीकार करते हैं कि सात वर्ष की उम्र के बच्चे को हम जो दिशा दे देंगे, सौ में निन्यानबे मौके पर वह उसी दिशा में जीवनभर यात्रा करेगा। बहुत शक्ति की जरूरत है फिर बाद में दिशा बदलने के लिए। शुरू में दिशा बदलना बिलकुल आसान है। कोमल पौधा है, झुक जाता है। फिर रास्ता पकड़ लेता है, फिर उस झुकाव को तोड़ना बहुत कठिन हो जाता है।

बचपन में जाने का तो अब कोई उपाय नहीं, लेकिन रोज सुबह आप फिर से थोड़ा—सा बचपन उपलब्ध करते 'हैं। कम से कम दिन को दिशा दें। दिन जुड़ते जाएं। और अनेक दिन जुड़कर जीवन बन जाते हैं। गलत कदम उठाने से रोकें। उठ जाए, तो बीच से वापस लौटा लें। सही कदम उठाने की पूरी ताकत लगाएं; आधा भी जा सकें, तो न जाने से बेहतर है। थोड़े ही दिन में आपकी जीवन—ऊर्जा दिशा बदल लेगी।

आसुरी दिशा, हम जो कर रहे हैं, क्रोध, मान, अहंकार, उसमें हमें बढ़ाती जाती है। उससे रुकेंगे नहीं, बदलेंगे नहीं, हाथ हटाएंगे नहीं, कुछ छोड़ेंगे नहीं गलत, खाली न होंगे हाथ, तो दैवी संपदा की तरफ बढ़ना बहुत मुश्किल है। और जिस तरफ आप जाते हैं, उस तरफ.....।

कृष्ण कहते हैं, और भी मैं अति नीची योनियों में गिराता हूं। वे गिराते नहीं। कोई गिराने वाला नहीं है, कोई उठाने वाला नहीं है। आप ही गिरते हैं। नियम न पक्षपात करता है, न चुनाव करता है। नियम निष्पक्ष है। इसलिए जो भी आप हैं, अपनी ऊर्जा, दिशा और नियम, तीन का जोड़ हैं।

नियम शाश्वत है, सनातन है; आपकी ऊर्जा शाश्वत है, सनातन है; ये दोनों समानांतर हैं। इन दोनों के बीच में एक और तत्व है, आपका चुनाव, इस ऊर्जा को नियम के अनुकूल बहाना या नियम के प्रतिकूल बहाना।

नदी बह रही है, नाव आपके पास है, वह आपका जीवन है, नदी नियम है। अब इस नदी के साथ नाव को बहाना है या नदी के विपरीत नदी से लड़ने में नाव को लगाना है?

जो नदी के विपरीत बहेगा, वह आसुरी चित्त—दशा को उपलब्ध होता जाएगा। जो नदी के साथ बह जाएगा—उस साथ बहने का नाम ही समर्पण है—वह दिव्यता को उपलब्ध हो जाता है।

गीता दर्शन–भाग–7
अध्याय—16 (प्रवचन—आठवां) — नरक के द्वार: काम, क्रोध, लोभ

सूत्र—

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः।
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत्।। 21 ।।
एतैर्विमुक्तः कौन्तेय तमद्धोरैस्त्रिभिर्नरः।
आचरत्यक्ष्मनः श्रेयस्ततो यति परां गतिम्।। 22 ।।
यः शास्त्रविश्वैमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः।
न स सिद्धिमावाप्नोतिप्त न सुखं न परां गतिम्।। 23 ।।
तस्माच्छात्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ।
ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि।। 24 ।।
और हे अर्जुन, काम, क्रोध तथा लोभ, ये तीन प्रकार के नरक के द्वार आत्मा का नाश करने वाले हैं अर्थात अधोगति में ले जाने वाले है, इससे इन तीनों को त्याग देना चाहिए। क्योंकि है अर्जुन, इन तीनों नरक के द्वारों से मुक्त हुआ पुरूष अपने कल्याण का आचरण करता है। इससे वह परम गति को जाता है अर्थात मेरे को प्राप्त होता है।

और जो पुरुष शास्त्र की विधि को त्यागकर अपनी इच्छा से बर्तता है, वह न तो सिद्धि को प्राप्त होता है और न परम गति को तथा न सुख को ही प्राप्त होता है।

इसलिए तेरे लिए हम कर्तव्य और अकर्तव्य की व्यवस्था में शास्त्र ही प्रमाण है, ऐसा जानकर तू शास्त्र— विधि से नियत किए हुए कर्म को ही करने के लिए योग्य है।

पहले कुछ प्रश्न।
पहला प्रश्न :
ईश्वर और धर्म यदि परम नियम के ही नाम हैं, उससे अन्यथा कुछ भी नहीं, तो प्रार्थना, भक्ति, आराधना, सब व्यर्थ हो जाते हैं। तब तो धर्म विज्ञान का पर्याय हो जाता है और उस परम नियम की खोज में निकलना मात्र धर्म रह जाता है। इस पर कुछ और प्रकाश डालें।
ऐसा प्रश्न मन में उठेगा। यदि धर्म मात्र नियम है, तो स्वभावत: धर्म वितान ही हो गया। फिर प्रार्थना कैसी? किससे? आराधना कैसी और किसकी? पूजा, भक्ति सब व्यर्थ हो जाते हैं।

क्योंकि हमने अब तक ऐसा ही समझा है कि प्रार्थना तभी हो सकती है, जब व्यक्तिगत रूप से ईश्वर मौजूद हो। हमने अब तक ऐसा ही सुना और समझा है कि पूजा तभी हो सकती है, जब पूजा लेने वाला मौजूद हो। आराधना और भक्ति तभी सार्थक है, जब भगवान हो, कोई व्यक्ति की तरह मौजूद हो, जो स्वीकार करे, अस्वीकार करे, स्तुति से प्रसन्न हो, निंदा से नाराज हो। कोई प्रतिक्रिया करने वाला मौजूद हो, तो ही हमारे प्रेम की पुकार का कोई अर्थ है, कोई जबाब दे! हमने अब तक ऐसा ही समझा है, इसलिए प्रश्न उठता है।

लेकिन हमारी समझ भ्रांत है, हमारी समझ में भूल है।

प्रार्थना की उपादेयता परमेश्वर है, इससे जरा भी नहीं है। प्रार्थना करने का सारा का सारा विज्ञान प्रार्थना करने वाले से संबंधित है। भगवान हो या न हो, व्यक्ति की तरह कोई आकाश में बैठकर जीवन को चलाता हो या न चलाता हो, भक्ति का उससे कुछ लेना—देना नहीं है। भक्ति तो भक्त की अंतर्दशा है।

भक्त को कठिन होगा बिना भगवान के भक्तिपूर्ण होना, इसलिए सभी धर्मों ने भगवान की धारणा को पोषित किया है। यह सिर्फ भक्त को सहारा देने के लिए है। लेकिन अगर समझ हो, तो भक्ति अपने आप में पूरी है, भगवान की कोई भी जरूरत नहीं। प्रार्थना अपने आप में पूरी है, कोई उसे सुनता हो कि न सुनता हो; सुनने वाला आवश्यक नहीं। आराधना पर्याप्त है, आराध्य जरा भी आवश्यक नहीं है।

जब मैं यह कहता हूं तो क्या मेरा अर्थ होगा! क्योंकि बात कठिन लगेगी। आराधना हमारे लिए तभी समझ में आती है, जब आराध्य हो, पूजा तभी समझ में आती है, जब कोई पूज्य हो। लेकिन मैं आपको कहना चाहूंगा कि पूजा चित्त की एक दशा है। बुद्ध किसी भगवान को मानते नहीं, फिर भी उनकी आराधना में रत्तीभर कमी नहीं है। किसी परमेश्वर

की उनके मन में कोई धारणा नहीं है, लेकिन बुद्ध से ज्यादा प्रार्थनापूर्ण हृदय आप खोज पाइएगा? एच .जी वेल्स ने लिखा है कि बुद्ध जैसा ईश्वररहित और ईश्वर जैसा व्यक्ति खोजना कठिन है—सो गॉडलेस एंड सो गॉड लाइक।

इसे हम थोड़ा—सा अंतर्मुखी हों, तो खयाल में आ सकेगा।

क्या आप प्रेमपूर्ण हो सकते हैं बिना प्रेमी के हुए? क्या प्रेमपूर्ण होना आपके जीवन का ढंग और शैली हो सकती है? क्या प्रेमपूर्ण होना आपकी भाव—दशा हो सकती है?

तो फिर आप उठेंगे भी तो प्रेम से, बैठेंगे भी तो प्रेम से, भोजन करेंगे तो भी प्रेम से, सोने जाएंगे तो भी प्रेम से। कोई प्रेमी नहीं होगा, लेकिन आप प्रेमपूर्ण होंगे। फिर जो भी आपके मार्ग पर आ जाएगा, वही आपको प्रेमी जैसा मालूम पड़ेगा। एक पक्षी भी उड़ जाएगा आपके अपान से और आप प्रेमपूर्ण होंगे, तो पक्षी प्रेमी हो जाएगा। कोई भी न होगा, सूना आकाश होगा आपके आगन का और आपका हृदय प्रेमपूर्ण होगा, तो सूना आकाश भी व्यक्तित्व ले लेगा।

व्यक्ति की जरूरत नहीं है, हृदय प्रेमपूर्ण हो, तो प्रेमपूर्ण हृदय जिस तरफ भी प्रकाश डालता है, वहीं व्यक्तित्व निर्मित हो जाता है। भगवान नहीं है, भक्त है। और भक्त का हृदय जहां भी देखता है, वहीं भगवान प्रकट हो जाता है।

इसे थोड़ा समझने की जरूरत है।

यह भक्त के हृदय की सृजनकला है कि वह जहां भी आंख डालता है, वहा भगवान पैदा हो जाता है। वह वृक्ष में देखेगा, तो वृक्ष में भगवान प्रकट हो जाएगा। यह आपकी आंख पर निर्भर है कि आप क्या पैदा कर लेते हैं। भगवान भक्त का सृजन है।

धर्म तो नियम है। धर्म कोई व्यक्ति नहीं है, धर्म तो शक्ति है। इसलिए भगवान शब्द ठीक नहीं है, भगवत्ता! डीइटी नहीं, डिविनिटी! कोई व्यक्ति की तरह बैठा हुआ पुरुष नहीं है ऊपर, जो चला रहा हो। लेकिन यह सारा जगत चल रहा है। चलने की घटना घट रही है; कोई चलाने वाला नहीं है। यह जो चलने का विराट उपक्रम चल रहा है, यह जो चलने की महान ऊर्जा है, यह जो शक्ति है, यह शक्ति ही भगवान हो जाती है, अगर हृदय में भक्ति हो। यह शक्ति ही प्रकृति मालूम पड़ती है, अगर हृदय में भक्ति न हो।

प्रकृति और परमात्मा दो तरह के हृदय की व्याख्याएं हैं। जिसके हृदय में कोई भक्ति नहीं, उसे चारों तरफ प्रकृति दिखाई पड़ती है, पदार्थ दिखाई पड़ता है। जिसके हृदय में भक्ति है, उसे चारों तरफ परमात्मा दिखाई पड़ता है, परमेश्वर दिखाई पड़ता है। परमेश्वर और प्रकृति एक ही विराट घटना की व्याख्याएं हैं। और आपके हृदय पर निर्भर है कि व्याख्या आप कैसी करेंगे। आप वही देख लेंगे, जो आपके हृदय में आविर्भूत हुआ है।

प्रार्थना, पूजा, आराधना भगवान के कारण नहीं हैं। लेकिन प्रार्थना, पूजा, आराधना के कारण जगत भगवान जैसा दिखाई पड़ना शुरू हो जाता है। भगवान है और इसलिए हम प्रार्थना करते हैं, ऐसा नहीं। हम प्रार्थना करते हैं, इसलिए भगवान हो जाता है।

लोग कहते हैं, भगवान ने आपको बनाया, और मैं आपको कहता हूं कि आपकी भक्ति भगवान को सृजित करती है। जहां आपकी भक्ति होगी, वहां भगवान प्रकट हो जाता है। जहां से आपकी भक्ति विदा हो जाएगी, वहीं भगवान विदा हो जाएगा। भगवान आपकी आंखों के देखने का ढंग है।

धर्म तो नियम है। लेकिन उस नियम में उतरना, आपको अपने को बदलना पड़े, तभी हो सकता है।

प्रार्थना आपको बदलने के लिए है। आमतौर से हम प्रार्थना करते हैं परमात्मा को बदलने के लिए। आप बीमार हैं, तो आप प्रार्थना करते हैं कि मुझे ठीक करो। परमात्मा का इरादा बदलने की चेष्टा है हमारी प्रार्थना। अगर आप बीमार हैं

और सच में ही भक्त हैं, तो आपको स्वीकार करना चाहिए कि परमात्मा चाहता है कि मैं बीमार होऊं, इसलिए मैं बीमार हूं।

परमात्मा का दृष्टिकोण बदलने की चेष्टा हम करते हैं कि मुझे स्वस्थ कर; कि मैं गरीब हूं? मुझे अमीर कर; कि मैं दुखी हूं मुझे सुखी कर, अपनी दृष्टि बदल। हम परमात्मा का ध्यान आकर्षित करते हैं कि बदलो, जो चल रहा है, वह ठीक नहीं; मैं उससे राजी नहीं हूं।

और हम उसकी खुशामद करते हैं। क्योंकि हमने जीवन में सीखा है कि मनुष्य को हम खुशामद से प्रभावित कर सकते हैं, इसलिए हम सोचते हैं, जिस ढंग से आदमी प्रभावित होता है, उसी ढंग से परमात्मा भी प्रभावित होगा। तो हम स्तुति करते हैं; हम उसका गुणगान करते हैं। हम कहते हैं, तुम बहुत महान हो। लेकिन हमारी इस सारी चेष्टा में छिपा क्या? मन की आकांक्षा क्या?

यही कि तुम जो कर रहे हो, वह ठीक नहीं। और हमारी इस स्तुति में एक तरह की धमकी है कि अगर तुम यह बंद नहीं करोगे, तो यह स्तुति बंद हो जाएगी, तो यह प्रार्थना समाप्त हो जाएगी; फिर तुम्हें कोई पूजने वाला नहीं है। अगर पूजा जारी रखवानी है, तो हमारी मरजी के अनुसार थोड़ा कुछ करो।

हमारी सारी प्रार्थनाएं मांगें हैं, हम कुछ मांगते हैं। और हमारी मौलिक मांग यह है कि हम ठीक हैं और तुम गलत हो।

एक बहुत बड़े विचारक अल्डुअस हक्सले ने लिखा है कि परमात्मा से हम जब भी प्रार्थना करते हैं, हम चाहते हैं कि दो और दो चार न हों।

हमारी सारी प्रार्थनाओं का रूप यही है कि दो और दो चार न हों। हमने पाप किए हैं, उसके कारण हम दुख भोगते हैं। वह दो और दो चार हो रहे हैं। हम चाहते हैं, दुख हमें न मिले। पाप हमने किए हैं, क्षमा तुम कर दो।

जो भी हम भोग रहे हैं, वह हमारे कृत्यों का जोड़ है। लेकिन उसमें तुम बदलाहट कर दो। दो और दो तो चार होते हैं, लेकिन हम चाहते हैं, या तो तुम पांच करो या तुम तीन करो, चार भर न हो पाएं। हमारी सारी प्रार्थनाएं गणित को डगमगाने के लिए हैं, नियम को तोड्ने के लिए हैं। अन्यथा प्रार्थना का हमारा क्या प्रयोजन है?

इस प्रार्थना की अगर आप धारणा रखते हैं, तब तो बिना परमात्मा के प्रार्थना व्यर्थ हो जाएगी। क्योंकि अगर वहां कोई है ही नहीं, सिंहासन खाली है, तो आप सिर पटकते रहो, बेकार है। आप तभी तक सिर पटक सकते हो, जब तक भरोसा रहे कि सिंहासन पर कोई है, तो शायद हमारे सिर पटकने से बदलेगा।

और हम अपने मन को समझा लेते हैं, अगर कभी बदलाहट हो जाती है। हमारी प्रार्थनाओं के कारण कोई बदलाहट नहीं होती, न कोई परमात्मा बदलाहट करने वाला है। लेकिन जीवन के अनंत संयोगों में कभी—कभी हमारी प्रार्थना संयोगों से मेल खाती है बदलाहट हो जाती है, तो हम उसे धन्यवाद देते हैं। अगर बदलाहट नहीं होती, तो हम नाराजगी जाहिर करते हैं।

मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं कि हम तो छोड़ने की स्थिति में आ गए थे, कि यह धर्म—वर्म सब व्यर्थ है। लेकिन प्रार्थना पूरी हो गई, तब से आस्था बढ़ गई। मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं, हम थक गए प्रार्थना कर—करके, कभी कोई फल न आया; आस्था उठ गई।

आस्था किसी की भी नहीं है। प्रार्थना पूरी हो जाए, तो आस्था जमती है। प्रार्थना न पूरी हो, तो आस्था उखड़ जाती है।

मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन रोज सुबह प्रार्थना करता था काफी जोर से। परमात्मा सुनता था कि नहीं, पड़ोस के लोग सुन लेते थे कि सौ रुपए से कम न लूंगा; निन्यानबे भी देगा, नहीं लूंगा। जब भी दे, सौ पूरे देना।

आखिर पड़ोसी सुनते—सुनते परेशान हो गए। एक पड़ोसी ने तय किया कि इसको एक दफा निन्यानबे रुपए देकर देखें भी तो सही। वह कहता है कि निन्यानबे कभी न लूंगा, सौ ही लूंगा। उसने एक दिन सुबह जैसे ही मुल्ला प्रार्थना कर रहा था, एक निन्यानबे की थैली उसके झोपड़े के आगन में फेंक दी।

मुल्ला ने पहला काम रुपए गिनने का किया। वह आधी प्रार्थना आधी रह गई; वह पूरी नहीं कर पाया, नमाज पूरी नहीं हो सकी। उसने जल्दी से पहले गिनती की। निन्यानबे पाकर उसने कहा, वाह रे परमात्मा, एक रुपया थैली का तूने काट लिया!

उसने निन्यानबे स्वीकार कर लिए।

हमारी बनाई हुई प्रार्थना; हमारी प्रार्थना; और हम हिसाब लगा रहे हैं। वहां कोई है या नहीं, इससे बहुत प्रयोजन नहीं है। इसलिए अगर आपको पक्का हो जाए कि परमात्मा नहीं है, तो आपकी प्रार्थना टूट' जाएगी, यह मैं जानता हूं। इसलिए प्रश्न सार्थक है। लेकिन जो प्रार्थना परमात्मा के न होने से टूट जाती है, वह प्रार्थना थी ही नहीं। प्रार्थना का कोई भी संबंध परमात्मा को बदलने से नहीं है, प्रार्थना आपको बदलने की कीमिया है। जब आप प्रार्थना करते हैं, तो वहां आकाश में बैठा हुआ परमात्मा नहीं रूपांतरित होता। जब आप प्रार्थना करते हैं, तो उस प्रार्थना करने में आप बदलते हैं।

तो प्रार्थना एक प्रयोग है, जिस प्रयोग से आप अपने अहंकार को तोड़ते हैं, अपने को झ़ुकाते हैं। वहां कोई नहीं बैठा है, जिसके आगे आप अपने को झ़ुकाते हैं। झ़ुकने की घटना का परिणाम है। आप झ़ुकते हैं। आपको कठिन है बिना परमात्मा के, इसलिए कोई हर्जा नहीं। आप मानते रहें कि परमात्मा है, लेकिन असली जो घटना घटती है, वह आपके झुकने से घटती है।

आप झ़ुकना सीखते हैं, किसी के सामने समर्पित होना सीखते हैं। कहीं आपका माथा झ़ुकता है, जो सदा अकड़ा हुआ है, वह कहीं जाकर झ़ुकता है। कहीं आप घुटने के बल छोटे बच्चे की तरह हो जाते हैं; कहीं आप रोने लगते हैं, आंखों से आंसू बहने लगते हैं, हलके हो जाते हैं। और मैं कर सकता हूं यह धारणा प्रार्थना से टूटती है। तू करेगा! तू करेगा सवाल नहीं है; मैं कर सकता हूं, यह धारणा टूटती है। मैं नहीं कर सकूंगा, तभी हम प्रार्थना करते हैं। मुझसे नहीं हो सकेगा।

अगर इसके गहरे अर्थ को समझें, तो इसका अर्थ है, जहां भी आपको समझ में आ जाता है कि कर्ता मैं नहीं हूं वहीं प्रार्थना शुरू हो जाती है। यह कर्तृत्व को खोने की तरकीब है। वह जो कर्तृत्व है कि मैं करता हूं, वह जो अहंकार है, वह जो मेरी अस्मिता है कि करने वाला मैं हूं उसके टूटने का नाम प्रार्थना है।

जब आप घुटने टेक देते हैं, सिर झ़ुका देते हैं और कहते हैं, मुझसे कुछ भी न होगा, अब तू ही कर, मेरे बस के बाहर है। तू ही उठा; अब मुझसे नहीं चलना हो सकेगा, तू ही चला। यह उससे इसका कोई संबंध नहीं है, वहा कोई है भी नहीं, जो इसको सुन रहा है। लेकिन यह कहने वाला हृदय अपने अहंकार को विसर्जित कर रहा है। और जो आनंद इस प्रार्थना से घटित होगा, वह किसी का दिया हुआ नहीं है; वह आपके ही अहंकार छोड़ने से आपको मिलता है।

धर्म तो एक नियम है। जो झ़ुकता है, उसकी समृद्धि बढती चली जाती है, जो अकड़ता है, उसकी समृद्धि टूटती चली जाती है। जो जितना अकड़ जाता है, उतना मुर्दा हो जाता है। जो जितना झ़ुक जाता है, जितना लोचपूर्ण हो जाता है, फ्लेक्सिबल हो जाता है, उतना ही जीवंत हो जाता है।

बच्चे में और के में वही फर्क है। के की हड्डी—हड्डी अकड़ गई है। अब वह झुक नहीं सकता। बच्चा लोचपूर्ण है।

प्रार्थना आपको लोच देती है, फ्लेक्सिबिलिटी देती है, आपको झ़ुकना सिखाती है। जो प्रार्थना नहीं करता, वह अकड़ जाता है, असमय में का हो जाता है, असमय में मृत हो जाता है, जीते जी मुर्दा हो जाता है। और जो प्रार्थना करना जानता है, उसे मृत्यु भी नहीं मिटा पाती। मृत्यु के क्षण में भी वह लोचपूर्ण होता है, मृत्यु के क्षण में भी वह बच्चे जैसा जीवंत होता है।

जो व्यक्ति प्रार्थना की कला सीख लेता है, उसे परमात्मा से कोई संबंध नहीं। परमात्मा सिर्फ बहाना है, ताकि प्रार्थना हो सके। परमात्मा सिर्फ खूंटी है, जिस पर हम प्रार्थना के कोट को टांग सकें। असली बात प्रार्थना है।

इसलिए बुद्ध और महावीर जैसे महाज्ञानियों ने परमात्मा को बिलकुल इनकार ही कर दिया। लेकिन प्रार्थना को इनकार नहीं कर सके, प्रार्थना जारी रही। पूजा को इनकार नहीं कर सके, पूजा जारी रही। समर्पण को इनकार नहीं कर सके, समर्पण जारी रहा। इसलिए जैन धर्म बहुत ज्यादा जनता तक नहीं पहुंच सका, क्योंकि यह बात ही समझ में नहीं आती। अगर भगवान ही नहीं है, तो फिर कैसी आराधना? जब परमात्मा नहीं है, तो पूजा किसकी?

तो जैन विचार बहुत थोड़े लोगों की पकड़ में आया, ज्यादा लोग उसके साथ नहीं चल सके। और जो थोड़े—से लोग भी प्रथम दिन चले थे, वे ही समझदार थे। पीछे तो उनकी संतान सिर्फ अंधेपन के कारण चलती है। क्योंकि उनके मां—बाप जैन थे, वे भी जैन हैं। लेकिन उनकी भी समझ में नहीं आता।

और इसलिए उन्होंने फिर नए उपाय कर लिए। बिना परमात्मा के तो पूजा हो नहीं सकती, तो फिर महावीर को ही परमात्मा की जगह बिठा दिया; फिर पूजा जारी हो गई! अब कोई फर्क नहीं है जैन और हिंदू में। हिंदू प्रार्थना कर रहा है, राम से, कृष्ण से। जैन प्रार्थना कर रहा है, महावीर से, ऋषभ से, नेमीनाथ से। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता।

लेकिन परमात्मा के बिना प्रार्थना करना बड़ा कठिन है; जो कर पाए, उसके जीवन में बड़े फूलों की वर्षा हो जाती है। लेकिन आप न कर पाते हों, तो परमात्मा से शुरू करें; कोई हर्जा नहीं है। परमात्मा सिर्फ खिलौना है, असली चीज प्रार्थना घट जाए। जिस दिन प्रार्थना घट जाएगी, उस दिन तो आप खुद समझ जाएंगे कि परमात्मा के होने न होने का सवाल नहीं है।

धर्म नियम है, इसलिए मैंने कहा। और जो भी घटता है जीवन में, वह एक आत्यंतिक नियम के कारण घटता है। आपकी प्रार्थनाओं के कारण कुछ भी नहीं घटता। आपकी पूजा के कारण कुछ भी नहीं घटता। ही, अगर पूजा आपकी, प्रार्थना आपकी आपको बदल देती हो, तो आप नियम के अनुकूल बहने लगते हैं। उस नियम के अनुकूल बहने से घटना घटती है।

हम जीवन में करीब—करीब उन्हीं—उन्हीं भूलों को बार—बार दोहराते हैं। पिछले जन्म में भी आपने वही भूलें कीं, उसके पिछले जन्म में भी वही भूलें कीं, आज भी वही कर रहे हैं। और डर यह है कि शायद कल और आने वाले जन्म में भी वही भूलें करेंगे। हर पीढ़ी उन्हीं को दोहराती है; हर आदमी उन्हीं को दोहराता है।

बड़ी से बड़ी भूल जो है, वह यह है कि हम अंतरस्थ भावों को भी बिना आब्जेक्टिफाइ किए, बिना उनको वस्तु में रूपांतरित किए स्वीकार नहीं कर पाते। भाव तो भीतरी है, लेकिन उस भाव को भी सम्हालने के लिए हमें बाहर के सहारे की जरूरत पड़ती है। यह बुनियादी भूलों में से एक है।

अगर आप प्रसन्न हैं और कोई आपसे पूछे कि आप क्यों प्रसन्न हैं, तो आप यह नहीं कह सकते कि मैं बस, प्रसन्न हूं। क्यों का क्या सवाल है? आप कारण बताएंगे कि मैं इसलिए प्रसन्न हूं कि आज मित्र घर आया। इसलिए प्रसन्न हूं कि धन मिला। इसलिए प्रसन्न हूं कि लाटरी जीत गया। आप कोई कारण बताएंगे। आप इतनी हिम्मत नहीं कर सकते कि कह सकें कि मैं प्रसन्न हूं क्योंकि प्रसन्न होने में प्रसन्नता है।

और मूढ़ हैं, जो कारण खोजते हैं। क्योंकि कारण खोजने वाला बहुत ज्यादा प्रसन्न नहीं हो सकता। कितने कारण खोजिएगा? रोज कारण नहीं मिल सकते। और आज कारण मिल जाएगा, घड़ीभर बाद कारण चुक जाएगा। लाटरी मिल गई, एक धक्का लगा, खुशी आ गई। फिर? मित्र आज घर आ गया, कल कोई और घटना घट गई, अगर जिंदगी में कारण से प्रसन्नता आती हो, तो बहुत थोड़ी प्रसन्नता आएगी।

इसीलिए लोगों के जीवन में सुख बहुत कम है, दुख बहुत ज्यादा है। क्योंकि कारण से जब सुख मिलेगा, तब सुख; अन्यथा दुख ही दुख है। दुख अकारण हमने स्वीकार किया है, सुख के लिए हम कारण खोजते हैं।

और अगर आप प्रसन्न हैं बिना कारण के, तो लोग समझेंगे, आप पागल हैं। बिना कारण के प्रसन्न हैं! कोई कारण तो चाहिए। अगर आप प्रसन्न हो रहे हैं, मुस्कुरा रहे हैं, नाच रहे हैं, बिना किसी कारण के, न लाटरी मिली, न पत्नी मायके गई, कोई खुशी का कारण नहीं है, और आप प्रसन्न हो रहे हैं, तो लोग समझेंगे कि आप पागल हैं।

ये जो, जिनको हमने संत कहा है, उनके जीवन का रहस्य यही है कि उन्होंने बिना कारण प्रसन्न होने का रास्ता खोज लिया। संत और संसारी में यही भेद है। संसारी कारण खोजता है पहले। पहले सब प्रमाण मिल जाएं, तब वह प्रसन्न होगा। संत प्रसन्न होता है, प्रमाण का कोई आधार नहीं खोजता। क्या फर्क हुआ?

संत अंतरस्थ भाव में जीता है। बाहर आब्जेक्टिफिकेशन नहीं खोजता, बाहर वस्तु रूप में प्रमाण नहीं चाहता। तो संत कहता है, प्रार्थना काफी है, परमात्मा हो या न हो। हो तो ठीक, न हो तो भी उतना ही ठीक। इससे संत की प्रार्थना में कोई फर्क नहीं पड़ता। संत प्रेम करता है, प्रेमी की तलाश नहीं करता। प्रेम में ही इतना आनंद है कि अब प्रेमी का उपद्रव लेने की कोई जरूरत नहीं है। संत ध्यान करता है, लेकिन ध्यान के लिए कोई विषय नहीं खोजता। विषय से मुक्ति हो, वस्तु से मुक्ति हो, पदार्थ से मुक्ति हो और अंतर्भाव में रमण हो, तो जीवन की परम समाधि अपने आप सध जाती है।

लेकिन हमें सब जगह बाहर कुछ चाहिए। अगर बाहर हमें कुछ न मिले, तो हम बिलकुल खाली हो जाते हैं। क्योंकि भीतर हमने कभी फिक्र नहीं की। और हमने भीतर की जड़ें नहीं खोजी, जिनसे सारे जीवन के फूल खिल सकते हैं, बाहर की कोई भी जरूरत नहीं है। जब तक ऐसा समझ में न आए, तब तक बाहर का सहारा लेकर चलें। लेकिन ध्यान रखें कि वह सहारा सिर्फ सहारा है, वहां कोई है नहीं। इसका क्या अर्थ हुआ? इसका क्या यह अर्थ हुआ कि मैं कह रहा हूं परमात्मा नहीं है?

नहीं, मैं सिर्फ इतना ही कह रहा हूं जिस परमात्मा को आप सोचते हैं, वह नहीं है। जो परमात्मा आप निर्मित किए हैं, वह नहीं है। परमात्मा का तो एक ही अर्थ है, यह समग्र अस्तित्व, यह टोटेलिटी, यह जो पूर्णता है। ये जो वृक्ष हैं, पौधे हैं, पत्थर हैं, जमीन है, चांद—तारे हैं, मनुष्य हैं, पशु—पक्षी हैं, यह जो सारा फैलाव है, यह जो ब्रह्म है, यह जो विस्तार है, यह सब कुछ परमात्मा है। और जिस दिन आपको अपने में झुकने की कला आ जाएगी, आपका मस्तक झुक सकेगा, लोचपूर्ण होगा, हृदय आनंदित, प्रफुल्लित होगा, प्रार्थना के स्वर वहा गूंजते होंगे, पैरों में धुन होगी आराधना की, भक्त का भाव होगा, तब आप पाएंगे कि यह सब परमात्मा है। उस दिन आप देखेंगे, जीवन नियम से चल रहा है। और धर्म भी विज्ञान है। वस्तुत: धर्म परम विज्ञान है, सुप्रीम साइंस है।

इस प्रश्न का दूसरा हिस्सा भी समझने जैसा है तब तो धर्म विज्ञान का पर्याय हो जाता है और उस परम नियम की खोज में निकलना मात्र धर्म रह जाता है।

निश्चित ही, उस परम नियम की खोज में निकलना ही धर्म है। लेकिन वह परम नियम अगर बाहर आप खोजते हैं, तो आप वैज्ञानिक हो जाते हैं। और अगर उस परम नियम को आप भीतर खोजते हैं, तो धार्मिक हो जाते हैं।

वैज्ञानिक भी धर्म ही खोज रहा है, लेकिन पदार्थ में खोज रहा है, बाहर खोज रहा है। और अगर आप भी धर्म को मंदिर में खोजते हैं, मस्जिद में खोजते हैं, तो आप भी बाहर खोज रहे हैं। आप में और वैज्ञानिक में बहुत फर्क नहीं है।

धार्मिक उसी नियम को भीतर खोजता है। क्योंकि धार्मिक व्यक्ति की यह प्रतीति है, जिसे मैं भीतर न पा सकूंगा, उसे मैं बाहर कैसे पा सकूंगा। क्योंकि भीतर मेरा निकटतम है, जब भीतर ही मेरे हाथ नहीं पहुंच पाते, तो बाहर मेरे हाथ कहां पहुंच पाएंगे? हाथ बड़े छोटे हैं।

अपने ही भीतर नहीं छू पाता उसे, तो फिर मैं आकाश में उसे कैसे छू पाऊंगा? और जो मेरे हृदय के भी पास है, और जो मेरे प्राणों से भी निकट है, जो मेरी धड़कन— धड़कन में समाया है, वहां नहीं सुन पाता उसे, तो बादलों की गड़गड़ाहट में कैसे सुन पाऊंगा? बहुत दूर हैं बादल। और जो ज्योति मेरे भीतर जल रही है, वहां उससे मेरा मिलन नहीं होता, तो सूरज, चांद, तारों की ज्योति में मैं उसे नहीं पहचान पाऊंगा।

जब सत्य इतना निकट हो और हम उसे वहां चूक जाते हों, तो हमारी दूर की सब यात्रा व्यर्थ है। भीतर मुझे वह दिखाई पड़ जाए, तो सब जगह मैं उसे पहचान लूंगा। निकट पहचान हो जाए तो दूर भी वह मुझे दिखाई पडने लगेगा। क्योंकि जिसे हम दूरी कहते हैं, वह भी निकटता का ही फैलाव है। पर पहली घटना, पहली क्रांति भीतर घटेगी।

वैज्ञानिक दृष्टि का मतलब है, सदा बाहर। धार्मिक दृष्टि का अर्थ है, सदा भीतर।

वैज्ञानिक दूर से शुरू करता है और निकट आने की कोशिश करता है। यह कभी भी नहीं हो पाएगा, क्योंकि वह दूरी अनंत है; जीवन बहुत छोटा है। अनेक— अनेक जन्म खोते जाएंगे, तो भी वह दूरी बनी रहेगी।

धार्मिक उसे भीतर से शुरू करता है और फिर बाहर की तरफ जाता है। और भीतर जिसने उसे छू लिया, वह तरंग पर सवार हो गया, उसने लहर पकड़ ली; उसके हाथ में नाव आ गई। अब कोई जल्दी भी नहीं है। वह दूसरा किनारा न भी मिले, तो भी कुछ खोता नहीं है। वह दूसरा किनारा कभी भी मिल जाएगा, अनंत में कभी भी मिल जाएगा, तो भी कोई प्रयोजन नहीं है। कोई डर भी नहीं है उसके खोने का। मिले तो ठीक, न मिले तो ठीक। लेकिन आप ठीक नाव पर सवार हो गए।

जिसने अंतस में पहचान लिया, उसकी यात्रा कभी भी मंजिल पर पहुंचे या न पहुंचे, मंजिल पर पहुंच गई। वह बीच नदी में डूबकर मर जाए, तो भी कोई चिंता की बात नहीं है। अब उसके मिटने का कोई उपाय नहीं है। अब नदी का मध्य भी उसके लिए किनारा है।

धार्मिक व्यक्ति भीतर से बाहर की तरफ फैलता है। और जीवन का सभी विस्तार भीतर से बाहर की तरफ है। आप एक पत्थर फेंकते हैं पानी में; छोटी—सी लहर उठती है पत्थर के किनारे, फिर फैलना शुरू होती है। भीतर से उठी लहर पत्थर के पास, फिर दूर की तरफ जाती है। आपने कभी इससे उलटा देखा कि लहर किनारों की तरफ पैदा होती हो और फिर सिकुड़कर भीतर की तरफ आती हो!

एक बीज को आप बो देते हैं। फिर वह फैलना शुरू हो जाता है, फिर वह फैलता जाता है, फिर एक विराट वृक्ष पैदा होता है। और उस विराट वृक्ष में एक बीज की जगह करोड़ों बीज लगते हैं। फिर वे बीज भी गिरते हैं। फिर फूटते हैं, फिर फैलते हैं।

हमेशा जीवन की गति बाहर से भीतर की तरफ नहीं है। जीवन की गति भीतर से बाहर की तरफ है। यहां बूंद सागर बनती देखी जाती है, यहां बीज वृक्ष बनते देखा जाता है। धर्म इस सूत्र को पहचानता है। और आपके भीतर जहां लहर उठ रही है हृदय की, वहीं से पहचानने की जरूरत है। और वहीं से जो पहचानेगा, वही पहचान पाएगा।

लेकिन जैसा मैंने कहा कि हम नियमित रूप से बंधी—बधाई भूलें दोहराते हैं। आदमी बड़ा अमौलिक है। हम भूल तक ओरिजिनल नहीं करते, वह भी हम पुरानी पिटी—पिटाई करते हैं।

मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी उस पर नाराज थी। बात ज्यादा बढ़ गई और पत्नी ने चाबियों का गुच्छा फेंका और कहा कि मैं जाती हूं। अब बहुत हो गया और सहने के बाहर है। मैं अपनी मां के घर जाती हूं और कभी लौटकर न आऊंगी।

नसरुद्दीन ने गौर से पत्नी को देखा और कहा कि अब जा ही रही हो, तो एक खुशखबरी सुनती जाओ। कल ही तुम्हारी मां तुम्हारे पिता से लड़कर अपनी मां के घर चली गई है। और जहां तक मैं समझता हूं वहां वह अपनी मां को शायद ही पाए।

एक वर्तुल है भूलों का। वह एक—सा चलता जाता है। एक बंधी हुई लकीर है, जिसमें हम घूमते चले जाते हैं। हर पीढ़ी वही भूल करती है, हर आदमी वही भूल करता है, हर जन्म में वही भूल करता है। भूलें बड़ी सीमित हैं।

धर्म की खोज की दृष्टि से यह बुनियादी भूल है कि हम बाहर से भीतर की तरफ चलना शुरू करते हैं। क्योंकि यह जीवन के विपरीत प्रवाह है, इसमें सफलता कभी भी मिल नहीं सकती। सफलता उसी को मिल सकती है, जो जीवन के ठीक प्रवाह को समझता है और भीतर से बाहर की तरफ जाता है।

दूसरा प्रश्न :
आप कहते हैं कि सभी द्वैत से ऊपर उठकर परम मुक्ति को उपलब्ध होने के लिए समस्त जीवेषणा की निर्जरा अनिवार्य है। आज के समय के अनुकूल मृत्यु—साधना की कोई सम्यक विधि बताएं?
जीवेषणा, लस्ट फार लाइफ का अर्थ ठीक से समझ लें। हम जीना चाहते हैं। लेकिन यह जीने की आकांक्षा बिलकुल अंधी है। कोई आपसे पूछे, क्यों जीना चाहते हैं, तो उत्तर नहीं है। और इस अंधी दौड़ में हम पौधे, पक्षियों, पशुओं से भिन्न नहीं हैं। पौधे भी जीना चाहते हैं, पौधे भी जीवन

की तलाश करते हैं।

मेरे गांव में मेरे मकान से कोई चार सौ कदम की दूरी पर एक वृक्ष है। चार सौ कदम काफी फासला है। और मकान में जो नल का पाइप आता है, वह अचानक एक दिन फूट पड़ा, तो जमीन खोदकर पाइप की खोजबीन करनी पड़ी कि क्या हुआ! चार सौ कदम दूर जो वृक्ष है, उसकी जड़ें उस पाइप की तलाश करती हुई पाइप के अंदर घुस गई थीं, पानी की खोज में।

वैज्ञानिक कहते हैं कि वृक्ष बड़े हिसाब से अपनी जडें पहुंचाते हैं—कहां पानी होगा? चार सौ कदम काफी फासला है और वह भी लोहे के पाइप के अंदर पानी बह रहा है। लेकिन वृक्ष को कुछ पकड़ है। उसने उतने दूर से अपनी जड़ें पहुंचाईं। और ठीक उन जड़ों ने आकर अपना काम पूरा कर लिया, कसते—कसते उन्होंने पाइप को तोड़ दिया लोहे के। वे अंदर प्रवेश कर गईं और वहां से पानी पी रही थीं; वर्षों से वे उपयोग कर रही होंगी।

वृक्ष को भी पता नहीं कि वह क्यों जीना चाहता है। अफ्रीका के जंगल में वृक्ष काफी ऊंचे जाते हैं। उन्हीं वृक्षों को आप यहां लगाएं, उतने ऊंचे नहीं जाते। ऊंचे जाने की यहां कोई जरूरत नहीं है। अफ्रीका में जंगल इतने घने हैं कि वैज्ञानिक कहते हैं, जिस वृक्ष को बचना हो, उसको ऊंचाई बढ़ानी पड़ती है। क्योंकि वह ऊंचा हो जाए, तो ही सूरज की रोशनी मिलेगी। अगर वह नीचा रह गया, तो मर जाएगा।

वही वृक्ष अफ्रीका में ऊंचाई लेगा तीन सौ फीट की। वही वृक्ष भारत में सौ फीट पर रुक जाएगा। जीवेषणा में यहां संघर्ष उतना नहीं है।

वैज्ञानिक कहते हैं, जेब्रा है, ऊंट है, उनकी जो गर्दनें इतनी लंबी हो गई हैं, वह रेगिस्तानों के कारण हो गई हैं। जितनी ऊंची गर्दन होगी, उतना ही जानवर जी सकता है, क्योंकि इतने ऊपर वृक्ष की पत्तियों को वह तोड़ सकता। सुरक्षा है जीवन में, तो गर्दन बड़ी होती चली गई है।

चारों तरफ जीवन का बचाव चल रहा है। छोटी—सी चींटी भी अपने को बचाने में, खुद को बचाने में लगी है। बड़े से बड़ा हाथी भी अपने को बचाने में लगा है। हम भी उसी दौड़ में हैं।

और सवाल यह है—और यहीं मनुष्य और पशुओं का फर्क शुरू होता है कि हमारे मन में सवाल उठता है—कि हम जीना क्यों चाहते हैं? आखिर जीवन से मिल क्या रहा है जिसके लिए आप जीना चाहते हैं?

जैसे ही पूछेंगे कि मिल क्या रहा है, तो हाथ खाली मालूम पड़ते हैं। मिल कुछ भी नहीं रहा है। इसलिए कोई भी विचारशील व्यक्ति उदास हो जाता है, मिल कुछ भी नहीं रहा है।

रोज सुबह उठ आते हैं, रोज काम कर लेते हैं; खा लेते हैं; पी लेते हैं; सो जाते हैं। फिर सुबह हो जाती है। ऐसे पचास वर्ष बीते, और पचास वर्ष बीत जाएंगे। अगर सौ वर्ष का भी जीवन हो, तो बस यही कम दौड़ता रहेगा। और अभी तक कुछ नहीं मिला, कल क्या मिल जाएगा?

और मिलने जैसा कुछ लगता भी नहीं है। मिलेगा भी क्या, इसकी कोई आशा भी बांधनी मुश्किल है। धन मिल जाए, तो क्या मिलेगा? पद मिल जाए, तो क्या मिलेगा? जीवन रिक्त ही रहेगा। जीवेषणा अंधी है, पहली बात तो यह समझ लेनी जरूरी है। और इसलिए जीवेषणा से उठने का जो पहला प्रयोग है, वह आंखों के खोलने का प्रयोग है कि मैं अपने जीवन को देखूं कि मिल क्या रहा है! और अगर कुछ भी नहीं मिल रहा है, यह प्रतीति साफ हो जाए, तो जीवेषणा क्षीण होने लगेगी।

मैं जीना इसलिए चाहता हूं कि कुछ मिलने की आशा है। अगर यह स्पष्ट हो जाए कि कुछ मिलने वाला नहीं है, कुछ मिल नहीं रहा है, तो जीने की आकांक्षा से छुटकारा हो जाएगा, उसकी निर्जरा हो जाएगी।

'पहली बात, आंख खोलकर देखना जरूरी है, सजग होना जरूरी है कि जीवन क्या दे रहा है!

फिर दूसरी बात, देखना जरूरी है कि मिल तो कुछ भी नहीं रहा और जीवन रोज मौत में उतरता जा रहा है। और आज नहीं कल मैं मरूंगा।

हालांकि कोई इसको सुनने के लिए राजी नहीं होता। हम सब यही सोचते हैं कि सदा दूसरे ही मरते हैं, मैं तो कभी मरता ही नहीं। !, जब भी कोई मरता है, और कोई मरता है, मैं तो कभी मरता नहीं। इसलिए भांति बनी रहती है कि मैं नहीं मरूंगा।

चीन का एक बहुत बड़ा कथाकार हुआ, स्लम। उसने एक छोटी—सी कहानी लिखी है। उसमें लिखा है कि एक युवक एक ज्योतिषी के पास ज्योतिष सीखता था। उसने अपने गुरु से एक दिन पूछा कि अगर मैं लोगों को सत्य—सत्य कह देता हूं उनकी हाथ की रेखाएं पढ़कर, तो पिटाई की नौबत आ जाती है। झूठ मैं कहना नहीं चाहता। झूठ कहता हूं तो लोग बड़े प्रसन्न होते हैं।

एक घर में बच्चे का जन्म हुआ। लोगों ने मुझे बुलाया। तो मैंने देखकर उनको बताया, झूठ बोला, कि महायशस्वी होगा। सभी मां—बाप को भरोसा होता है; सभी बच्चे प्रतिभाशाली की तरह पैदा होते हैं। सभी मां—बाप को भरोसा होता है कि इसका तो कोई मुकाबला नहीं।

महायशस्वी होगा, बड़ा प्रतिभाशाली है। धन्यभाग हैं तुम्हारे। वे लोग बड़े खुश हुए, उन्होंने काफी भेंट दी, शाल ओढ़ाई, भोजन कराया, सेवा की।

मगर मैं झूठ बोला था, तो उससे मेरे मन में चोट पड़ती रही। दूसरे घर में बच्चा पैदा हुआ, तो मैंने सत्य ही कह दिया कि बाकी तो और कुछ पक्का नहीं है, लेकिन यह एक दिन मरेगा, इतना भर पक्का है। तो मेरी वहां पिटाई हुई। लोगों ने मुझे मारा और कहा कि तुम ज्योतिष तो दूर, तुम्हें शिष्टाचार का भी पता नहीं!

तो उसने अपने गुरु से पूछा कि आप मुझे कुछ रास्ता बताएं। झूठ भी मुझे न बोलना पड़े और पिटाई की नौबत भी न आए। क्योंकि अब यह धंधा मैंने स्वीकार कर लिया है ज्योतिष का।

तो उसके गुरु ने कहा, अगर ऐसा अवसर आ जाए तो मैं तुम्हें अपना सार बता देता हूं जीवनभर का, जो मैं करता हूं। अगर झूठ भी न बोलना हो और पिटना भी न हो, तो तुम कहना, वाह—वाह, क्या बच्चा है! ही—ही—ही। तुम कुछ वक्तव्य मत देना, तो तुम झूठ बोलने से भी बचोगे और पिटाई भी नहीं होगी।

सभी होशियार ज्योतिषी आपको देखकर यही करते हैं।

जीवेषणा की तरफ अगर थोड़ी—सी भी ध्यान की प्रक्रिया लौटे, थोड़ा—सा आपका होश बढ़े, तो दूसरा सवाल साफ ही हो जाएगा कि यह जीवन कहीं नहीं ले जा रहा है सिवाय मौत के। यह कहीं नहीं जा रहा है सिवाय मौत के। जैसे सभी नदियां सागर में जा रही हैं, सभी जीवन मौत में जा रहे हैं।

तब दूसरा बोध स्पष्ट होना चाहिए कि जो जीवन मौत में ले जाता है, जो अनिवार्यरूपेण मौत में ले जाता है, अपरिहार्य जिसमें मृत्यु है, मृत्यु से बचने का जिसमें कोई उपाय नहीं, वह आकांक्षा के योग्य नहीं है, वह एषणा के योग्य नहीं है, वह कामना के योग्य नहीं है।

ये दो बातें अगर गहन होने लगें आपके भीतर, इनकी सघनता बढ़ने लगे, तो जीवेषणा की निर्जरा हो जाती है। और जिस दिन व्यक्ति जीने की आकांक्षा से मुक्त होता है, उसी दिन जीवन का द्वार खुलता है। क्योंकि जब तक हम जीवन की इच्छा से भरे रहते हैं, तब तक हम इस बुरी तरह उलझे रहते हैं जीवन में कि जीवन का द्वार हमारे लिए बंद ही रह जाता है, खुल नहीं पाता।

हम इतने व्यस्त होते हैं जीवित होने में, जीवित बने रहने में, कि जीवन क्या है, उससे परिचित होने का हमें न समय होता है, न सुविधा होती है। उस मंदिर के द्वार अटके ही रह जाते हैं, बंद ही रह जाते हैं।

जिन्होंने जीवेषणा छोड़ दी, उन्होंने जीवन का राज जाना। वे ही परम बुद्धत्व को प्राप्त हुए। और जिन्होंने जीवेषणा छोड़ दी, उन्होंने अमृत को पकड़ लिया, अमृत को पा लिया। जिन्होंने जीवेषणा पकड़ी, वे मौत पर पहुंचे।

इतना तो तय है कि जो जीवेषणा से चलता है, वह मृत्यु पर पहुंचता है। इससे उलटा भी सच है—लेकिन वह कभी आपका अनुभव बने तभी—कि जो जीवेषणा छोड़ता है, वह अमृत पर पहुंचता है। इसको हम निरपवाद नियम कह सकते हैं। अब तक इस जगत में जितने लोगों ने जीवेषणा की तरफ से दौड़ की, वे मृत्यु पर पहुंचते हैं। कुछ थोड़े—से लोग जीवेषणा को छोड्कर चले, वे अमृत पर पहुंचे हैं।

उपनिषद, गीता, कुरान, बाइबिल, धम्मपद, वे उन्हीं व्यक्तियों की घोषणाएं हैं जिन्होंने जीवेषणा छोड्कर अमृत को उपलब्ध किया है।

मृत्यु के पार जाना हो, तो जीवन की इच्छा को छोड़ देना जरूरी है। यह बड़ा उलटा लगेगा। जीवन बड़ा जटिल है। जीवन निश्चित ही काफी जटिल है और विरोधाभासी है, पैराडाक्सिकल है।

इसका मतलब यह हुआ कि जो जीवन को पकड़ता है, वह मृत्यु को पाता है। इसका यह अर्थ हुआ कि जो जीवन को छोड़ता है, वह महाजीवन को पाता है। यह बिलकुल विरोधाभासी लगता है, लेकिन ऐसा है। यह विरोधाभास ही जीवन का गहनतम स्वरूप है।

आप करके देखें। धन को पकड़े और आप दरिद्र रह जाएंगे। कितना ही धन हो, दखि रह जाएंगे। धन को छोड्कर देखें। और आप भिखमंगे भी हो जाएं, तो भी सम्राट आपके सामने फीके होंगे। आप शरीर को जोर से पकड़े। और शरीर से सिर्फ दुख के आप कुछ भी न पाएंगे। और शरीर से आप तादाक्य तोड़ दें, शरीर को पकड़ना छोड़ दें। और आप अचानक पाएंगे कि शरीर को पकड़ने की वजह से आप सीमा में बंधे थे, अब असीम हो गए।

यहां जो छीनने चलता है, उसका छिन जाता है। यहां जो देने चल पड़ता है, उससे छीनने का कोई उपाय नहीं। यह जो विरोधाभास है, यह जो जीवन का पैराडाक्स है, यह जो पहेली है, इसको हल करने की व्यवस्था ही साधना है।

दो काम करें। जीवन ने क्या दिया है, इसकी परख रखें। क्या मिला है जीवन से, क्या मिल सकता है, इसका हिसाब रखें। पाएंगे कि सब हाथ खाली हैं। आशा भी टूट जाएगी कि कल भी कुछ मिल सकता है। क्योंकि जो अतीत में नहीं हुआ, वह भविष्य में भी नहीं होगा। जो कभी नहीं हुआ, वह आगे भी कभी नहीं होगा। और फिर देखें कि सब जीवन

मृत्यु के सागर में उंडलते चले जाते हैं। कोई आज, कोई कल। हम सब क्यू में खड़े हैं। आज नहीं कल, बारी आ जाती है और मृत्यु में उतर जाते हैं।

तो यह सारा जीवन मृत्यु में पूरा होता है, निश्चित ही यह मृत्यु का ही छिपा हुआ रूप है। क्योंकि अंत में वही प्रकट होता है, जो प्रथम से ही छिपा रहा हो। तो जिसे हम जीवन कहते हैं, वह मौत है। और जीवेषणा को छोड़ेंगे, तो ही यह मौत छूटेगी। तब हमें उस जीवन का अनुभव होना शुरू होगा, जिसका मिटना कभी भी नहीं होता है।

उस जीवन को ही परमात्मा कहें, उस जीवन को मोक्ष कहें, उस जीवन को आत्मा कहें, उस जीवन को जो भी नाम देना हो, वह हम दे सकते हैं।

अब हम सूत्र को लें।
और हे अर्जुन, काम, क्रोध तथा लोभ, ये तीन प्रकार के नरक के द्वार आत्मा का नाश करने वाले हैं अर्थात अधोगति में ले जाने वाले हैं, इससे इन तीनों को त्याग देना चाहिए।

क्योंकि हे अर्जुन, इन तीनों नरक के द्वारों से मुक्त हुआ पुरुष अपने कल्याण का आचरण करता है, इससे वह परम गति को जाता है अर्थात मेरे को प्राप्त होता है।

और जो पुरुष शास्त्र की विधि को त्यागकर अपनी इच्छा से बर्तता है, वह न तो सिद्धि को प्राप्त होता है और न परम गति को तथा न सुख को ही प्राप्त होता है।

इससे तेरे लिए इस कर्तव्य और अकर्तव्य की व्यवस्था में शास्त्र ही प्रमाण है, ऐसा जानकर तू शास्त्र—विधि से नियत किए हुए कर्म को ही करने के लिए योग्य है।

एक—एक शब्द को समझने की कोशिश करें। तीन शब्दों को कृष्ण नरक का द्वार कह रहे हैं : काम, क्रोध और लोभ। जिसको मैंने जीवेषणा कहा, वह इन तीन हिस्सों में टूट जाती है।

जीवेषणा का मूल भाव काम है, यौन है, कामवासना है। वैज्ञानिक, जीवशास्त्री कहते हैं कि आदमी में दो वासनाएं प्रबलतम हैं, एक भूख और दूसरा यौन।

भूख इसलिए प्रबलतम है कि अगर भूख का होश आपको न हो, तो आप मर जाएंगे, जी न सकेंगे। एक बच्चा पैदा हो और उसे भूख का पता न चलता हो, तो वह जी नहीं सकेगा। भूख उसके शरीर को बचाने के लिए एकदम जरूरी है। भूख इस बात की खबर है कि शरीर आपसे कहता है, अब मैं बच नहीं सकूंगा, शीघ्र मुझे कुछ दो, मेरी शक्ति खोती है।

तो भूख बचाती है स्वयं के शरीर को। लेकिन अगर भूख ही अकेली हो, तो भी आप कभी के खो गए होते, आप पैदा ही न होते। क्योंकि भूख आपको बचा लेगी, लेकिन आपके बच्चों को नहीं बचा सकेगी। और बच्चों को पैदा करने का कोई भाव नहीं पैदा होगा। भूख में वह कोई शक्ति नहीं है। इसलिए एक दूसरी भूख है, वह है यौन।

पेट की भूख से आप बचते हैं, यौन की भूख से समाज बचता है। ये दो भूखे हैं। और जैसे ही व्यक्ति का पेट भर जाता है, दूसरा जो खयाल आता है, वह सेक्स का है। भूखे आदमी को खयाल चाहे न आए। क्योंकि भूखा आदमी पहले अपने को बचाए, तब समाज को बचाने का सवाल उठता है, तब संतति को बचाने को सवाल उठता है। खुद ही न बचे, तो संतति कैसे बचेगी?

इसलिए धार्मिक लोगों ने सोचा कि उपवास करने से कामवासना से मुक्ति हो जाएगी। वह तरकीब सीधी है, बायोलाजिकल है। क्योंकि जब आदमी भूखा हो, तो वह खुद को बचाने की सोचेगा। भूखे आदमी को कामवासना पैदा नहीं होती। इसलिए अगर आप लंबा उपवास करें, तो कामवासना मर जाती है।

मरती नहीं, सिर्फ छिप जाती है। जब फिर पेट भरेगा, तब फिर कामवासना वापस आ जाएगी। इसलिए वह तरकीब धोखे की है, उससे कुछ हल नहीं होता। जैसे ही समाज समृद्ध होता है, वैसे ही कामवासना तीव्र हो जाती है।

लोग सोचते हैं, अमेरिका में बहुत सेक्यूअलिटी है। ऐसा कुछ भी नहीं है। अमेरिका का पेट भरा है, आपका पेट खाली है। जहां भी पेट भर जाएगा, वहां भूख का तो सवाल खत्म हो गया। इसलिए पूरे जीवन की ऊर्जा सिर्फ सेक्स में दौड़ने लगती है। आपकी दो में दौड़ती है, भूख में और सेक्स में। फिर अगर पेट बिलकुल ही भूखा हो, तो सेक्स में दौड़ना बंद हो जाती है, फिर भूख में ही दौड़ती है, क्योंकि भूख पहली जरूरत है। आप बचें, तो फिर आपके बच्चे बच सकते हैं। जैसे ही पेट भरा कि जो दूसरा खयाल उठता है, वह कामवासना का है।

जीवेषणा दो पहलुओं से चलती है, व्यक्ति बचे और संतति बचे। इसलिए कामवासना बहुत गहरे में पड़ी है। और उससे छुटकारा इतना आसान नहीं, जितना साधु—संत समझते हैं। उससे छुटकारा बड़ी आंतरिक वैज्ञानिक प्रक्रिया के द्वारा होता है, बच्चों का खेल नहीं है। नियम और व्रत लेने से कुछ हल नहीं होता, कसमें खाने से कोई फर्क नहीं पड़ता। जब तक कि जीवन का रोआं—रोआं रूपांतरित न हो जाए, जब तक बोध इतना प्रगाढ़ न हो कि आप शरीर से अपने को बिलकुल अलग देखने में समर्थ न हो जाएं, तब तक कामवासना पकड़ती ही रहती है।

यह जो कामवासना है, अगर आप इसके साथ चलें, इसके पीछे दौड़े, तो जो एक नई वृत्ति पैदा होती है, उसका नाम लोभ है। लोभ कामवासना के फैलाव का नाम है। एक स्त्री से हल नहीं होता, हजार स्त्रिया चाहिए! तो भी हल नहीं होगा।

सार्त्र ने अपने एक उपन्यास में उसके एक पात्र से कहलवाया है कि जब तक इस जमीन की सारी स्त्रियां मुझे न मिल जाएं, तब तक मेरी कोई तृप्ति नहीं।

आप भोग न सकेंगे सारी स्त्रियों को, वह सवाल नहीं है; लेकिन मन की कामना इतनी विक्षिप्त है।

जब तक सारे जगत का धन न मिल जाए, तब तक तृप्ति नहीं है। धन की भी खोज आदमी इसीलिए करता है। क्योंकि धन से कामवासना खरीदी जा सकती है; धन से सुविधाएं खरीदी जा सकती हैं, सुविधाएं कामवासना में सहयोगी हो जाती हैं।

लोभ कामवासना का फैलाव है। इसलिए लोभी व्यक्ति कामवासना से कभी मुक्त नहीं होता। यह भी हो सकता है कि वह लोभ में इतना पड़ गया हो कि कामवासना तक का त्याग कर दे। एक आदमी धन के पीछे पड़ा हो, तो हो सकता है कि वर्षों तक स्त्रियों की उसे याद भी न आए। लेकिन गहरे में वह धन इसीलिए खोज रहा है कि जब धन उसके पास होगा, तब स्त्रियों को तो आवाज देकर बुलाया जा सकता है। उसमें कुछ अड़चन नहीं।

यह भी हो सकता है कि जीवनभर उसको ख्याल ही न आए वह धन की दौड़ में लगा रहे। लेकिन धन की दौड़ में गहरे में कामवासना है।

सब लोभ काम का विस्तार है। इस काम के विस्तार में, इस लोभ में जो भी बाधा देता है, उस पर क्रोध आता है। कामवासना है फैलता लोभ, और जब उसमें कोई रुकावट डालता है, तो क्रोध आता है।

काम, लोभ, क्रोध एक ही नदी की धाराएं हैं। जब भी आप जो चाहते हैं, उसमें कोई रुकावट डाल देता है, तभी आप में आग जल उठती है, आप क्रोधित हो जाते हैं। जो भी सहयोग देता है, उस पर आपको बड़ा स्नेह आता है, बड़ा प्रेम आता है। जो भी बाधा डालता है, उस पर क्रोध आता है। मित्र आप उनको कहते हैं, जो आपकी वासनाओं में सहयोगी हैं। शत्रु आप उनको कहते हैं, जो आपकी वासनाओं में बाधा हैं।

लोभ और क्रोध से तभी छुटकारा होगा, जब काम से छुटकारा हो। और जो व्यक्ति सोचता हो कि हम लोभ और क्रोध छोड़ दें काम को बिना छोड़े, वह जीवन के गणित से अपरिचित है। यह कभी भी होने वाला नहीं है।

इसलिए समस्त धर्मों की खोज का एक जो मौलिक बिंदु है, वह यह है कि कैसे अकाम पैदा हो। उस अकाम को हमने ब्रह्मचर्य कहा है। ब्रह्मचर्य का अर्थ है, कैसे मेरे जीवन के भीतर वह जो दौड़ है एक विक्षिप्त और जीवन को पैदा करने की, उससे कैसे छुटकारा हो। कृष्ण कहते हैं, ये तीन नरक के द्वार हैं।

हमें तो ये तीन ही जीवन मालूम पड़ते हैं। तो जिसे हम जीवन कहते हैं, कृष्ण उसे नरक का द्वार कह रहे हैं।

आप इन तीन को हटा दें, आपको लगेगा फिर जीवन में कुछ बचता ही नहीं। काम हटा दें, तो जड़ कट गई। लोभ हटा दें, फिर क्या करने को बचा! महत्वाकांक्षा कट गई। क्रोध हटा दें, फिर कुछ खटपट करने का उपाय भी नहीं बचा। तो जीवन का सब उपक्रम शून्य हुआ, सब व्यवहार बंद हुए।

अगर लोभ नहीं है, तो मित्र नहीं बनाएंगे आप। अगर क्रोध नहीं है, तो शत्रु नहीं बनाएंगे। तो न अपने बचे, न पराए बचे, आप अकेले रह गए। आप अचानक पाएंगे, ऐसा जीवन तो बहुत घबड़ाने वाला हो जाएगा। वह तो नारकीय होगा। और कृष्ण कहते हैं कि ये तीन नरक के द्वार हैं! और हम इन तीनों को जीवन समझे हुए हैं।

हमें खयाल भी नहीं आता कि हम चौबीस घंटे काम से भरे हुए हैं। उठते—बैठते, सोते—चलते, सब तरफ हमारी नजर का जो फैलाव है, वह कामवासना का है।

अगर अभी एक हवाई जहाज गिर पड़े, आप उसके टूटे अस्थिपंजर के पास जाएं। उसमें जो यात्री मरे हुए पड़े होंगे, उन मरे हुए यात्रियों में भी आपको सबसे पहले जो चीज दिखाई पड़ेगी, वह यह कि कौन स्त्री है, कौन पुरुष।

आप सब चीजें भूल जाते हैं। दस साल पहले कोई आपको मिला था। नाम भूल गया, शक्ल भूल गई, कुछ भी याद नहीं रहा। लेकिन यह आप कभी नहीं भूलते कि वह स्त्री थी कि पुरुष—यह कभी नहीं भूलते। आपको याद है कि आपको कभी ऐसा शक पैदा हुआ हो कि बीस साल पहले एक आदमी, एक व्यक्ति मिला था, वह स्त्री थी या पुरुष? यह शक आपको हो ही नहीं सकता। इसका मतलब क्या है?

इसका मतलब यह है कि आपके ऊपर गहरे से गहरा जो संस्कार पड़ता है, वह स्त्री और पुरुष होने का पड़ता है। उसका चेहरा कैसा था; भूल गया। उसका नाम क्या था, भूल गया। उसकी जाति क्या थी; भूल गई। वह लंबा था कि ठिगना था, सब भूल गया। लेकिन उसका सेक्स, वह आपको याद है। इसका मतलब यह है कि सबसे गहरी आपकी स्मृति इस बात को पकड़ती है। सबसे ज्यादा चेतना इसके आस—पास घूमती है।

यह जो हमारा काम है, यह कोई क्षण दो क्षण की बात नहीं कि कभी—कभी आपको पकड़ता है। यह चौबीस घंटे आपको घेरे हुए है, ऐसा कहना भी ठीक नहीं है। शायद चौबीस घंटे आप काम हैं। फिर इसमें जहां—जहां सहयोग मिलता है, वहां—वहा लोभ पैदा होता है। वह इस काम की धारा में ही लोभ का वर्तुल है।

जैसे नदी बहती है, और उसमें छोटे—छोटे भंवर पैदा हो जाते हैं। तो आपकी काम की जो नदी बहती है, जिस—जिस से सहारा मिलता है, वह आपके लोभ का भंवर हो जाता है। और जिस—जिस से बाधा मिलती है, वह आपके क्रोध का भंवर हो जाता है। फिर उन दोनों की परतें हमारे ऊपर बैठ जाती हैं।

उठते—बैठते, चलते—फिरते, आप खयाल लेते हों, न लेते हों, व्यवहार करते, आपका लोभ और क्रोध काम करता है। आप रास्ते पर चलते आदमी से नमस्कार भी तभी करते हैं, जब कुछ लोभ उससे जुड़ा हो। कोई लोभ—अतीत में, आज या भविष्य में—कहीं न कहीं उससे कुछ लाभ मिल सकता होगा, तो ही आप नमस्कार करते हैं। नहीं तो आप नमस्कार करने वाले भी नहीं। हाथ जोड्ने तक का श्रम आप उठाएंगे नहीं।

और आपकी नजर जहां भी जाती है, वहां तत्क्षण मित्र और शत्रु को पहचानती है। जिससे भी थोड़ी—सी भी विरोध की संभावना है, या थोड़ी—सी भी बाधा पड़ सकती, थोड़ी प्रतियोगिता हो सकती है, उसके प्रति आपका क्रोध जलता ही रहता है। भभक सकता है, किसी भी क्षण मौका मिल जाए तो।

यह जो हमारा क्रोध, लोभ और मोह है, इन्हें आप सिद्धातों की तरह तो समझ ले सकते हैं, लेकिन जीवन व्यवहार में इनके स्वरूप को पहचानना असली सवाल है। और हम उसमें इतने लिप्त होते हैं कि उसे अपने जीवन में पहचानना अक्सर कठिन होता है।

मैंने सुना है कि एक कंजूस आदमी ने अपने बेटे को चश्मा दिलवाया। दूसरे दिन सुबह ही बेटा बाहर बैठा है अपनी किताबें वगैरह लिए। उसके बाप ने भीतर के कमरे से पूछा कि बेटे, क्या कुछ पढ़ रहे हो? उस लड़के ने कहा कि नहीं। तो बाप ने पूछा, तो क्या कुछ लिख रहे हो? उसके लड़के ने कहा, नहीं। तो बाप ने कहा, तो फिर चश्मा उतारकर क्यों नहीं रख देते! लगता है, तुम्हें फिजूलखर्ची की आदत पड़ गई है।

वह जो चश्मा आंख पर रखा है, जब लिख भी नहीं रहे, पढ़ भी नहीं रहे, तो उसका फिजूलखर्च हो रहा है, चश्मे का।

यह हमें हंसने योग्य लग सकता है। लेकिन लोभी आदमी की यह दृष्टि है। वह सब जगह बचा रहा है। और कई दफे ऐसा हो जाता है कि हम लोभ के नाम पर जो बचाते हैं, उसको भी हम अच्छे सिद्धात बता देते हैं।

फ्रायड ने एक बहुत अनूठी बात कही है, उसने कहा है कि आमतौर से जो लोग ब्रह्मचर्य में उत्सुक होते हैं, वे लोभी होते हैं, ग्रीडी होते हैं। वीर्य खो न जाए, इसकी कंजूसी उनको ब्रह्मचारी बना देती है।

यह बड़ी सोचने जैसी बात है। और इधर जैसा मैंने अनेक लोगों को अनुभव किया है, अक्सर यह बात सच है। सौ प्रतिशत सच नहीं है, क्योंकि ब्रह्मचर्य की दिशा में जाने वाला एक प्रतिशत वह आदमी भी होता है, जो कामवासना से मुक्त होकर ब्रह्मचर्य की तरफ जाता है। सौ में निन्यानबे तो वे लोग होते हैं, जो सिर्फ लोभ के कारण ब्रह्मचर्य की तरफ जाते हैं कि कहीं शक्ति खर्च न हो जाए।

आपने शायद इस दिशा से कभी सोचा न हो। और अक्सर आपके साधु—संन्यासी जो आपको समझाते हैं, वे समझाते हैं कि बचाओ अपनी शक्ति को। वीर्य का एक बिंदु खोने का मतलब है, न मालूम कितना सेर खून खो गया। वीर्य का एक बिंदु खो गया, तो न मालूम कितना नुकसान हो गया। वे जो समझा रहे हैं आपको, आपको डरवा रहे हैं; वे आपके लोभ को जगा रहे हैं, वे यह कह रहे हैं कि शक्ति खो न जाए।

इसलिए अक्सर जो मुल्क कंजूस होते हैं, वे ब्रह्मचर्य की बहुत चर्चा करते हैं। और जो जातियां निपट कंजूस होती हैं, वे ब्रह्मचर्य को बड़े जोर से पकड़ लेती हैं।

ये जो ब्रह्मचर्य की इस तरह की बात करने वाले निन्यानबे प्रतिशत लोग हैं, इनमें से अधिक लोग कब्जियत के शिकार होंगे। क्योंकि जैसा वे वीर्य को बचाना चाहते हैं, ऐसा वे सब चीजों को बचाना चाहते हैं। वे मल तक को इकट्ठा करना सीख जाते हैं।

अभी आधुनिक विज्ञान बड़ी महत्वपूर्ण बातें कहता है। वह कहता है, जो व्यक्ति भी कब्जियत का शिकार है, वह यह बता रहा है कि वह मल को भी छोड़ने को राजी नहीं है। उसकी चित्त की दशा सब चीजों को पकड़ लेने की है।

मनोवैज्ञानिक कई अनूठे नतीजों पर पहुंचे हैं, जो धर्म को और धर्म की खोज में जाने वाले लोगों को ठीक से समझ लेना चाहिए। मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि सब चीजें प्रतीकात्मक हैं। और एक बड़ी अनूठी बात है, जो एकदम से समझ में नहीं आती, लेकिन सही हो सकती है। वे कहते हैं, मल का जो रंग है, पीला रंग, वही सोने का रंग है। और सोने को जो लोग पकड़ते हैं, वे लोग कब्जियत के शिकार हो जाते हैं। वे मल को भी नहीं छोड़ सकते। और धन हाथ का मल ही है, वह मैल ही है, उससे ज्यादा है भी नहीं। लेकिन हर चीज को पकड़ लेना है, रोक लेना, कुछ भी छोड़ते नहीं बनता उनसे। जीवन उनका महारोग हो जाता है।

काम विक्षिप्तता लाता है। लोभ उस विक्षिप्तता को बढ़ाने के लिए दूसरों का सहारा मलता है, फैलाव मांगता है। क्रोध उस विक्षिप्तता में कोई भी बाधा डाले, उसको नष्ट करने को तैयार हो जाता है।

ये तीनों नरक के द्वार हैं। और हम जीवन में जितने दुख खड़े करते हैं, वह इनके द्वारा ही खड़े करते हैं। नरक कहीं कोई स्थान नहीं है, जहां द्वारों पर लिखा है कि काम, क्रोध, लोभ, कि यहां से भीतर मत जाइए। जहां—जहां ये तीन हैं, वहां—वहां नरक है, वहा—वहां जीवन दुख और संताप से भर जाता है। वहां—वहा जीवन की प्रफुल्लता कुम्हला जाती है, जीवन के फूल वहां नहीं लगते।

आपने कभी कंजूस आदमी को प्रसन्न देखा है? कंजूस प्रसन्न हो ही नहीं सकता। प्रसन्नता में भी उसे लगेगा, कुछ खर्च हो रहा है, कुछ नुकसान हुआ जा रहा है। वह प्रसन्नता तक को रोके रखता है। वह हृदयपूर्वक हंस नहीं सकता; वह कठिन है, मुश्किल है; वह उसके व्यक्तित्व का ढंग नहीं है। वह किसी चीज में शेयर नहीं कर सकता, भागीदार नहीं बना सकता।

इसलिए कंजूस कभी प्रेम नहीं कर सकता, किसी को प्रेम नहीं कर सकता। क्योंकि प्रेम में उसे डर लगता है कि जिससे प्रेम किया 1 उसको कुछ बांटना पड़ेगा, कुछ साझेदारी करनी पड़ेगी।

कंजूस किसी चीज में बंटाव नहीं कर सकता। कंजूस अकेला जीता है, आइसोलेटेड। अपने में बंद हो जाता है, और उसके चारों तरह कारागृह खड़ा हो जाता है। और अपने चारों तरफ कारागृह खड़ा हो जाए; हम किसी चीज में साझेदारी न कर सकें, मुस्कुरा भी न सकें, बांट भी न सकें......।

जीवन के सब आनंद बंटने से जुड़े हुए हैं। जो आदमी जितना बांट सकता है, जो जितना अपने को फैला सकता है, जो जितना अपने को दूसरों को दे सकता है, उतना ही प्रफुल्लित होता है, उतना ही आनंदित होता है।

अगर परमात्मा परम आनंद है, तो उसका इतना ही अर्थ है कि परमात्मा ने अपने को पूरा का पूरा इस जगत को दे दिया है, इस पूरे अस्तित्व को अपने को दे दिया है। वह सब तरफ फैल गया है। उसे आप कहीं भी खोज नहीं सकते। आप अंगुली करके इशारा नहीं कर सकते कि यह रहा परमात्मा। क्योंकि वह एक जगह होता, तो कंजूस होता, कृपण होता, बंधा होता। वह सब जगह है।

इसलिए आप जहां भी कहें, वहां वह है। और जहां भी आप इशारा करें, वहीं आप पाएंगे कि मुश्किल है, वह सब जगह है। उसने अपने को सब तरह फैला दिया है। वह पूरा बंट गया है कि अब उसके पास कुछ भी नहीं बचा है, अपने जैसा कुछ भी नहीं बचा है, इसलिए परम आनंद है, इसलिए सच्चिदानंद है।

मैंने सुना है कि नानक एक गांव में ठहरे। गांव बड़े भले लोगों का था, बड़े साधुओं का था, बड़े संत—सज्जन पुरुष थे। नानक के शब्द—शब्द को उन्होंने सुना, चरणों का पानी धोकर पीया। नानक को परमात्मा की तरह पूजा। और जब नानक उस गांव से विदा होने लगे, तो वे सब मीलों तक रोते हुए उनके पीछे आए और उन्होंने कहा, हमें कुछ आशीर्वाद दें। तो नानक ने कहा, एक ही मेरा आशीर्वाद है कि तुम उजड़ जाओ।

सदमा लगा। नानक के शिष्य तो बहुत हैरान हुए, कि यह क्या बात कही! इतना भला गांव। लेकिन अब बात हो गई और एकदम पूछना भी ठीक न लगा। सोचेंगे, विचार करेंगे, फिर पूछ लेंगे। फिर दूसरे गांव में पड़ाव हुआ। वह दुष्टों का गांव था। सब उपद्रवी जमीन के वहा इकट्ठे थे। उन्होंने न केवल अपमान किया, तिरस्कार किया, पत्थर फेंके, गालियां दीं, मार—पीट की नौबत खड़ी हो गई; रात रुकने भी न दिया।

जब गांव से नानक चलने लगे, तो वे तो आशीर्वाद मांगने वाले थे ही नहीं। शोरगुल मचाते, गालियां बकते नानक के पीछे गांव के बाहर तक आए थे। गांव के बाहर आकर नानक ने अपनी तरफ से आशीर्वाद दिया कि सदा यहीं आबाद रहो।

तब शिष्यों को मुश्किल हो गया। उन्होंने कहा कि अब तो पूछना ही पड़ेगा। यह तो हद हो गई। कुछ भूल हो गई आपसे। पिछले गांव में भले लोग थे, उनसे कहा, बरबाद हो जाओ! उजड़ जाओ! और इन गुंडे—बदमाशों को कहा कि सदा आबाद रहो, खुश रहो, सदा बसे रहो!

नानक ने कहा कि भला आदमी उजड़ जाए, तो बंट जाता है। वह जहां भी जाएगा, भलेपन को ले जाएगा। वह फैल जाए सारी दुनिया पर। और ये बुरे आदमी, ये इसी गांव में रहें, कहीं न जाएं। क्योंकि ये जहां जाएंगे, बुराई ले जाएंगे।

लेकिन बंटना बुरे आदमी का स्वभाव ही नहीं होता, अच्छा है यह। वह सिकुड़ता है, यह बड़ी कृपा है। भला आदमी बटता है। बांटना उसका स्वभाव है। दान उसके जीवन की व्यवस्था है। यह सवाल नहीं कि वह कुछ देता है कि नहीं देता है; यह उसके रहने—होने का ढंग है कि वह साझेदारी करता है, वह शेयर करता है। ये जो तीन हैं, काम, क्रोध, लोभ, ये सिकोड़ देते हैं। और सिकुड़ा हुआ आदमी नरक बन जाता है।

ये अधोगति में ले जाने वाले हैं, इन तीनों को त्याग देना चाहिए। क्योंकि हे अर्जुन, इन तीनों नरक के द्वारों से मुक्त हुआ पुरुष अपने कल्याण का आचरण करता है, इससे वह परम गति को जाता है अर्थात मुझको प्राप्त होता है।

इन तीन से जो मुक्त हुआ पुरुष है, वही केवल कल्याण का आचरण करता है। कल्याण का अर्थ है, जिससे हित हो, मंगल हो; जिससे आनंद बढ़े, फैले।

लेकिन जो आदमी कामवासना से भरा है, लोभ और क्रोध से भरा है, उसका आचरण कल्याण का नहीं हो सकता। उसका आचरण अहंकार—केंद्रित होगा। वह अपने लिए सबको मिटाने की कोशिश करेगा। वह चारों तरफ विध्वंस फैलाएगा। उसकी आकांक्षा यही है किं सब मिट जाएं, मैं अकेला रहूं। क्योंकि जब तक दूसरा है, तब तक मैं चाहे बांटू या न बांटू वह इस जगत की संपत्ति में से बंटाव तो कर ही रहा है। जब तक दूसरा है, कम से कम श्वास तो ले ही रहा है। तो इतनी आक्सीजन जिस पर मैं कब्जा कर सकता था, वह कब्जा कर रहा है। तब तक सूरज की रोशनी तो पी ही रहा है, सूरज पूरा का पूरा मेरा हो सकता था, उसमें वह बंटाव कर रहा है। तब तक आकाश में पूर्णिमा का चांद निकलता है, तो वह भी प्रसन्न होता है। उतनी मेरी प्रसन्नता खो रही है।

वह जो आदमी काम, क्रोध, लोभ से भरा हुआ है, उसका मौलिक आधार जीवन का यह है कि मैं अकेला रहूं और सब मिट जाएं। वह नहीं मिटा पाता, यह दूसरी बात है। कोशिश पूरी कर रहा है। हजारों दफे उसने प्रयोग किए हैं कि वह सबको पोंछकर समाप्त कर दे, अकेला रहे। कल्याण तो उससे हो ही नहीं सकता।

कल्याण तो उसी व्यक्ति से हो सकता है, सब रहें, चाहे मैं मिट जाऊं। मैं चाहे खो जाऊं, चाहे मेरी कोई जगह न रह जाए, लेकिन शेष सब रहे। फूल और जोर से खिले, चांद और जोर से निकले, लोग और आनंदित हों, जीवन की बांसुरी बजती रहे, मेरे होने न होने से कोई फर्क नहीं पड़ता है। अगर मैं बाधा बनता हूं तो हट जाऊं। अगर सहयोग बन सकता हूं तो ही रहूं।

लेकिन ये तीन द्वार जब बंद हो जाएं, तभी कल्याण का जीवन शुरू होता है।

यह जो शब्द कल्याण है, मंगल है, यह बड़ा समझने जैसा है। इसका अर्थ दूसरे का सुख है। और दूसरे के सुख को अगर आप सोचना भी शुरू कर दें.....।

हम तो कंसीडर भी नहीं करते। दूसरा है, यह भी विचार नहीं करते। दूसरे के जीवन में भी सुख की कोई संभावना हो सकती है, दूसरे को भी सुख मिलना चाहिए, यह तो हमारे मन में कभी कौंधता ही नहीं।

महावीर ने कहा है, जैसे तुम जीना चाहते हो, वैसे ही सभी जीना चाहते हैं। जैसे तुम सुख पाना चाहते हो, वैसे सभी सुख पाना चाहते हैं। तो जो तुम अपने लिए चाहते हो, वह सबके लिए चाहो। जीसस ने कहा है, जो तू न चाहता हो कि लोग तेरे प्रति करें, वह तू कभी भूलकर भी दूसरे के प्रति मत करना। यह कल्याण का सूत्र हुआ। और जो तू चाहता हो कि लोग तेरे प्रति करें, वही तू उनके प्रति करना। क्योंकि जो तेरे भीतर जीवन की छिपी चाह है, वही दूसरों के भीतर भी जीवन की छिपी चाह है। और तेरे भीतर जो जीवन है और दूसरे के भीतर जो जीवन है, वह एक ही का विस्तार है।

कल्याण का अर्थ है कि मेरे भीतर और आपके भीतर जो है, वह एक ही चेतना का फैलाव है। और अगर मैं आपका सुख चाहता हूं तो वस्तुत: यही मैं अपने सुख का आधार रख रहा हूं। और अगर मैं आपका दुख चाहता हूं तो मैं अपने ही हाथ—पैर तोड़ रहा हूं, क्योंकि आप मेरे ही फैले हुए रूप हैं। अगर आपको मैं दुखी करता हूं तो मैं अपने ही दुख का इंतजाम कर रहा हूं। देर—अबेर यह दुख मुझे पकड़ लेगा। आपको सुख दे रहा हूं तो देर—अबेर यह सुख मेरे पास आ जाएगा।

एक बार जिस आदमी को यह समझ में आ गया कि इस जगत में अलग—अलग कटे —कटे लोग नहीं हैं; हम अलग—अलग आयलैंड नहीं हैं, द्वीप नहीं हैं, हम एक महाद्वीप हैं। और अगर हमारे बीच में फासला दिख रहा है, तो वह फासला भी बीच में आ गए पानी की दीवार का है। नीचे हम जुड़े हैं, नीचे जमीन एक है। और उस पानी की दीवार का कोई बहुत मूल्य नहीं है। पानी की भी कोई दीवार होती है?

यह जो मेरे और आपके बीच में दीवार है, यह पानी की भी नहीं, हवा की ही दीवार है। इस दीवार के दोनों तरफ जिस हवा से आप श्वास ले रहे हैं, उसी हवा से मैं श्वास ले रहा हूं हम दोनों जुड़े हैं। हम सब जुड़े हैं। इस संयुक्तता का बोध आ जाए, तो जीवन में कल्याण का भाव आता है।

और जो काम, क्रोध, लोभ से भरा है, उसे यह संयुक्तता का भाव नहीं आ सकता। उसके लिए सब दुश्मन हैं, सब प्रतियोगी हैं। जो चीजें वह छीनना चाह रहा है, वही दूसरे छीनना चाह रहे हैं। इसलिए दूसरों का सुख वह कैसे चाह सकता है! दूसरों के लिए आशीर्वाद उससे नहीं बह सकता। अभिशाप ही दूसरों के लिए उसके पास है।

और जो पुरुष शास्त्र की विधि को त्यागकर अपनी इच्छा से बर्तता है, वह न तो सिद्धि को प्राप्त होता है और न परम गति को और न सुख को ही प्राप्त होता है।

इस बात को समझना बड़ा जरूरी है और गहरा है।

जो व्यक्ति शास्त्र की विधि को त्यागकर.....।

शास्त्र की विधि क्या है न: शास्त्र क्या है? इसे समझें।

शास्त्र का अर्थ है, सदियों—सदियों में, सनातन से जिन्होंने जाना है, उनका सार निचोड़। जिन्होंने जीवन के आनंद को अनुभव किया है, जीवन के वरदान की वर्षा जिन पर हुई है, उन्होंने जो कहा है, उसका जोड़।

आज कठिन हो गई है यह बात। ऐसी कठिन उस दिन बात न थी, जब कृष्ण ने यह कहा था। उस दिन हर कोई शास्त्र नहीं लिखता था। कोई सोच ही नहीं सकता था कि बिना जाने मैं लिखूं। वह सोचने के बाहर था। क्योंकि बिना जाने लिखने में कोई अर्थ

भी नहीं था। शास्त्रों पर किसी के नाम भी नहीं थे। वह कोई व्यक्तियों की संपदा भी नहीं थी। अनंत— अनंत काल में, अनंत—अनंत लोगों ने जो जाना है, उस जानने को लोग निखारते गए। शास्त्र संपदा थी सबके अनुभव की।

वेद हैं, वे किसी एक व्यक्ति के वचन नहीं हैं। अनंत—अनंत ऋषियों ने जो जाना है, वह सब संगृहीत है। उपनिषद हैं, वे किसी एक व्यक्ति के लिखे हुए विचार नहीं हैं। वह अनंत— अनंत लोगों ने जाना है, उनका सारभूत है। कुछ पक्का पता लगाना भी मुश्किल है कि किसने जाना है। व्यक्ति खो गए हैं, सिर्फ सत्य रह गए हैं। कृष्ण ने जब यह बात कही, तब शास्त्र का अर्थ था, जाने हुए लोगों के वचन। इन वचनों को त्यागकर जो अपनी इच्छा से बर्तता है, वह सिद्धि को प्राप्त नहीं होता। क्योंकि एक व्यक्ति का अनुभव ही कितना है! एक व्यक्ति की छोटी—सी बुद्धि कितनी है! वह ऐसे ही है, जैसे सूरज निकला हो, और हम अपना टिमटिमाता दीया लेकर रास्ता खोज रहे हैं।

एक व्यक्ति का अनुभव बहुत छोटा है। एक व्यक्ति का होश बहुत छोटा है। अपने ही अनुभव से जो चलने की कोशिश करेगा, वह अनंत काल लगा देगा भटकने में। लेकिन जाने हुए पुरुषों का, जागे हुए पुरुषों का जो वचन है, उसका सहारा लेकर जो चलेगा, वह व्यर्थ के भटकाव से बच जाएगा।

रास्ता छोटा हो सकता है, अगर थोड़ा—सा नक्यग़ भी हमारे पास हो। शास्त्रों का अर्थ है, नक्यो। शास्त्रों को सिर पर रखकर बैठ जाने से कोई मंजिल पर नहीं पहुंचता। लेकिन वे नक्यो हैं, उन नक्यगें का अगर ठीक से उपयोग करना समझ में आ जाए, तो आप बहुत—सी भटकन से बच सकते हैं। जहां जो भूल—चूक जिन लोगों ने पहले की, उसको आपको करने की जरूरत नहीं है।

शास्त्र कोई बंधे—बंधाए उत्तर नहीं हैं; शास्त्र तो केवल मार्ग को खोजने के इशारे हैं। और उन इशारों को जो ठीक से समझ लेता है और उनके अनुसार चलता है, वह सिद्धि को प्राप्त हो जाता है। और जो उनको त्याग देता है, वह न तो सिद्धि को प्राप्त होता है, न परम गति को, औयन सुख को ही प्राप्त होता है। वह भटकता है।

यह आज के युग में बात और कठिन हो गई, क्योंकि आज शास्त्र बहुत हैं। कोई पांच हजार शास्त्र प्रति सप्ताह लिखे जाते हैं। पुस्तकें बढ़ती चली जाती हैं। और कुछ पक्का पता लगाना मुश्किल है, कौन लिख रहा है, कौन नहीं लिख रहा है। पागल भी लिख रहे हैं। उनको राहत मिलती है, केथार्सिस हो जाती है। उनका पागलपन निकल जाता है, किताब में रेचन हो जाता है। फिर उन पागलों की लिखी किताबों को दूसरे पागल पढ़ रहे हैं। उनका तो रेचन हो जाता है, इनकी खोपड़ी भारी हो जाती है। अब तय करना मुश्किल है। क्योंकि बहुत—से सूत्र खो गए।

पहला सूत्र तो यह खो गया कि बिना जागे कोई व्यक्ति न लिखे; बिना जागे कोई व्यक्ति न बोले, बिना जाग्रत हुए कोई किसी दूसरे को सलाह न दे। यह पुराने समय में सोचना ही असंभव था कि कोई बिना जागे हुए किसी को सलाह दे देगा।

लेकिन आज कठिन है। आज तो सोए आप कितने ही हों, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता, आप सलाह दे सकते हैं। सोया हुआ आदमी और भी उत्सुकता से सलाह देता है। वह चाहे अपने सपने में बड़बड़ा रहा हो, लेकिन उसको अनुयायी मिल जाते हैं। लोग उसके पीछे चलने लगते हैं। जितने जोर से कोई चिल्ला सकता हो, उतना ज्यादा पीछे अनुसरण करने वाले मिल जाते हैं।

आज कठिन है। लेकिन आज भी व्यक्ति अपनी ही खोजबीन से चले, तो बहुत समय व्यय होगा, बहुत जन्म खो जाएंगे। आज भी व्यक्ति को शास्त्र की खोज करनी चाहिए। लेकिन आज की कठिनाई को ध्यान में रखकर मैं कहूंगा कि आज शास्त्र से ज्यादा सदगुरु..।

कृष्ण ने जब कहा, तब शास्त्र सदगुरु का काम करता था, क्योंकि सिर्फ सदगुरुओं के वचन ही लिपिबद्ध थे। आज मुश्किल है। छापेखाने ने पागलखाने के द्वार खोल दिए हैं। कोई भी लिख सकता है, कोई भी किताबों का प्रचार कर सकता है, कुछ अड़चन नहीं है अब। आज शास्त्र उतना सहयोगी नहीं हो सकता। आज शास्त्र को भी पहचानना हो, तो भी सदगुरु के ही माध्यम से पहचाना जा सकता है।

एक बहुत पुरानी कहावत है, सतयुग में शास्त्र, कलियुग में गुरु। उसमें बड़ा अर्थ है। क्योंकि कलियुग में इतने शास्त्र हो जाएंगे कि यही तय करना मुश्किल हो जाएगा, कौन—सा शास्त्र है और कौन—सा शास्त्र नहीं है! और कौन आपको कहे? अब तो कोई निजी आत्मीय संबंध बन जाए आपका किसी जाग्रत पुरुष से, तो ही रास्ता बन सकता है। क्योंकि उसके माध्यम से शास्त्र भी मिल सकेगा। और जीवित पुरुष मिल जाए, तो शास्त्र की जरूरत भी नहीं रह जाती।

लेकिन शास्त्र का मतलब ही इतना है, जागे हुए पुरुषों के वचन, चाहे वे जिंदा हों, चाहे जिंदा न हों। अगर आपको जीवन की बहुत—सी अड़चन, भटकन, व्यर्थ खोजबीन से बचना हो, भूल—चूक में बहुत समय खराब न करना हो, तो जरूरी है कि जिसने जाना हो, उसकी बात समझें; जिसने पहचाना हो, उसकी बात समझें।

और आप कैसे पहचानेंगे किसी व्यक्ति को कि उसने जान लिया, पहचान लिया? एक ही कसौटी है कि जिस व्यक्ति को आप देखें कि उसकी कोई खोज नहीं अब, उसका कोई प्रश्न नहीं अब। अब उसको पाने का कुछ, आपको दिखाई में न पड़ता हो। कोई व्यक्ति लगता हो कि ऐसे जी रहा है, जैसे उसने सब पा लिया। जो सब तरफ से तृप्त हो, जिसकी तृप्ति का वर्तुल बंद हो गया हो, जो। कहीं से खुलता न हो अब। तो ऐसे व्यक्ति की सन्निधि खोजना जरूरी है। आपके लिए वही शास्त्र होगा। उसके माध्यम से आपको वेद, उपनिषद, कुरान और बाइबिल के द्वार भी खुल जाएंगे।

इससे तेरे लिए उस कर्तव्य और अकर्तव्य की व्यवस्था में शास्त्र ही प्रमाण है, ऐसा जानकर तू शास्त्र—विधि से नियत किए हुए कर्म को ही करने के लिए योग्य है।

अर्जुन क्षत्रिय है, योद्धा है। कृष्ण शास्त्र की बात कह रहे हैं, क्योंकि शास्त्र उस दिन तय किया था, समाज चार हिस्सों में विभाजित था। बड़ी कुशलता से विभाजित किया था। कुशलता अनूठी है। हिंदुओं की खोज बड़ी गहरी है।

आज पाच हजार साल हो गए। पांच हजार साल में दुनिया में बहुत तरह के लोगों ने मनुष्यों को बांटने की कोशिश की है, कि कितने प्रकार के मनुष्य हैं? अभी अत्याधुनिक कार्ल गुस्ताव वा की कोशिश है, पश्चिम के बड़े मनोवैज्ञानिक की। वह भी मनुष्यों को चार हिस्सों में ही बांट पाता है। इन पांच हजार सालों में दुनिया के कोने—कोने में अलग—अलग जातियों ने, अलग—अलग विचारकों ने खोज की है कि आदमी कितने प्रकार के हैं। वह हमेशा चार के ही आकड़े पर आ जाते हैं।

हिंदुओं ने बड़ी पुरानी खोज की थी कि व्यक्ति चार तरह के हैं। और उन चार तरह के व्यक्तियों को बांट दिया था। और न केवल ऊपर से बांट दिया था, बल्कि ऐसे समाज की संरचना की थी कि आप मर भी जाएं आज, तो कल आपकी आत्मा अपने ही टाइप की जाति को खोज ले। वह बड़ी गहरे व्यूह की रचना थी।

ब्राह्मण मरकर ब्राह्मण घर में जन्म ले सके और अनंत जन्मों में ब्राह्मण घरों में तैर सके, तो उसका ब्राह्मणत्व सिद्ध होता चला जाएगा। और किसी भी जन्म में, शास्त्र ने ब्राह्मण के लिए जो कहा है, वह उसका मार्ग होगा।

अर्जुन क्षत्रिय है। आज के क्षत्रिय को तय करना मुश्किल है। — आज कौन क्षत्रिय है, तय करना मुश्किल है। क्योंकि शास्त्र की वह व्यवस्था टूट गई। और समाज का वह जो ढंग था, चार विभाजन स्पष्ट कर दिए थे, जिनमें कोई लेन—देन नहीं था एक तरह का, जिनमें आत्माएं एक—दूसरे में प्रवेश नहीं कर पाती थीं, वह आज संभव नहीं है। आज सब अस्तव्यस्त हो गया है। और समाज—सुधार के नाम पर नासमझ लोगों ने बड़ी उपद्रव की बातें खड़ी कर दी हैं। उन्हें कुछ पता भी नहीं है कि वे क्या कर रहे हैं।

लेकिन उस दिन जिस दिन अर्जुन से कृष्ण ने यह बात कही, सब स्थिति साफ थी।

अर्जुन क्या कह रहा है? अर्जुन ब्राह्मण की माग कर रहा है। वह इस ढंग का व्यवहार कर रहा है, जो ब्राह्मण को करना चाहिए। वह जो प्रश्न उठा रहा है, वे ब्राह्मण के हैं। यह हिंसा होगी, लोग मर जाएंगे, इस राज्य को पाकर क्या करूंगा; किसके लिए पाऊं; इससे तो बेहतर है, मैं सब छोड़ दूं और संन्यस्त हो जाऊं। वह प्रश्न उठा रहा है, जो ब्राह्मण—चरित्र के व्यक्ति के लिए उचित है। और अगर अर्जुन ब्राह्मण होता, तो कृष्ण ने यह गीता उससे नहीं कही होती।

कृष्ण यह गीता कहने को मजबूर हुए क्योंकि अर्जुन का जो टाइप था, उसके जो व्यक्तित्व का ढांचा था, वह क्षत्रिय का था। और वह कोई एक जन्म की बात न थी। अर्जुन अनंत जन्मों से क्षत्रिय था। बहुत—बहुत बार क्षत्रिय रह चुका था। क्षत्रिय होना उसका गहरा संस्कार था। वह उसके रोएं—रोएं में समाया था। उसकी आत्मा क्षत्रिय की थी।

इसलिए यह अगर ब्राह्मण भी बन जाए, तो इसका ब्राह्मण होना ऊपर—ऊपर होगा, धोखा होगा, पाखंड होगा। यह जनेऊ वगैरह पहन ले और चंदन—तिलक लगा ले और बैठ जाए तो भी यह जंचेगा नहीं। इसके भीतर जो ढंग है, वह योद्धा का है। यह ब्राह्मण होने के योग्य नहीं है। यह ब्राह्मण हो भी नहीं सकता। क्योंकि ब्राह्मण होना कोई एक क्षण की

बात नहीं है। इसके अनंत जन्मों के संस्कार साफ करने होंगे, तब यह ब्राह्मण हो सकता है। यह कोई एक क्षण का निर्णय नहीं है कि हमने तय किया और हम हो गए।

जैसे आज आप तय कर लें कि स्त्री होना है, इससे कुछ फर्क नहीं पड़ेगा आपके तय करने से। आप स्त्री के कपड़े पहन सकते हैं, चाल—ढाल थोड़ी सीख सकते हैं। लेकिन स्त्रियां भी आप पर हसेंगी। रहेंगे आप पुरुष ही। वह स्त्री होना ऊपर का पाखंड हो जाएगा और सिर्फ हंसी योग्य हो जाएंगे।

कृष्ण अर्जुन को समझा रहे हैं कि तू शास्त्र की तरफ देख, क्षत्रिय के लिए शास्त्र ने क्या कहा है! तू उससे यहां—वहा मत हट, क्योंकि वही तेरी सिद्धि है। क्षत्रिय होकर ही और क्षत्रिय के धर्म का ठीक—ठीक अनुसरण करके ही तेरा मोक्ष तुझे मिलेगा।

तो क्षत्रिय की क्या सिद्धि होगी? और क्या उसका मार्ग होगा?

कृष्ण कह रहे हैं, क्षत्रिय सोचता ही नहीं कि कोई मरता है; क्षत्रिय सोचता ही नहीं कि भविष्य में क्या होगा। क्षत्रिय सोचता ही नहीं। क्षत्रिय लड़ना जानता है। लड़ना उसका ध्यान है। वह युद्ध में ध्यानस्थ हो जाता है। वह न यह जानता है कि मैं मर रहा हूं कि दूसरा मर रहा है; वह युद्ध में निर्भय हो जाता है। युद्ध के क्षण में उसकी चित्त की दशा न तो मारने के, न तो मरने के विचार से डोलती। वह निश्चित खड़ा हो जाता है। कौन मरता है, यह गौण है। युद्ध उसके लिए एक खेल है, वह अभिनय है, वह उसके लिए कोई बहुत गंभीरता का प्रश्न नहीं है। वह दोपहर लड़ेगा, सांझ तक लड़ेगा, सांझ बात भी नहीं करेगा कि युद्ध में क्या हुआ। रात विश्राम करेगा। रात उसकी नींद में खलल भी नहीं पड़ेगी कि दिनभर इतना युद्ध हुआ, इतने लोग कटे। वह रात मजे से सोएगा। सुबह उठकर फिर युद्ध की तरफ चल पड़ेगा। युद्ध उसके लिए एक खेल और अभिनय है।

कृष्ण कह रहे हैं कि तू इस पूरे युद्ध को एक नाटक से ज्यादा मत जान। और तेरी जो शिक्षा है, तेरी जो दीक्षा है, तेरा जो संस्कार है, शास्त्र जो कहता है, तू उसके हिसाब से चुपचाप चल। तू अपना कर्तव्य पूरा कर। तू चिंता में मत पड़। यह चिंता तुझे शोभा नहीं देती। अगर इस चिंता में—यह करूं या वह करूं; हं। या न, अच्छा या बुरा—तू उलझ गया, तो तू अपने धर्म से च्यूत हो जाएगा। और तब तुझे अनंत जन्म लग जाएंगे। और यहां इस युद्ध के क्षण में इसी क्षण तू मुक्त हो सकता है। बस इतना ही तुझे करना है कि तू अपने कर्ता का भाव छोड़ दे।

क्षत्रिय वही है, जो कर्ता नहीं है।

जापान में क्षत्रियों का एक समूह है, समुराई। वह अब भी क्षत्रिय है। और अनेक पीढ़ियों से समुराई तैयार किए गए हैं। क्योंकि हर कोई समुराई नहीं हो सकता, बाप समुराई रहा हो, तो ही बेटा समुराई हो सकता है।

हम, जैसा कि फलों की फसल तैयार करते हैं, तो अच्छे फलों का बीज चुनते हैं। फिर और उनमें से अच्छे फल, फिर उनमें से अच्छे फल। फिर फल बड़ा होता जाता है, सुस्वादु होता चला जाता है।

तो अनेक पीढ़ियों में समुराई चुने गए हैं। वह क्षत्रियों की जाति है। समुराई का एक ही लक्ष्य है कि जब मैं युद्ध में लड़ूं? तो युद्ध तो हो, मैं न रहूं। मेरी तलवार तो चले, लेकिन चलाने वाला न हो। तलवार जैसे परमात्मा के हाथ में आ जाए, वही चलाए; मैं सिर्फ निमित्त हो जाऊं।

इसलिए कहते हैं कि अगर दो समुराई युद्ध में उतर जाएं, तो बड़ा मुश्किल हो जाता है कि कौन जीते, कौन हारे। क्योंकि दोनों ही अपने को मिटाकर लड़ते हैं। दोनों की तलवारें चलती हैं; लेकिन दोनों की तलवारें परमात्मा के हाथ में होती हैं। कौन हारे, कौन जीते।

समुराई—सूत्र है कि वही आदमी हार जाता है, जो थक जाता है जल्दी और वापस अपने अहंकार को लौट जाता है। जिसको भाव आ जाता है मैं का, वह हार जाता है। जो आदमी धैर्यपूर्वक परमात्मा पर छोड्कर चलता जाता है, उसके

हारने का कोई भी उपाय नहीं है। कृष्ण कह रहे हैं, तेरे लिए इस कर्तव्य और अकर्तव्य की व्यवस्था में शास्त्र ही प्रमाण है, ऐसा जानकर तू शास्त्र—विधि से नियत किए हुए कर्म को ही करने के लिए योग्य है।

यह कर्तव्य और अकर्तव्य की व्याख्या कृष्ण ने की। क्या करने योग्य है, क्या करने योग्य नहीं है! क्या त्याग देना है, और क्या जीवन में बचा लेना है! कौन—से नरक के द्वार हैं, वे बंद हो जाएं, तो कैसे मोक्ष का द्वार खुल जाता है!

ये सारी बातें आपने सुनीं। ये बातें अर्जुन को कही गई हैं। इन पर आप सोचना। अगर आपकी चित्त—दशा अर्जुन जैसी हो, तो ये बातें आपके लिए बिलकुल सीधा मार्ग बन जाएंगी। अगर आपकी चित्त—दशा अर्जुन जैसी न हो, और आप कोई संबंध ही न जोड़ पाते हों अपने और अर्जुन में, तो आप इन बातों को अपने पर ओढ़ने की कोशिश मत करना। क्योंकि वह भूल हो जाएगी वही, जो अर्जुन कर रहा था।

इन बातों को समझना, सोचना, इनके साथ—साथ अपने स्वभाव को समझना और सोचना। दोनों को समानांतर रखना। अगर उनमें कोई मेल उठता हो, अगर दोनों में एक—सी धुन बजती हो, अगर दोनों में संयोग बनता हो, तो ये सूत्र आपके काम आ सकते हैं।

लेकिन गीता में करीब—करीब कृष्ण ने वे सारे सूत्र कह दिए हैं, जितने प्रकार के मनुष्य हैं। वे सारे सूत्र कह दिए हैं। इसलिए गीता इतनी लंबी चली। अर्जुन के बहाने कृष्ण ने पूरी मनुष्य जाति को उदबोधित किया है।

तो चाहे इस अध्याय में, चाहे किसी और अध्याय में, आपके लिए भी कहे गए वचन हैं। इतनी थोड़ी—सी मेहनत आपको करनी पड़ेगी कि अपने को थोड़ा समझें और अपने योग्य, अपने अनुकूल वचनों को थोड़ा पहचानें। और उचित ही है कि इतनी मेहनत आप करें। क्योंकि बिलकुल चबाया हुआ भोजन मिल जाए, तो आत्मघाती है। थोड़ा आप चबाएं और पचाएं। और यहां उत्तर बंधे हुए नहीं हैं, उत्तर खोजने पड़ेंगे।

मैंने सुना है, एक अदालत में मुकदमा चला एक आदमी पर, उसने हत्या की थी। और एक गवाह को मौजूद किया गया, गांव के एक किसान को। और उस गवाह से वकील ने पूछा कि जब रामू ने पंडित जी पर कुल्हाड़ी से हमला किया, तो तुम कितनी दूर खड़े थे? उसने कहा कि छ: फीट साढ़े छ: इंच; उस किसान ने कहा। वकील भी चौंका, अदालत भी होश में आ गई, मजिस्ट्रेट भी चौंका। और वकील ने कहा, तुमने तो इस तरह बताया है कि जैसे तुमने पहले से ही सब नाप—जोखकर रखा हो। छ: फीट साढ़े छ: इंच!

उस किसान ने कहा, मुझे पता था कि कोई न कोई मूर्ख आदमी यह सवाल मुझसे यहां जरूर पूछेगा; तो यहां आने के पहले पहला काम मैंने यह किया। बिलकुल नापकर आया हूं।

इस तरह बंधे हुए सवाल और उत्तर आपको गीता में नहीं मिल सकते। सब जवाब वहां मौजूद हैं, सब सवालों के जवाब मौजूद हैं। लेकिन पहले एक तो आपको अपना सवाल पहचानना पडेगा, फिर अपने सवाल को लेकर गीता में खोजना पड़ेगा। जवाब आपको मिल जाएगा। और वह जवाब जब तक न मिले, तब तक गीता को ऊपर से ओढने की कोशिश मत करना, क्योंकि वह खतरनाक हो सकती है।

गीता एक आदमी के लिए कही गई है, लेकिन एक आदमी के बहाने सब आदमियों से कही गई है। इसलिए उसमें बहुउत्तर हैं, अनंत उत्तर हैं, आपका उत्तर भी वहा है। और आप अपने को पहचानते हों, तो उस उत्तर को खोज ले सकते हैं। फिर वही उत्तर आपके जीवन की साधना बन सकता है।